विद्या ददाति विनयम्

2015-16

सर्जना

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

नैक द्वारा "ए" श्रेणी प्राप्त

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

परिसर में अधिष्ठित भगवती अन्नपूर्णा

घृतपयोदधिक्षीरगुडमधुरिमा कैरपिपदैर्विशिष्यानास्वाद्येयो भवति रसनामात्रविषयः।
तथाते सौन्दर्यं परमशिवदृङ्मात्रविषयः कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगमागोचरगुणे॥

(आनन्दलहरी)

श्री भारतधर्ममहामण्डल के संस्थापक महर्षि ज्ञानानन्द जी

ज्ञानानन्दो यतिश्रेष्ठोऽध्यात्मविच्छास्त्रपारगः।
ज्ञानोन्नत्यै भारतानां धर्मनण्डलकं व्यधात्॥
ऋषिका किल विद्यानां विद्यादेवी तमाश्रिता॥
आर्यमहापरिषद् व्यधान्महिलानां च हिताय सा॥
तदङ्गभागार्यमहिला महाविद्यालयो वरः।
विभाति ज्ञानविज्ञानकलासौन्दर्यभावितः॥

डॉ. चन्द्रकान्ता राय

सर्जना

2015-16

प्रधान सम्पादक

प्रो० रचना दूबे

प्राचार्या

सम्पादक

डॉ० चन्द्रकान्ता राय

अध्यक्ष, संस्कृतविभाग

सम्पादकमण्डल

संस्कृतविभाग

डॉ० जया मिश्रा

डॉ० पुष्पा त्रिपाठी

डॉ० दिव्या

डॉ० मंजू कुमारी

डॉ० त्रिपुरसुन्दरी

सम्पादन-सहयोग

बंगलाविभाग

डॉ० बिन्दू लाहिड़ी

डॉ०स्वप्ना बन्द्योपाध्याय

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

नैक द्वारा "ए" श्रेणी प्राप्त

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दूरभाष : 0542–2411893 E-mail : ampgc.vns@gmail.com Visit us at : www.aryamahilapgcvns.org

सर्जना

प्रधान सम्पादक

प्रो० रचना दूबे

प्राचार्या

सम्पादक

डॉ० चन्द्रकान्ता राय

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी

ISBN : 978-93-5148-134-0

संस्करण : 2016

मूल्य : 150.00

मुद्रण : सन् प्रिंटिंग वर्क्स,
जगतगंज, वाराणसी

प्रकाशन

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी

इस पत्रिका में प्रकाशित विषय लेखकों के अपने विचार हैं। सम्पादक इनसे सहमत हों, यह आवश्यक नहीं।

कुलपति
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी-221002

Vice Chancellor
Sampurnanand Sanskrit University
Varanasi-221002

दूरलेख (Telegram) : 'वृत्त्'
दूरभाष (Phone) : कार्यालय (Off.) 0542-2204089
निवास (Resi) 0542-2204213
0542-2206617
फैक्स (Fax)
ई-मेल (E-mail) : 0542-2204089
: vc.ssv@gmail.com

पत्रांक V.C.1385/2017 दिनांक 26.07.2016

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी की वार्षिक पत्रिका **'सर्जना'** इस महाविद्यालय के विद्यार्थियों तथा प्राध्यापकों के उत्साह और सक्रिय उद्यम का अन्यतन साक्ष्य है। यह पत्रिका शैक्षिक वातावरण में नाना विषयों के अध्ययन–अनुशीलन के साथ सह–शैक्षणिक कार्यों के सम्पादन में महाविद्यालयीय प्रयासों एवम् उनके प्रतिफलन का भी आभास कराती है। इसका नियमित प्रकाशन वर्तमान के संरक्षण के साथ संस्था के इतिहास का गौरवबोध कराता है तथा इसके समृद्ध भविष्य की सम्भावना का दिग्दर्शन कराता है।

मैं **'सर्जना'** के 2015–16 सत्रांक के सम्पादन–प्रकाशन के लिए सम्पादकों को हार्दिक साधुवाद एवं शुभाशंसा प्रेषित करता हूँ।

(प्रो.यदुनाथ प्रसाद दूबे)
कुलपति

Prof. Shree Kishore Mishra
Ex. Member Secretary,
Maharshi Sandipani Rashtriya
Veda Vidya Pratishthan
(Govt. of India), Ujjain
Ex-Head & Professor
Deptt. of Sanskrit
Banaras Hindu University
Varanasi - 221 005

7, Professors' Colony
Jagatganj,
Varanasi - 221 002

Phone: (0542) 2204403
Mob. : 09415685328

Date : 31.05.2016

आर्य महिला महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'सर्जना' के कई अंक मुझे दृष्टिगत हुए हैं जिनसे वहाँ के विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों की गवेषणात्मक अभिरुचि तथा वैचारिक उत्कर्ष का परिचय मिलता रहा है। संस्कृतविभाग के सम्पादकत्व में 'सर्जना' का वर्ष 2015–16 का अंक प्रकाशित होने जा रहा है। जिज्ञासु विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा अनुसन्धित्सु शिक्षकों के मनोभावों को सुखद प्रश्रय देने में यह अंक सर्वथा समर्थ होगा, इस विश्वास के साथ मैं सम्पादिका डॉ0 चन्द्रकान्ता राय तथा समस्त सम्पादक–मण्डल को भूरिशः साधुवाद से सभाजित करता हूँ।

श्रीकिशोर मिश्र

(श्रीकिशोर मिश्र)

Tel. : 0542-2411693
Fax : 0542-2401237
E-mail : arnpgc.vns@gmail.com
Website : www.arnpgc.ac.in

॥ श्री लगन्माता नमः ॥

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।

(श्री आर्य महिला-हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संस्थापित और संचालित)

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज

वाराणसी

नैक द्वारा ग्रेड ''ए''

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दिनांक 09.05.2016

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज की वार्षिक पत्रिका **'सर्जना'** का षष्ठ प्रसून खिलने को उद्यत है। पत्रिका का स्वरूप अपने सुवर्ण वर्णवैचित्र्य से छात्राओं एवं प्राध्यापकों सहित समस्त पाठकों की सुरुचि तथा प्रेरणा का आधार रहा है। वर्ष **2015–16** के इस अंक में वेदों की आर्ष विभूति के संस्पर्श के साथ भारतीय शास्त्रपरम्परा के सिद्धान्तों, लोक एवं शास्त्र की प्रवृत्तियों, प्रकृति के उल्लास, भक्ति, नीति एवं लोकव्यवहार के यथार्थ चित्रों तथा चुनौतियों, कविता की चमत्कृति एवं छात्र–मनोविज्ञान का मनोरम चित्राङ्कन हुआ है।

मैं **'सर्जना'** के इस अंक के प्रकाशन में अपना योगदान करने वाले सभी छात्रों, प्राध्यापकों तथा सम्पादनकार्य में संलग्न प्राध्यापकों के वर्धापन की कामना करता हूँ।

डॉ0 चन्द्रकान्त मिश्र

अध्यक्ष

Tel. : 0542-2411693
Fax : 0542-2401237
E-mail : arnpgc.vns@gmail.com
Website : www.arnpgc.ac.in

॥ श्री लगन्माता नमः ॥

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय।

(श्री आर्य महिला-हितकारिणी महापरिषद् द्वारा संस्थापित और संचालित)

आर्य महिला पी.जी. कॉलेज

वाराणसी

नैक द्वारा ग्रेड ''ए''

(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध)

दिनांक 06.04.2016

सर्जना सृष्टि की नियति है। यह क्रिया भूलोकरहित सागरत ब्रह्माण्ड में संचालित होती है। शरीर, मन तथा वाणी की शक्तियों से इसके विविध रूप उद्भावित होते हैं। मानवलोक में वाणी की शक्ति और उसकी सृष्टि का आयतन अपरिमेय है। वाणी का विचक्षण कवि अपनी क्षमता से यथारुचि संसार की सृष्टि कर डालता है। इस अपरिमेय सृष्टि–परिणाम की एक लघु प्रवर्तना है आर्य महिला पी.जी. कॉलेज की वार्षिक पत्रिका **'सर्जना'** जिसके पर्णों पर संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी तथा बंगभाषा के प्रवाह में छात्र–छात्राओं एवं प्राध्यापक–वर्ग का बौद्धिक एवं मानस उत्कर्ष संचारित हुआ है।

मैं **'सर्जना'** के वर्ष 2015–16 अंक के प्रकाशन/सम्पादन हेतु सम्पादक–वर्ग को हार्दिक साधुवाद एवं शुभकामनाएँ देता हूँ।

डॉ० शशिकान्त दीक्षित

प्रबन्धक

From the Editor's Desk

"Where there is joy there is creation. Where there is no joy no creation. Know the nature of joy."

It is indeed a joyous moment for us as we publish our 6th edition of **"SARJANA"**. Every creation has a point of beginning which eventually takes a form of infinite. It was with this very idea Arya Mahila P. G. College started **"SARJANA"** in the year 2010-11 and Six years down the line we are rendering satisfactory program over the quality and quantity of subsequent **"SARJANA"** issues.

In the era of fake information post -truth we desperately need educational institutions and educationists to stand up to their responsibilities to impart and inform about matters of national and societal importance. We at Arya Mahila P. G. College take it as our duty towards society to talk about issues ranging from current importance, academic, political, spiritual, social etc. **"SARJANA"** has turned out to be an enormous platform to make readers aware about history, economy, languages, philosophical ideas, environment and anything a human mind can create.

The exclusive feature of "SARJANA" is its inclusion of articles in four languages namely Hindi, Sanskrit, Bengali and English. I wish to congratulate the entire editorial team for their excellent effort and untiring perseverance. I thank all the contributors in making this issue a memorable one.

My sincere efforts and prayers are always towards the growth and prosperity of the College.

Chief Editor

Dubey

Prof. Rachana Dubey

Date - 30.04.2016

कुलगीत

भारतीय परम्परा की पोषिका सम्मानदा ।
नव-पुरातन का समन्वय आर्यमहिला ज्ञानदा ॥

कला विद्या कर्म की बहती त्रिवेणी है यहाँ ।
ग्रन्थ वीणा से सुसज्जित शोभती हैं शारदा ॥

पूज्य ज्ञानानन्द जी के त्याग-तप की भूमि यह ।
नारियाँ बनती यहाँ संस्कारयुक्ता पुण्यदा ॥

शिक्षिता होतीं तथा शुभकर्म पथ पर दीक्षिता ।
अन्नपूर्णा की कृपा मिलती यहाँ सुखसौख्यदा ॥

आर्य महिला ज्ञानसंस्था दिव्य गायत्री जहाँ। ।
ज्ञानरश्मि बिखेर कर भरती समुज्ज्वल सम्पदा। ॥

डॉ0 कपिलदेव पाण्डेय

विषयानुक्रमणिका

1.	कस्मै देवाय हविषा विधेम	डॉ0 चन्द्रकान्ता राय	1
2.	वेदाङ्गों की उपादेयता	डॉ0 जया मिश्रा	2–6
3.	वेदों में प्राप्त सृष्टिसंरचना के विचार	डॉ0 पुष्पा त्रिपाठी	7–12
4.	संस्कृतवाङ्मय में सत्यं शिवं सुन्दरम् का	डॉ0 दिव्या	13–19
5.	वैदिकवाङ्मय में काव्यसौन्दर्य	डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी	20–24
6.	शोधप्रविधि–समस्याएँ एवं समाधान	डॉ0 सुचिता त्रिपाठी	25–30
7.	हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यधर्मिता	डॉ0 मीनाक्षी मिश्रा	31–33
8.	भोजपुरी महाकाव्य 'कुँवर सिंह'	डॉ0 अनुपम गुप्ता	34–36
9.	संवाद	डॉ0 कविता आर्या	37–41
10.	Tears of Darkness: Exploration of the Unexplored	Dr. Kumari Priti	42–46
11.	Indian English Literature: Promises & Possibilities	Dr. Amit Kumar Shukla	47–49
12.	स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा–दर्शन	डॉ0 ममता गुप्ता	50–57
13.	कर्मसिद्धान्त – वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में	डॉ0 शुचि तिवारी	58–61
14.	रस एवं संगीत	डॉ0 ममता सान्याल	62–63
15.	साहित्य की उपयोगिता संगीत–सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में	रुचि मिश्रा	64–66
16.	सितारवादन में रागसौन्दर्य	डॉ0 (श्रीमती) गीता सिंह	67–72
17.	लोकसंगीत	डॉ0 अनामिका दीक्षित	73–74
18.	भारतीय संगीत–आधार एवम् उपचार	श्रीमती डिम्पल राय	75–78
19.	अलकनन्दा	डॉ0 चन्द्रकान्ता राय	79–81
20.	वैश्विक आतंकवाद एवं आर्थिक संकट	डॉ0 मंजु बनिक	82–85
21.	आचारसंहिता, भ्रान्तियाँ और अन्धविश्वास	डॉ0 उषा वर्मा श्रीवास्तव	86–87
22.	वैनयिकी कला–नीतिग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में	सुश्री आरती श्रीवास्तव	88–93
23.	अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा एवं शैक्षिक अवसरों की समानता	डॉ0 अनिता अग्रवाल	94–97
24.	मानवीय संवेदना के कुशल चित्रकार – कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर	डॉ0 चन्द्रकान्ता राय	98–101
25.	रत्नाकरकृत 'हरविजय' महाकाव्य में भक्तिप्रवाह	विकास कुमार उपाध्याय	102–105

26. श्रीमद्भागवतमहापुराण में वर्णित गुण–दोषव्यवस्था का रहस्य	अंशिका पाण्डेय	106–109
27. आर्षकाव्य महाभारत में निरूपित भक्ति–भाव	अंकिता तिवारी	110–112
28. संस्कृतसाहित्य में धार्मिक एकता	शिवजी यादव	113–115
29. ऋग्वेद में आयुर्वेद	प्रियंका	116–119
30. संगीतराग	दानिया आलम	120
31. मध्यकालीन समाज और मीरा का काव्य	रुचि खरवार	121–126
32. ग्रामीण जीवन का यथार्थ और शिवमूर्ति	रामानन्द कुमार	127–129
33. राष्ट्र के मुख्य अवयव : भू, जन एवं संस्कृति	जगदीश लाल	130–131
34. यह दृश्य बदलना चाहिए	मानवी सिंह	132–133
35. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः	कु0 अंकिता	134–138
36. सीता–परित्याग में सन्निहित सन्देश	नेहरू पाण्डेय	139–141
37. मेघदूत में प्रकृतिसौन्दर्य	आरती यादव	142–144
38. हिरण्यगर्भसूक्त में सर्वेश्वर परमात्मा का स्वरूप	श्रद्धा तिवारी	145–147
39. ऋग्वेद में इन्द्र का स्वरूप	कु0 संगीता	148–151
40. माँ	श्वेता मिश्रा	152
41. डिजिटल इंडिया : सशक्त भारत	पूनम कुमारी	153–156
42. साम्प्रदायिक राजनीति	दुर्गा कुमारी	157–160
43. शिक्षा के क्षेत्र में महामना मदनमोहन मालवीय जी का योगदान	सानिया बेगम	161–163
44. भारत में महिला–सशक्तीकरण की चुनौतियाँ एवं संघर्ष	सुमन प्रजापति	164–166
45. भ्रष्टाचार – एक अभिशाप	सरवत परवीन	167–169
46. विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास – एक ऐतिहासिक अध्ययन	प्रीति पटेल	170–172
47. पर्यावरण एवं विकास	सिम्मी बानो	173–174
48. पप्पी की स्मृति में	प्रियंका रत्नानी	175
49. सितार पर कुलगीत की धुन	डॉ0 गीता सिंह	176–181
51. ईच्छा करे	डॉ0 झुमुर सेनगुप्ता	182
52. भावना	डॉ0 झुमुर सेनगुप्ता	183
53. शिशुसाहित्ये नज़रूल	डॉ0 स्वप्ना बन्द्योपाध्याय	184–192
54. .अफ्सर अमदेर उपन्यास : विषय वैचित्रेर अभिनवत्व	राहुल साहाना	193–199
55. मैकालेर उत्तराधिकार ओ अन्यान्य प्रसंग	नित्यानंद खाँ	200–205

कस्मै देवाय हविषा विधेम

प्रातःकिरण के कलश ले
दुहिता दिवस की नित्य चलती।
रागरंजित अंजली से
चेतना के रंग भरती।। 1।।

यह पवन ले संचार जिससे,
प्राण के सन्तान बुनता।
तरुप्रकम्पित वल्लरी के
श्वास से आमोद चुनता।। 2।।

सजल जलधर–खण्ड दृग् में,
भर शिखी विह्वल हुए।
क्यों नाचते अश्वत्थ के सब
पत्र अति चंचल हुए।। 3।।

क्यों, बह रही सरिता निरन्तर,
नयन, मन को मोहकर।
क्यों मेघ झर–झर कर बरसता
बन्ध अपने खोलकर।। 4।।

वह एक जो करता चपल,
गतिशील अग–जग प्राण को।
छाजन बना आकाश का
भू के बृहत्तम त्राण को।। 5।।

इन सूर्य–तारक–चन्द्रमा में,
ज्योति वह अक्षुण्ण भरता।
रसवती बनती धरा जब
कलश जल के ले उभरता।। 6।।

वह एक सर्जक धातृ है
प्रणिपात हम अर्पण करें।
दाक्षिण्य उसका प्राप्य हो
इस हेतु हम अर्चन करें।। 7।।

डॉ0 चन्द्रकान्ता राय

वेदाङ्गों की उपादेयता

डॉ. जया मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

वेदार्थ अतिदुर्ज्ञेय हैं। जिस प्रकार समाधिस्थ पुरुष ही ब्रह्मदर्शन में समर्थ हो सकता है, उसी प्रकार समाधियुक्त अन्तःकरण द्वारा ही शब्दब्रह्मरूपी वेद का यथार्थ अर्थ समझा जा सकता है। योगी की पदवी प्राप्त करने वाले सौभाग्यवान् महापुरुष तो कम ही होते हैं। श्रीगीताजी में लिखा है कि –

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ।। गीता 7/3

वेदवाक्य ही ज्ञान और विज्ञान पाने के एकमात्र लौकिक उपाय हैं, तो लोकिकरुप से वेद को समझने की युक्ति ही सर्वसाधारण के लिए हितकारिणी हो सकती है, परन्तु वेद जब अलौकिक ज्ञानभण्डार के आधार रूप हैं, तो लौकिक पुरुषार्थ द्वारा अलौकिक वैदिक ज्ञान के प्राप्त करने की उपयोगिनी बुद्धि का लाभ करने के अर्थ, कुछ असाधारण यत्न की ही आवश्यकता है। षडङ्गों में पूर्ण योग्यता प्राप्त किये बिना जिज्ञासुगण कदापि वेदार्थ समझने में समर्थ नहीं हो सकते। जिस प्रकार किसी पुरुष की परीक्षा की जाती है, तो पहले उसकी आकृति, चेष्टा, गुण, प्रकृति, चरित्र आदि अनेक बातों को जानने की आवश्यकता होती है, और इन बातों को जानने से उस व्यक्ति का पूर्ण रीति से परिचय हो सकता है, अन्यथा नहीं। उसी नियम के अनुसार वेद पाठ द्वारा वैदिक तात्पर्यों के समझने के अर्थ योग्य बुद्धि का सम्पादन तभी हो सकता है जब षडङ्ग पूर्णरूप से अभ्यस्त हो जायँ। वैदिक षडङ्गों का मुण्डकोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन है –

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।

जैसा कि कहा गया –

छन्दःपादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।। पा0शि0 41–42

इस वेदपुरुष के छन्दःशास्त्र चरण, कल्पशास्त्र (कर्मकाण्ड ग्रन्थ) हस्त, ज्योतिषशास्त्र नयन, निरुक्तशास्त्र कर्ण, शिक्षाशास्त्र नासिका और व्याकरणशास्त्र मुखरूप हैं।

जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है –

(1) शिक्षाशास्त्र

शब्द के साथ शाब्दिक भाव का और वाचक के साथ वाच्य का तादात्म्य सम्बन्ध है। इस विषय को

दर्शनशास्त्रों ने भलीभाँति सिद्ध कर दिखाया है। परन्तु शब्द की शक्ति तभी पूर्णरूप से प्रकाशित हो सकती है, जब शब्द अपने पूर्णरूप में उच्चरित हो। फलतः अलौकिक शक्तिपूर्ण वेद के पदसमूह द्वारा तभी पूर्णलाभ हो सकता है, जब वे अपनी वैज्ञानिक शक्तियुक्त यथावत् ध्वनि के साथ बोले जायँ। वेद शब्दमय ब्रह्म है। शब्द–विज्ञान के यथावत् क्रम के अनुसार वेदपाठ व गान करने की शैली इस शास्त्र में आविष्कृत की गयी है। शब्द वर्णात्मक व ध्वन्यात्मक भेद से दो भागों में विभक्त हैं।

जिस समय इस शरीर में स्वर–सम्बन्धिनी सृष्टि होती है, उसी सृष्टि नियम के अनुसार प्रथम आत्मा की प्रेरणा से बुद्धि, मन प्राणशक्ति और प्राणवायु क्रमशः प्रेरित होकर तदनन्तर शब्द आविर्भूत होते समय शरीर के विशेष स्थानों का स्पर्श करते हुए शब्दों को प्रकाशित करते हैं फलतः प्रत्येक स्वर के साथ आत्मा का तादात्म्य सम्बन्ध रहा करता है, परन्तु वह आत्मशक्ति तभी पूर्णरूप से प्रकाशित हो सकती है, जब वह यथावत् शब्द के आश्रय से ध्वनित होने पावे। इस कारण वेदमन्त्र एवं शब्दब्रह्म को अपने यथावत् शक्तियुक्त भाव में स्थिर रखने के प्रयोजन से इस शिक्षाशास्त्र का प्रणयन किया गया है। प्रत्येक वेद की प्रत्येक शाखा के उच्चारण के निमित्त इस प्रकार शिक्षाग्रन्थ थे, जिनको ''प्रतिशाखा'' भी कहा जाता था।

(2) कल्पशास्त्र

कल्पशास्त्र मन्त्रसम्बन्धी क्रियासिद्धांश का वर्णन करने वाला है। जिस प्रकार बिना यथावत् ध्वनि के सहित प्रकाशित हुए शब्दब्रह्मरूपी वेदमन्त्र पूर्ण फलप्रद नहीं हुआ करते, उसी नियम के अनुसार वैदिक क्रियासिद्धांश में, जब तक प्रत्येक क्रिया की वैदिककर्म विज्ञानानुकूल साधनयुक्ति का अवलम्बन न किया जायगा, तब तक वे क्रियासिद्धांश कदापि पूर्ण फलदायी नहीं हो सकेंगे। इस वेदांग में अग्निष्टोमादि नाना याग, उपनयनादि नाना संस्कार और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्यादि आश्रमसम्बन्धी नाना कर्मों की बहिरंग साधनविधि का पूर्णरूप से वर्णन किया गया है। यह संसार कर्ममय है इसलिए वेदों में कर्म का अधिकार सबसे अधिक होने के कारण कल्पशास्त्र भी बहुत विस्तृत है। यह शास्त्र सूत्रबद्ध होने के कारण कल्पसूत्र नाम से प्रसिद्ध है। संसार में भी दृष्टिगोचर होता है कि, मुख से जिस भाव के शब्द प्रकाशित किये जायँ, उसी भाव से युक्त बहिर्लक्षण प्रकाशित करने से शब्दों की शक्ति कुछ अधिक बढ़ जाती है। फलतः अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्, स्वरूपब्रह्म और शब्दब्रह्म,कारणब्रह्म और शब्दब्रह्म, कारणब्रह्म और कार्यब्रह्म, इनका तादाम्य सम्बन्ध रहने के कारण वैज्ञानिक युक्ति से निर्णीत कर्मकाण्ड के प्रक्रियासमूह वेदोक्त अध्यात्म लक्ष्य के साधनार्थ परमावश्यक हैं। वेद की 1180 शाखाओं में से जिसकी जो शाखा हो, वह स्वशाखा के अनुसार अपने–अपने कल्पसूत्रों की सहायता से अपने विहित कर्म को नियमबद्ध करके अभ्युदय और निःश्रेयस प्राप्त करें। यही कल्पशास्त्र का तात्पर्य है। आजकल क्रियाकाण्ड में जितने कल्पसूत्रों का व्यवहार होता है, वे प्रधानतः तीन भागों में विभक्त हैं – **यथा श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र और शुल्बसूत्र।।** श्रौतसूत्र में यागयज्ञादि की विधियाँ बतायी गयी हैं। सामाजिक जीवनयापन करने के लिए जितने प्रकार के नियम पालन करने होते हैं, उन सभी की व्यवस्था धर्मसूत्रों में की की गयी एवं गृह्यसूत्र में गृहधर्म की विधि वर्णित है अर्थात् जन्म से मृत्युपर्यन्त माता–पिता, पुत्र–पुत्री, पति–पत्नी आदि गृहस्थ वर्ग का परस्पर क्या–क्या कर्तव्य है; इनका वर्णन है। शुल्बसूत्र – शुल्ब का अर्थ होता है रज्जु

(रस्सी) अर्थात रज्जू के द्वारा मापी गई वेदों की रचना शुल्बसूत्र का प्रतिपाद्य विषय है। कल्पशास्त्र की अनेक शाखायें हैं।

(3) व्याकरण शास्त्र

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त छन्द और ज्योतिष ये छः क्रम हैं। ये विद्यार्थियों की शिक्षा पाने के अनुसार श्रेणीबद्ध किये गये हैं। परन्तु वास्तव में शिक्षा के साथ छन्द का, व्याकरण के साथ निरुक्त का, और कल्प के साथ ज्योतिष का घनिष्ठ सम्बन्ध है। व्याकरणशास्त्र शब्दानुशासन का द्वाररूप है। जिस प्रकार अन्तर्जगत् सम्बन्धी राज्य में प्रवेश करने के लिए योगशास्त्र द्वारभूत है, और उसका भगवान् पतंजलि ने **''अथ योगानुशासनम्'' – (पा.यो.सू. 1/1)** कहकर प्रारम्भ किया है, उसी प्रकार शब्दब्रह्मरूपी स्थूलराज्य में यावत् पदार्थों का ग्रहण करने के लिए व्याकरण वेद का द्वाररूप हैं और इस शास्त्र का भी भगवान् पतंजलि ने ''अथ शब्दानुशासनम्'' कहकर प्रारम्भ किया है। जिस प्रकार शब्दमय सृष्टि के होते समय भाव से शब्द की उत्पत्ति होती है, एवं अन्तर्जगत् से बहिर्जगत् में शब्दों का आविर्भाव होते समय शब्दोत्पत्तिकारिणी शक्ति के चार भेद किये गये हैं; यथा–परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी, उसी प्रकार शाब्दिक सृष्टि का लक्ष्य होते समय अर्थात् शब्द जब अन्तर्राज्य में प्रवेश करता है, तब शब्द से अर्थ और अर्थ से भाव की उत्पत्ति होती है। व्याकरणशास्त्र की एक विशेष महिमा यह भी है कि ज्योतिष के सदृश यह शास्त्र मनुष्यों को वैदिक और लौकिक दोनों कार्यों में पूर्णरीति से सहायता प्रदान करता है।

(4) निरुक्तशास्त्र

व्याकरणशास्त्र द्वारा प्रथमतः शब्दार्थ का बोध होता है। तदनन्तर निरुक्त शास्त्रोक्त विज्ञानद्वारा वेद का भावार्थ समझने में सहायता प्राप्त हुआ करती है। निरुक्तशास्त्र का भी निघण्टु नाम से एक अन्तर्विभाग है। निघण्टु द्वारा केवल वैदिक शब्दज्ञान में सहायता प्राप्त होती है। इस शास्त्र को वेद का कोष भी कह सकते है। वैदिक वर्णन–विचार के अनुसार वेद में आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक इन त्रिविध भावों का भी वर्णन पाया जाता है, इन सबका विस्तृत ज्ञान निरुक्तशास्त्र को भलीभाँति जानने से होता है। निरुक्तशास्त्र का सार यह है कि, जिस प्रकार व्याकरणशास्त्र शब्द को नित्य मानता है, उसी प्रकार निरुक्तशास्त्र भाव को नित्य मानता है। जिस प्रकार व्याकरण–विज्ञानद्वारा ओंकाररूप से वेद की नित्यता विज्ञानसिद्ध है, उसी प्रकार निरुक्त के और भी उच्च विज्ञान द्वारा भावमय अध्यात्मस्वरूप की नित्य की सिद्धि द्वारा ज्ञानमय वेद की नित्यता प्रमाणित होती है। स्थूलबहिर्जगत् से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्यात्मपदपर्यन्त सभी भावमय हैं। सृष्टि की आदि, मध्य और अन्त इन तीनों अवस्थाओं में एकमात्र भावमय चेतनसत्ता ही समान रूप से स्थित रहा करती है। इसी कारण भाव से ही जगत् की उत्पत्ति सर्वथा स्वीकार्य है। फलतः भावप्रधान होने के कारण शब्द के अवलम्बन से भावराज्य की यथार्थ भूमि में पहुँचा देना ही इस शास्त्र का पुरुषार्थ है।

(5) छन्दःशास्त्र

यह शास्त्र कुछ विलक्षण ही है। जिस प्रकार शिक्षाशास्त्र स्वर की सहायता से वैदिक कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड में नितान्त उपयोगी सिद्ध होता है, उसी प्रकार यह छन्दःशास्त्र भी छन्दोविज्ञान की

सहायता से अलौकिक शक्तियों का आविष्कार करके वैदिक ज्ञान के विस्तार करने में और कर्मों में सफलता प्राप्त कराने में बहुत ही उपकारी है। मुख से जो कुछ शब्द उच्चारित हो, वह जिस प्रकार अवश्य स्वरमय होगा, उसी रीति पर वह अवश्य ही छन्दोमय भी होगा। चूँकि छन्दःसमूह विशेष शक्तियुक्त होते हैं। अतः छन्दोज्ञान के द्वारा विशिष्ट शक्तिलाभार्थ ऋषियों ने इस शास्त्र का प्रणयन किया है।

(6) ज्योतिषशास्त्र

समष्टि और व्यष्टिरूप से ब्रह्माण्ड की यह संसार और पिण्डरूपी प्रत्येक मनुष्य का देह एकत्व सम्बन्ध युक्त है। इसी कारण आर्यशास्त्र में वर्णित है कि जो कुछ बाहर ब्रह्माण्ड में है – उन्हीं देवता, भूतसमूह और ग्रहनक्षत्रादि का केन्द्र सभी इस देह में स्थित है।

शिवसंहिता में लिखा है कि –

देहेऽस्मिन्वर्तते मेरु : सप्तद्वीपसमन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः।।
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्त्तन्ते पीठदेवताः ।।

सूर्यसिद्धान्त में ज्योतिषशास्त्र प्रवर्तक आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं।

सूर्यः पितामहो व्यासो वशिष्ठात्रिपराशराः ।
कश्यपो नारदो गर्गो मरीचिर्मनुरंगिराः ।।
लोमशो पैलिशश्चैव च्यवनो यवनो गुरुः ।
शौनकोऽष्टादशश्चैते ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ।।

यह शास्त्र अन्यान्य वेदांगों की अपेक्षा अतिविस्तृत और परम आवश्यकीय है। कहा भी गया है कि जैसे मयूरों की शिखा और सर्पों की मणि उनके सिर पर रहती है, उसी प्रकार वेदांगशास्त्रों में ज्योतिष सभी अंगों में मुख्य है। वेद यज्ञों के लिए प्रवृत्त हैं और यज्ञ काल के अनुसार किये जाते हैं। ज्योतिष कालनिर्णय करने वाला शास्त्र है, इसको जो जानता है, वही यज्ञों को जानकर कर सकता है।

सारांश

अपौरुषेय वेद के गम्भीर अर्थ जानने के लिए इस प्रकार छहों वेदांगों का तत्त्वनिर्णय और सम्यक् परिज्ञान अत्यावश्यक है, बिना छहों अंगों के भलीभाँति जाने वेदपारावार में प्रवेश करना असमभव है। वेदांगों के द्वारा बहिःस्वरूप, वेद की क्रियाशक्ति और वेद की क्रियाशक्ति के साथ सूक्ष्मराज्य का सम्बन्ध ज्ञात होता है। वेदांगों के अध्ययन के बिना वेदों में प्रवेश करना ही असम्भव है। शिक्षाशास्त्र स्थूल अक्षरमय वेद की स्थूलशक्ति के यथावत् प्रकाश का क्रम और प्रकाश करने की शैली बताकर स्थूल अक्षरमय वेद के यथार्थस्वरूप प्रकट कराने में पूर्णरूप से सहायता देता है।

कल्पशास्त्र

वैदिक क्रियाकलाप का रहस्य और वैदिक कर्मकाण्ड की यथाक्रम पद्धति सिखलाकर वैदिक

क्रियाशक्ति की पूर्णता करते हैं।

व्याकरणशास्त्र

वेदोक्त अक्षरयोजना, योजनाक्रम और योजनाक्रम से अक्षरार्थनिर्णय कराकर वेद में प्रवेश करने का द्वार खोल देते हैं।

निरुक्तशास्त्र

वेदोक्तशब्दों से वेद सम्मतभाव का पता बताकर शब्द की सहायता से अनादि, अनन्त और अलौकिक भावराज्य में जिज्ञासु को प्रवेश कराते हैं।

छन्दःशास्त्र

स्थूल वेदमयी ऋचाओं की अन्तर्निहित दैवीशक्ति का पता लगाकर उनके द्वारा दैवी कार्य लेने की शक्ति बतलाते हुए, उनके प्रयोग करने का दैवीमार्ग बताते हैं।

ज्योतिषशास्त्र

साधक को जगत् के आधाररूपी काल का स्वरूपज्ञान कराकर कालसेवा की रीति बताते हुए, साधक को वेदोक्त साधनादि में सफलता पाने के उपयोगी बना देते हैं। इसी कारण वेदों के इन छहों अंगों में बिना पूर्ण अधिकार प्राप्त किये वेदपारावार में प्रवेश करने की इच्छा करना दुराशा मात्र है।

वेदों में प्राप्त सृष्टिसंरचना के विचार

डॉ0 पुष्पा त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत्।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।। (ऋ0 10.190.1,2)

उपरिलिखित वैदिक मन्त्र से आचमन कर संध्या का विधान प्रतिपादित है। वैदिक सृष्टि का मूलाधार ऋत की अवधारणा है। ऋत की व्युत्पत्ति गत्यर्थक ''ऋ'' धातु से सम्पन्न होती है। अतएव ऋत का मूल अर्थ गति एवं गति का मार्ग, हेतु और लक्ष्य होता है। लक्षणाशक्ति से इसका अर्थ गति का नियम, ठीक या सही प्रकार की गति होता है। ऋत का सत्य से अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सृष्टि का समग्र संचालन इन्हीं दो मूल तत्त्वों से सम्पन्न होता है। उद्धृत मन्त्र का आशय इसी तत्त्व की ओर इंगित करता है। ऋत और सत्य दीप्तिमान तप से उत्पन्न हुए। पुनः रात्रि प्रकट हुई, रात्रि से तरंगित समुद्र अस्तित्व में आये। तरंगित समुद्रों से संवत्सर की उत्पत्ति हुई। फिर विश्वाध्यक्ष ने दिन और रात्रि का निर्माण किया, तदनन्तर धाता ने सूर्य और चन्द्र को संकल्पित किया। क्रमशः आकाश और पृथिवी तथा अन्तरिक्ष और सूर्य प्रकट हुए। इसप्रकार काल प्रेरित सृष्टिविधान अग्रेसर हुआ। स्पष्ट है कि इस समग्र प्रक्रिया का नियामक काल तत्त्व ही है जिसका क्रमप्रवर्तन पूर्वकल्पों से अद्यावधि चलता चला आ रहा है। इन मूल संकेतों के ग्राहक स्रोत वेद ही हैं।

वेद में इस पूरी सृष्टिप्रक्रिया का क्रमिक निरूपण अनेक सूक्तों में उपन्यस्त प्राप्त होता है। जो भगवत्कृपा से पूर्णश्रुत जन होते हैं उनके विचार के समक्ष यह तथ्य उद्घाटित होते हैं। वेद भगवान् भी गुरुकृपा सम्पन्न जन को ही यह श्रेय देते हैं कि, वह उन यत्र तत्र प्रकीर्ण संकेतों के सूत्र आपस में पिरोकर लोक सामान्य के हित के लिए उन्हें उनके ग्राह्य रूप में प्रस्तुत कर सके। अल्पश्रुत से वेद भी डरते हैं– शास्त्र कहता है– **''विभेत्यल्पश्रुतात् वेदो, मामयं प्रहरिष्यति''।** यह सनातन शक्ति गुरु परम्परा के ही माध्यम से अग्रसर होती चली आई है। अस्तु अब इस प्रक्रिया का क्रमिक विचार आरम्भ किया जाता है।

सर्जना का आरम्भ हुआ। चारों ओर अप्रकेत सलिल राशि का अनन्त विस्तार था। आदि अन्तहीन जल का प्रसार, प्रवाह और गर्जन। जीवन के शेष सारे उपादान पृथिवी, अग्नि, वायु और आकाश सब के सब बस केवल जल में समाहित थे। इसीलिए सारा बल, सारी शक्ति, ऊष्मा, ऊर्जा, सारी गन्ध, सारे शब्द, समस्त स्पर्श, सारे रस, समस्तरूप सब जल में रूपान्तरित हो गये थे। रचना की हलचल आरम्भ हुई। जल में क्षोभ हुआ। हिलोरें भरती जलराशि को अपनी कोख में छुपाए हिरण्यगर्भ का अस्तित्त्व अनुभव में आया। लगा कि सारी सृष्टि सब उसी में समाई हुई है। उसने ही पृथिवी और द्युलोक दोनों को धारण कर रखा है।

सारी आहुतियाँ उसी भूतपति सर्वव्यापक, सर्वात्मा प्रजापति को अर्पित हो रही हैं–

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। (ऋ0 10.121.1)

सृष्टि के उद्भव के स्पष्ट संकेत ऋग्वेद के नासदीयसूक्त में प्राप्त होते हैं। इसके ऋषि प्रजापति और देवता सृष्टि–उत्पत्तिस्थितिप्रलयकर्ता परमात्मा कहे गये हैं। इस सूक्त में सृष्टि के पूर्व की अवस्था से सृष्टि के क्रमिक विकास के प्रारम्भ का निरूपण हुआ है–

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।। (ऋ010.129.1)

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के पहले प्रलयदशा में असत् अर्थात् अभावात्मक तत्त्व नहीं था तथा सदात्मक, सत्तात्मक तत्त्व भी नहीं था। रजः पदवाच्य पृथिवी से लेकर पाताल पर्यन्त लोकों की भी सत्ता नहीं थी। अन्तरिक्ष भी नहीं था एवं अन्तरिक्ष से परे जो कुछ भी है, वह भी नहीं था।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न पुरः किंचनास।। (ऋ0 10.129.2)

उस प्रलयकाल में मुत्यु नहीं थी और अमृत अर्थात् मृत्यु का अभाव भी नहीं था। रात्रि और दिन का ज्ञान भी नहीं था। वह ब्रह्म तत्त्व ही प्राण से युक्त, अपनी क्रिया से शून्य और माया के साथ अविभक्त एक रूप में विद्यमान था। उस मायासहित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी नहीं था और उससे परे भी कुछ नहीं था।

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा। (ऋ0 10.129.3)

सृष्टि की उत्पत्ति के समय सबसे पहले वह काम अर्थात् सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुई जो परमेश्वर के मन में सबसे पहला सृष्टि का बीज रूप कारण हुआ। अस्तित्व रूप से विद्यमान जगत् के बन्धन के कारण को क्रान्तदर्शी ऋषियों ने अपनी बुद्धि से हृदय में विचार कर भाव से विलक्षण अभाव को खोजा।

उस परमात्मा में संकल्प की शक्ति आविर्भूत होने को थी। उस एक से अनेक की सर्जना आकार लेने वाली थी। उपनिषद् कहता है–

सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेयेति। (तै0उ0, ब्रह्मानन्द वल्ली, अनु.–6)
तदैक्षत्। एकोऽहम्। बहुस्याम प्रजायेय। (छा0उ0)

मन में इच्छा, अभिलाषा, संकल्प का उदय हुआ। उसने सोचा मैं अकेला हूँ, बहुत सारे रूपों में विभक्त हो जाऊँ। क्रमशः सात लोकों की सृष्टि होती है। पुनः लोकपाल फिर जलमहाभूत अस्तित्व पाता है। जल को अभितप्त कर सोम तत्त्व का निर्माण होता है, तदनन्तर, इन्द्रियों, उनके विषयों की और उनके घनीभूत देवों की सर्जना आकार लेती है।

आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्।
स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति। (ऐ0 उ0 1.1)

इस जगत् के प्रकट होने के पहले कारण अवस्था में एकमात्र परमात्मा ही थे। उस समय उस परब्रह्म परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई भी चेष्टा करने वाला नहीं था। उसने विचार किया मैं प्राणियों के भोगार्थ भिन्न–भिन्न लोकों की रचना करूँ –

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण
दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः।। (ऐ0 उ0 1.1.2)

यह विचार कर परमात्मा ने अम्भ, मरीचि, मर और जल इन लोकों की रचना की। इन शब्दों को स्पष्ट करने के लिए श्रुति में कहा गया है कि स्वर्गलोक से ऊपर जो महः, जनः, तपः और सत्यलोक हैं, वे और उनका आधार द्युलोक, इन पाँचों लोकों को **'अम्भः'** नाम से कहा गया है। उससे नीचे अन्तरिक्षलोक, जिसमें सूर्य ,चन्द्र, तारागण ये सब किरणों वाले लोकविशेष हैं उसका वर्णन मरीचि नाम से किया गया है। उसके नीचे पृथिवीलोक जिसे **मृत्युलोक** कहते हैं, वह वहाँ **''मर''** नाम से कहा है।

पृथिवी के भीतर जो पातालादि लोक हैं वे **'आपः'** के नाम से कहे गये हैं। अर्थात् जितने भी लोक–त्रिलोकी, चतुर्दश भुवन एवं सप्त लोकों के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सब लोकों की परमात्मा ने रचना की।

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्।।

(ऐ0 उ0 1.1.3)

इसके बाद परमात्मा ने लोकपालों की रचना की। जल आदि सूक्ष्म महाभूतों में से हिरण्यगर्भ पुरुष को निकाल कर उसको समस्त अंग–उपांगों से युक्त करके मूर्तिमान् बनाया। यहाँ 'पुरुष' शब्द से सृष्टिकाल में प्रकट किये जाने वाले ब्रह्मा का वर्णन किया गया है, क्योंकि ब्रह्मा से ही सब लोकपालों और प्रजा को बढ़ाने वाले प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है– ब्रह्मा की उत्पत्ति जल के भीतर से कमल नाल से हुई –

तमभ्यतपत्तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डं मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणःप्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्रादि्दशस्त्वङ् निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या आपानोऽपानान्मुत्युः शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः।। (ऐ0 ब्रा0 1.2.4)

इस प्रकार हिरण्यगर्भ पुरुष को उत्पन्न करके उसके अंग–उपांगों को व्यक्त करने के उद्देश्य से परमात्मा ने संकल्परूप तप किया। उस तप के फलस्वरूप हिरण्यगर्भ पुरुष के शरीर में सर्वप्रथम अण्डे की भाँति फटकर मुख छिद्र निकला। मुख से वाक्इन्द्रिय और वाक्इन्द्रिय से उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि उत्पन्न हुए। नासिका से दोनों छिद्र, उनमें से प्राणवायु प्रकट हुआ, प्राणों से वायु देवता। वाक् इन्द्रिय

साथ–साथ रसना इन्द्रिय और उनके देवता की भी उत्पत्ति हुई ऐसा समझना चाहिए। फिर आखों के दोनों छिद्र उनमें से नेत्रेन्द्रिय– उनके देवता सूर्य। कानों से दोनों छिद्र– श्रोत्रेन्द्रिय देवता–दिशाएँ। त्वचा–रोम–औषधियाँ एवं वनस्पतियाँ। हृदय से मन, मन से उसके अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा। नाभि से अपानवायु–गुदेन्द्रिय–उसके अधिष्ठातृ मृत्युदेवता की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में भी कहा गया है–

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।। (ऋ0 10.90.13)
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्। (ऋ0 10.90.14)

शतपथ ब्राह्मण में भी सृष्टि के उत्पत्ति के विषय में कहा गया–

प्रजापतिर्ह वा इदमग्र एक एवास। स ऐक्षत 'कथं नु प्रजायेय' इति।
सोऽश्राम्यत्, सं तपोऽतप्यत सोऽग्निमेव मुखाज्जनयाञ्चक्रे।। (श0ब्रा0 2, 2, 2, 2, 4 ,1)

सृष्टि में प्रजापति पहले अकेले ही थे उन्होंने सोचा, कैसे अन्य प्राणियों को उत्पन्न (प्रकट) करूँ। उन्होंने श्रम और तप किया। तप के प्रभाव से प्रजापति ने मुख से अग्नि को उत्पन्न किया। अग्नि में आहुति देने के लिए हथेलियाँ मलीं तो रोमयुक्त दुग्ध–आहुति द्रव्य प्राप्त हुआ। यह केशमिश्रित आहुति अग्नि को पसन्द नहीं आयी। अग्नि ने उसे पृथिवी पर डाल दिया वही ओषधियाँ उत्पन्न हुईं।

ततः ओषधयः समभवन्। (श0ब्रा0 2.2.2.2.4.5)
एवमग्नौ प्रक्षिप्तात् तस्मात् ओषधयः पृथिव्यां समभवन्। (सा0 भा0)

आहुतियों के प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य आदि देव उत्पन्न हुए। पुनः उन्होंने प्रजाओं को उत्पन्न किया–

ते हुत्वा देवा इमां प्रजातिं प्रजायन्त । (श0ब्रा0 2.2.1.2.4)

परमात्मा के द्वारा रचे गये इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं मिला, जिस समष्टि में वे रह सकें। परमात्मा ने उन्हें भूख और प्यास से संयुक्त कर दिया, जिससे पीड़ित होकर देवताओं ने परमात्मा से प्रार्थना की– हे भगवान्! हमारे लिए किसी ऐसे स्थान की व्यवस्था कीजिए जिसमें हम रहकर अन्न भक्षण कर सकें। तब परमात्मा ने गौ का शरीर बनाया, देवताओं ने कहा –इससे हमारा कार्य नहीं चल सकेगा, तब उन्होंने घोड़ा बनाया, देवों ने कहा –यह हमारे लिए यथेष्ट नहीं है ,कोई और शरीर बनाकर दीजिए–

ताभ्यो गामानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽमलमिति
ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति।। (ऐ0 उ0 1.2.2)
तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः।। (ऋ0 10.90.10)

तब परमात्मा ने उनके लिए पुरुष शरीर की रचना की। उसे देखते ही सब देवता बड़े प्रसन्न हुए। तब परमात्मा ने कहा –तुम लोग अपने–अपने योग्य स्थान को देखकर शरीर में प्रवेश कर जाओ।

ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं बतेति। पुरुषो वाव सकृतम्।
ता अब्रवीद्यथायतनं प्राविशतेति। (ऐ0 उ0 1.2.3)

वाक्–मुख में, वायु–नासिका, (अश्विनीकुमार भी घ्राण–इन्द्रिय का रूप धारण कर नासिका में प्रविष्ट हो गये) सूर्य–नेत्र, दिशाभिमानीदेवता–श्रोत्रेन्द्रिय, ओषधि–वनस्पति के अभिमानी देवता–रोम, चन्द्रमा–मन, मृत्युदेवता अपानवायु–नाभि,जल के अधिष्ठातृ देवता–वीर्य बनकर लिंग में प्रविष्ट हो गये।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाक्षिणी प्राविशद्दिशिः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोभानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राशिन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्। (ऐ0 उ0 1.2.4)

तब भूख और प्यास दोनों परमेश्वर से कहने लगीं हमारे लिए भी स्थानविशेष की व्यवस्था करके हमें स्थापित कीजिए। परमात्मा ने कहा देवताओं के आहार में तुम दोनों को भागीदार बना देता हूँ। जब किसी भी देवता को देने के लिए इन्द्रियों द्वारा विषय भोग ग्रहण किये जाते हैं उस देवता के भाग में क्षुधा एवं पिपासा भी हिस्सेदार होती हैं। अर्थात् देवता की तृप्ति के साथ क्षुधा पिपासा भी शान्त होती हैं।

इन सब की रचना हो जाने पर परमात्मा ने इनके निर्वहन के लिए अन्न की रचना की।

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा इति। (ऐ0उ0 1.2.1)

उस पुरुष ने अपानवायु द्वारा मुख से अन्न शरीर में प्रवेश करने की चेष्टा की तब अन्न अपने शरीर में ले जा सका। वह अपानवायु जो बाहर से शरीर के भीतर प्रयास के रूप में जाता है। प्राणवायु के सम्बन्ध में प्रसिद्धि है कि यही अन्न के द्वारा मनुष्य के जीवन की रक्षा करने वाला है अर्थात् साक्षात् आयु है।

तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् सैषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः। (ऐ0उ0 1.2.10)

लोक और लोकपाल की रचना के उपरान्त मनुष्यों के लिए अन्न (आहार) भी उत्पन्न हो गया एवं शरीरधारी उस पुरुष ने आहार ग्रहण करना भी सीख लिया। तब सर्वद्रष्टा परमात्मा ने विचार किया– यह मनुष्यरूप पुरुष मेरे बिना कैसे रहेगा। यदि जीवात्मा के साथ मेरा सहयोग नहीं होगा तो उसका टिक पाना असम्भव होगा। गीता में भी भगवान् ने स्वयं कहा है –

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्।। (गीता–10.39)

समस्तभूतों का जो कारण है वह मैं हूँ। ऐसा कोई भी चराचर प्राणी नहीं है, जो मुझसे रहित हो।अतः उन्होंने मनुष्य शरीर में प्रवेश करने का विचार किया–

स एतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्।
तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः, अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति।।
स जातो भूतान्यभिव्यैख्यत् किमिहान्यं वावदिषदिति। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म
ततममपश्यत् इदमदर्शमिति।। (ऐ0 उ0 1.2.12–13)

परमात्मा इस मनुष्य शरीर की सीमा को अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र को चीरकर उस सजीव मनुष्य में प्रविष्ट हो गये। वह यह द्वार 'विदृति' नाम से प्रसिद्ध है। यह वह विदृति नामक द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) आनन्द देने वाला अर्थात् आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कराने वाला है। परमेश्वर की उपलब्धि के तीन स्थान हैं, तीन स्वप्न हैं। 1. हृदयाकाश 2. विशुद्ध आकाश रूप (जिसको सत्यलोक, गोलोक, ब्रह्मलोक, साकेतलोक, कैलाश आदि नामों से जाना जाता है) 3. यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड। इस जगत् की स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप तीन अवस्थाएँ ही तीन स्वप्न हैं।

सामवेदीय महोपनिषद् के प्रथम अध्याय में कहा गया है, सृष्टि के पूर्व निश्चयपूर्वक एक नारायण थे, ब्रह्मा, रुद्र, जल, अग्नि, सोम, द्युलोक, भूलोक, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्रमा भी नहीं थे। उस परमपुरुष ने अन्तःस्थ संकल्परूपी ध्यान यज्ञस्तोम (महानयज्ञ) किया, उससे चौदह पुरुष, एक कन्या उत्पन्न हुई। दस इन्द्रिय, मन, अहंकार, प्राण तथा आत्मा– ये ही चौदह पुरुष, पन्द्रहवीं बुद्धि ही कन्या है। इसके अतिरिक्त सूक्ष्मभूतरूपी पंचतन्मात्राएँ तथा पंचमहाभूत। इन पच्चीस तत्त्वों का एक पुरुष (विराटशरीर) बना, उसमें विराट् पुरुष ने प्रवेश किया। पुनः उन्होंने ध्यान किया तो ललाट से तीन नेत्रों वाला हाथ में त्रिशूल लिए पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके अंग में– यश, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, स्वाधीन, मन, ऐश्वर्य और प्रणव के साथ महाव्याहृतियाँ, ऋग्वेद, यजुर्वेद,सामवेद,अथर्ववेद तथा सारे छन्द समाश्रित थे। इसीलिए वे महान् देव 'ईशन' और महादेव कहलाये।

पुनः अन्तःस्थ ध्यानी के ललाट से स्वेद गिरा, वह फैलकर जल बन गया। उस जल से हिरण्यमय तेज के रूप में अण्ड उत्पन्न हुआ, जिससे चतुर्मुखब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। पूर्वदिशा की ओर मुख करके भू व्याहृति, गायत्री छन्द, ऋग्वेद एवं अग्नि देवता का ध्यान किया। पश्चिम की ओर मुख करके– भुवः व्याहृति, त्रिष्टुप्छन्द, यजुर्वेद एवं आयु देवता का ध्यान किया। उत्तर की ओर मुख करके– स्वः व्याहृति,जगतीछन्द, सामवेद एवं सूर्य देवता का ध्यान किया। दक्षिण की ओर मुख करके महः व्याहृति, अनुष्टुप्छन्द, अथर्ववेद तथा सोम देवता का ध्यान किया।

सहस्रों सिरवाले, सहस्रों नेत्रवाले, सर्वकल्याण हेतु, सर्वव्याप्त, परात्पर, नित्य, सर्वरूप ये परमपुरुष ही विश्वरूप हैं, सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति के कारण है तथा इन पर ही सम्पूर्ण विश्व का जीवन अवलम्बित है।

संस्कृतवाङ्मय में सत्यं शिवं सुन्दरम् का मञ्जुल सामञ्जस्य

डॉ0 दिव्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक हमारे पूर्वजों ने, विद्वानों और मनीषियों ने जीवन और जगत् से प्राप्त अनुभूतियों एवं ज्ञान का जो संचय संस्कृतभाषा के वैदिक और लौकिक रूपों में किया है, ज्ञानराशि के उस संचित भण्डार का नाम साहित्य है। **'सहितस्य भावः कर्म वा साहित्यम्'** के अनुसार जिसमें सबों के हित या कल्याण की भावना छिपी हो, उसे साहित्य कहते हैं। वेदों की चार मूल संहिताएँ, उन–उन संहिताओं से सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदाङ्ग आदि ग्रन्थसमूहों तथा शास्त्रों का अन्तर्भाव वैदिक वाङ्मय में होता है। रामायण, महाभारत, पुराण, काव्य, महाकाव्य, खण्डकाव्य (गीतिकाव्य), चम्पूकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका, आख्यान तथा नाटकादि एवं समस्त कलात्मक और शास्त्रीयसाहित्यादि संस्कृतवाङ्मय के लौकिक साहित्य के अन्तर्गत निहित हैं।

प्राचीनकाल से लेकर आज तक संस्कृतवाङ्मय में जितनी भी रचनाएँ हुई हैं तथा हो रही हैं, सभी का उद्देश्य शिक्षाप्रद उपदेशों के माध्यम से लोककल्याण करना है। पेटर महोदय ने यह स्वीकार किया है कि महान् साहित्य सदा ही लोककल्याण का साधक होता है। भारतीय सौन्दर्यधारणा में मनुष्य और प्रकृति दोनों एक ही सौन्दर्यतत्त्व का अनुभव करते हैं। संस्कृतवाङ्मय के प्रायः सभी कवियों ने अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बहिर्जगत् में देखते हुए प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। प्रकृति सौन्दर्य, नारी तथा पुरुष सौन्दर्य की जो छटा हमें संस्कृतवाङ्मय के कवियों की कृतियों में दिखाई देता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृतवाङ्मय में हमें **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का अपूर्व योग दिखाई देता है।

काव्य में सत्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि सत्य साहित्य है, साहित्य कला है और कला ही काव्य है। मनुष्य जब अपनी स्वार्थपरिधि अथवा **'अयं निजःपरो वेति'** की भावना से बाहर निकल जाता है तो उसमें **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** की भावना आ जाती है, ऐसी स्थिति में पहुँचकर 'सर्वजनहिताय' या 'सर्वजनसुखाय' की भावना से प्रेरित होकर अपने हृदयस्थ भावों की अभिव्यक्ति के लिए अत्यन्त लोकोत्तर, चमत्कारपूर्ण, हृदयावगाही अर्थ से युक्त पदों में रचना करता है तो वह काव्य कहलाता है। आचार्य आनन्दवर्धन ने **'सहृदयहृदयाह्लादि शब्दार्थमयत्वमेव काव्यलक्षणम्'**[1], आचार्य मम्मट ने **'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि'**[2] तथा आचार्य भामह ने **'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'**[3] कहा है। प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने अपने काव्यलक्षण में शब्द और अर्थ दोनों का उल्लेख किया है किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ ने **'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'**[4] अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य माना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सारा संसार ही शब्द प्राकृतिक है। शब्द श्रवणेन्द्रियग्राह्य है। शब्द का उच्चारण करते ही अर्थ आ जाता है, अतः शब्द का अर्थ के साथ तादात्म्य

सम्बन्ध है। प्रवृत्ति–निवृत्ति का मूल रूप शब्द ही है, इसलिए शब्द को ब्रह्म कहा गया है। 'ऊँ' ही शब्द रूप में ब्रह्म है। सारी ध्वनियाँ इसी से विकसित होती हैं। जितने भी वर्णों का ज्ञान होता है वह सब ब्रह्म के माध्यम से ही होता है। अतः ब्रह्म ही सत्य है **'सत्यं ब्रह्म'**[5]।

सत्य ही शिव है। शिव की शक्ति का प्रसार ही सृष्टि है। शिव ही साक्षात् संसार के रूप में अभिव्यक्त होता है। अतः यह संसार ही शिव है। काव्य का परमतत्त्व शिव है। यहाँ शिव का तात्पर्य लोककल्याण से है। अतः काव्य लोककल्याणकारी होता है। कवि के अन्तर्गत जो प्रतिभा होती है वह शिवरूप है। अपनी प्रतिभा के स्वातन्त्र्य से कवि काव्य की रचना करता है। कवि कर्म को काव्य तथा कवि को काव्यसंसार का स्रष्टा (प्रजापति) कहा गया है –

'अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः ।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते ।।'[6]

आचार्य मम्मट ने काव्यप्रयोजनों में **'सद्यः परनिर्वृतये'** तथा **'कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे'** को मुख्य प्रयोजन के रूप में माना है –

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।' [7]

काव्य अमङ्गल के नाश के लिए एवं कान्ता के सदृश उपदेश के लिए होता है।

आदिकाव्य रामायण में राम के जीवन–चरित के माध्यम से कवि ने उच्चतम आदर्श को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। पिता की आज्ञापालन का, भ्रातृ सेवाभाव का तथा पातिव्रतधर्मपालनादि का अत्यन्त सुन्दर एवं लोककल्याणकारी उपदेश दिया गया है, जो निश्चित रूप से अनुकरणीय है।

महाभारत के भीष्मपर्व के श्रीमद्भगवद्गीता में जो उपदेश दिये गये हैं, वे सभी जीवन के लिए अत्यन्त ही उन्नतिकारक हैं। मनुष्य को फल की इच्छा किये बिना निरन्तर कर्म करते रहना चाहिए, यही गीता का चरम सिद्धान्त है –

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्माते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।'[8]

अपने कर्म के प्रति असावधान रहने पर दण्ड के विधान का वर्णन भी संस्कृतकाव्यों में उपलब्ध होता है जैसा कि मेघदूत में अपने कार्य के प्रति असावधान रहने के कारण यक्ष को कुबेर के शाप से शापित होना पड़ा था –

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्षभोग्ये न भर्त्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ।।[9]

जीवन को सभ्य तथा सुसंस्कृत बनाने के उद्देश्य से संस्कृतवाङ्मय में नीतिकाव्यों तथा सुभाषितसङ्ग्रहों आदि की रचनाएँ हुई हैं, जिनमें पञ्चतन्त्र, हितोपदेश तथा नीतिशतक प्रमुख ग्रन्थ हैं। इन सभी ग्रन्थों में ग्रन्थकार ने अपने जीवन की छोटी से छोटी अनुभूति एवं दार्शनिक गूढ़ विचारों को काव्य के मधुमय आस्वाद के साथ प्रस्तुत किया है, जिससे कि वह सर्वजनग्राह्य हो सके।

काव्य की एक विधा नाटक है। ऐसा कोई भाव, अवस्था अथवा लोकवृत्त नहीं है, जिसका चित्रण नाटक में न हुआ हो –

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।।'[10]

नाटक में उत्तम, मध्यम तथा अधम सभी प्रकार के पात्रों का चित्रण होने के कारण तथा जीवन के वास्तविक सत्य का उद्घाटन होने के कारण वह सत्य है। हितोपदेशक होने के कारण शिव है –

'उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम् ।
हितोपदेशजननं धृति–क्रीडा–सुखादिकृत् ।।'[11]

नाटक विश्रान्तिजनक, विनोदजनक तथा क्रीडनीयक होने से सुन्दर भी है –

'दुःखार्त्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ।।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।'[12]

काव्य की ही एक विधा प्रकरण है –

'नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः ।
इहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ।।'[13]

महाकवि शूद्रक ने 'मृच्छकटिकम्' प्रकरण के माध्यम से जनसामान्य के लिए यह सन्देश देने का प्रयास किया है कि सन्तोष से बढ़कर दूसरा कोई सुख नहीं है। जैसे – रोहसेन अपनी मिट्टी की गाड़ी से सन्तुष्ट नहीं है, वह पड़ोसी के पुत्र की सोने की गाड़ी लेना चाहता है, जिसके कारण उसे आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। चारुदत्त अपनी पत्नी धूता से पूर्णतया सन्तुष्ट नहीं हो पाता है, वह वसन्तसेना की ओर भी आकृष्ट होता है, इस कारण उसका जीवन कष्टमय हो जाता है।

उत्तररामचरितम् में महाकवि भवभूति ने अष्टावक्र के मुख से सीता के लिए महर्षि वशिष्ठ का जो सन्देश कहलवाया है वह न केवल सीता के लिए अपितु समस्त नारी जाति के लिए अनुकरणीय है –

'विश्वम्भरा भगवती भवतीमसूत
राजा प्रजापतिसमो जनकः पिता ते ।
तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि ! पार्थिवानां
येषां कुलेषु सविता च गुरुर्वयं च ।।'[14]

तुम पृथ्वी की पुत्री हो। माता का गुण पुत्री में अवश्य ही आता है अतः तुम्हें पृथ्वी के समान सहनशील और धैर्यशालिनी होना चाहिए। **'माता भूमि पुत्रो अहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता'** के अनुसार हम सभी पृथ्वी की सन्तान हैं, अतः जिस प्रकार पृथ्वी कष्टों को सहन करती हुई ऊफ तक नहीं करती है उसी प्रकार हमारे भीतर भी दुःखों को सहन करने की शक्ति होनी चाहिए। **'प्रजापतिसमः जनकः पिता ते'** तथा **'तेषां वधूस्त्वमसि नन्दिनि ! पार्थिवानां'** के द्वारा कवि सभी बेटियों के लिए यह शिक्षा देना चाहते हैं कि बेटियों को पितृकुल तथा श्वसुरकुल दोनों की ही मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।

संस्कृतवाङ्मय में स्थान–स्थान पर पुत्रियों के लिए लोककल्याणकारी उपदेश भरे पड़े हैं। जैसे – 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का एक श्लोक अत्यन्त ही प्रसिद्ध है –

'शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ।।'[15]

मनुष्य स्वभावतः सौन्दर्यप्रेमी होते हैं। सुन्दर वस्तुओं के प्रति उनका स्वाभाविक आकर्षण होता है फिर कवि की तो बात ही क्या ? केवल संस्कृत के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण प्राच्य वाङ्मय के कवियों ने अपनी कृतियों में सौन्दर्य चित्रण किया है। चाहे वह प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन हो अथवा स्त्री एवं पुरुष सौन्दर्य का वर्णन हो। प्रसिद्ध दार्शनिक हेगेल ने कहा है कि जड़ के द्वारा चेतन को व्यक्त करना या अमूर्त्त के द्वारा मूर्त्त को निरूपित करना ही सौन्दर्यशास्त्र का मूल है। जैसा कि मेघदूत में देखने को मिलता है –

'धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ।।"[16]

प्रकृति के मानवीकरण का अत्यन्त ही सुन्दर उदाहरण अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दिखाई देता है –

'क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं
निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित् ।
अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै
र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिद्वन्द्विभिः ।।'[17]

महाकवि कालिदास ने सौन्दर्य का परम तत्त्व पवित्रता में माना है। उनका मानना है कि स्वाभाविक पवित्र सौन्दर्य बिना सूँघे हुए फूल, नाखूनों से न नोचे गये किसलय, बिना बिधा हुआ रत्न, बिना चखा हुआ मधु तथा पुण्यों के अखण्ड फल में निहित है –

'अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै –
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम् ।

अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः ।।'[18]

शकुन्तला के उत्कृष्टतम सौन्दर्य का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में मिलता है –

'चित्रे निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा
रुपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु ।
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः ।।'[19]

महाकवि कालिदास यद्यपि स्त्री और पुरुष दोनों के सौन्दर्य वर्णन में कुशल हैं किन्तु नारीसौन्दर्य के वर्णन में उनकी दृष्टि अत्यन्त ही सूक्ष्म है। 'मेघदूत' की तन्वी श्यामा, 'रघुवंश' की इन्दुमती, 'कुमारसम्भवम्' की पार्वती, 'मालविकाग्निमित्रम्' की मालविका तथा 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की शकुन्तला सभी नायिकाओं के सौन्दर्यवैभव से सहृदय अवश्य ही मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं।

पुरुषसौन्दर्य वर्णन में भी महाकवि कालिदास सिद्धहस्त हैं। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' का नायक राजा दुष्यन्त अतिशय सौन्दर्य से मण्डित, आकर्षक व्यक्तित्व से युक्त तथा अत्यन्त ही प्रभावशाली है तभी तो तापसकन्याएँ दर्शनमात्र से हठात् उनकी ओर आकृष्ट हो जाती हैं। प्रियंवदा कहती है – **'अनसूये! को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिश्चतुरं प्रियमालापयन् प्रभाववानिव लक्ष्यते'।**[20] द्वितीय अङ्क में राजा दुष्यन्त को देखकर सेनापति कहते हैं – **'गिरिचर इव नागः प्राणसारं बिभर्ति'।**[21] प्रथम अङ्क में रथारुढ़ होकर बाण का सन्धान किये हुए मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त को देखकर सारथि कहते हैं – **'मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्'।**[22] षष्ठ अङ्क में विरहावस्था में वियोग की अग्नि से दग्ध होने पर भी दुष्यन्त उसी प्रकार क्षीण दिखाई नहीं देते हैं जिस प्रकार खरीदकर काटा गया मणिखण्ड अपने स्वाभाविक चमक के कारण कभी क्षीण दिखाई नहीं देता – **'संस्कारोल्लिखितो महामणिरिव क्षीणोऽपि नालक्ष्यते'।**[23] उनके नयनाभिराम सौन्दर्य को देखकर कञ्चुकी कहते हैं – **'अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषाणाम्। एवमुत्सुकोऽपि प्रियदर्शनो देवः'।**[24]

महाकवि भवभूति ने 'उत्तररामचरितम्' के प्रथम अङ्क में चित्रदर्शन के प्रसङ्ग में सीता के मुख के द्वारा रामचन्द्रजी के नयनाभिराम सौन्दर्य का जो वर्णन किया है वह अत्यन्त ही अद्भुत है –

'अहो दलन्नवनीलोत्पलश्यामलस्निग्धमसृणशोभमानमांसलेन देहसौभाग्येन विस्मयस्ति मिततातदृश्यमानसौम्यसुन्दरश्रीरनादखण्डित शङ्करशरासनः शिखण्डमुखमण्डल आर्यपुत्रः आलिखितः'।[25]

आचार्य दण्डी ने 'दशकुमारचरितम्' में अवन्तिसुन्दरी के सौन्दर्य एवम् अङ्ग–प्रत्यङ्गों का अत्यन्त ही सुन्दर वर्णन किया है।

जिस प्रकार लोक में सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए आभूषणादि को धारण करते हैं उसी प्रकार कविताकामिनी को आकर्षक और भावस्पर्शी बनाने के लिए कवियों ने गुणों का आधान किया है तथा रस,

अलङ्कार एवं छन्दों की योजना की है। कुछ कवि काव्य में अलङ्कार की प्रधानता को स्वीकार करते हैं तो कुछ कवि रस को प्रधान मानकर सौन्दर्यसाधन के रूप में अलङ्कारों का प्रयोग करते हैं। चित्रकाव्य के चित्रकार कवि शब्दालङ्कारों पर तथा रसवादी कवि अर्थालङ्कारों पर अधिक बल देते हैं।

काव्य का मूल तत्त्व होता है आनन्द। काव्य में आनन्द की सृष्टि रसयोजना के द्वारा होती है। काव्य से प्राप्त आनन्द ब्रह्मानन्द के सदृश होता है, अतः काव्यानन्द को ब्रह्मानन्द का सहोदर कहा गया है।

साहित्य का जो काव्यात्मक स्वरूप है, उसके अमृतत्व को सुरक्षित करने के लिए कवियों ने अपनी कृतियों में छन्दों की योजना की है, क्योंकि जब भावों का पूर्ण आस्वादन होता है तभी नाद अमृतत्व को प्राप्त कर सकता है। छन्द का अर्थ होता है – आवरण, आच्छादन, सँवारना, सजाना तथा बचाना या सुरक्षित रखना आदि। सारे वर्ण छन्दों से आच्छादित हैं। छन्दों के बिना कोई भी वाणी प्रस्फुटित नहीं हो सकती। वर्णात्मिका या शब्दमयी वाणी ही देवता है और शब्दमयी देवता की सुरक्षा छन्दों के द्वारा ही होती है।

गुण, अलङ्कार, छन्द तथा रस आदि काव्य के सौन्दर्य की वृद्धि में उपकारक या सहायक होते हैं।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की वस्तुयोजना, पात्र एवं प्रकृतिचित्रण, प्रकृति–मानव तादात्म्य, अपूर्ववर्णनकौशल, मनोहर रस, अलङ्कार एवं छन्दयोजना तथा भाषालालित्य पर मन्त्रमुग्ध होकर जर्मन विद्वान गेटे ने लिखा है –

'वासन्तं कुसुमं फलं च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो –
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रिय सखे ! शाकुन्तलम् सेव्यताम्'।।[26]

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृतवाङ्मय में 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का अपूर्व योग दिखाई देता है।

सन्दर्भग्रन्थ

(1) ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत, पृष्ठ सं0 23
(2) काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, सूत्रसंख्या – 1
(3) काव्यालङ्कार (भामह) – 1, 6
(4) रसगङ्गाधर – 1/1
(5) बृहदारण्यकोपनिषद् – 5/4/1
(6) ध्वन्यालोक, तृतीय उद्योत
(7) काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास, कारिका सं0 – 2
(8) श्रीमद्भगवद्गीता – 2/247
(9) मेघदूत (पूर्वमेघ) – 1
(10) नाट्यशास्त्र – 1/116
(11) नाट्यशास्त्र – 1/113

(12) नाट्यशास्त्र – 1 / 114
(13) साहित्यदर्पण – 6 / 3
(14) उत्तररामचरितम् – 1 / 9
(15) अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4 / 18
(16) मेघदूत (पूर्वमेघ) – 5
(17) अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4 / 5
(18) ,, – 2 / 10
(19) ,, – 2 / 9
(20) ,, – प्रथम अंक पृष्ठसंख्या – 48
(21) ,, – 2 / 4
(22) ,, – 1 / 6
(23) ,, – 6 / 6
(24) ,, – षष्ठ अंक, पृष्ठ संख्या – 246
(25) उत्तररामचरितम् – प्रथम अंक, पृष्ठ संख्या – 44
(26) अभिज्ञानशाकुन्तलम् – भूमिकाभाग, पृष्ठ संख्या – 14

वैदिकवाङ्मय में काव्यसौन्दर्य

डॉ0 त्रिपुरसुन्दरी
अंशकालिक प्रवक्ता, संस्कृतविभाग

वैदिक वाङ्मय सम्पूर्ण सत्तात्मक विश्व के साथ–साथ समस्त चराचर व्यक्ताव्यक्त विश्व तथा विश्व मूलाधार का संकेत प्रदायक सत्याख्यान है। ऋषि के अन्तःकरण से निष्पन्न वैदिकवाङ्मय विषयवस्तु की महनीयता, अभिरामता, रुचिरता, आस्वाद्यता एवं प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से अप्रतिम है। प्रकृति के वैभव और जीवन में आनन्द से प्रेरित वैदिक ऋचाओं में रूप व रस का अपूर्व वर्णन है। फलतः अनेक काव्यसौन्दर्य रूप स्रोतस्विनियों के संगम से वैदिकवाङ्मय संवलित है।

यद्यपि आचार्य मम्मट ने वेदादि शास्त्रों को प्रभुसम्मित, पुराणादि को सुहृद एवं काव्यों को कान्तासम्मित श्रेणी में विभक्त कर वेद पुराण एवं काव्य का पार्थक्य सिद्ध कर दिया है। तथापि वेदों के अनेक स्थल काव्यात्म संस्पर्श से सुवासित हैं।

काव्यात्मक सौन्दर्य सौष्ठव की दृष्टि से वैदिकवाङ्मय की गुणवत्ता असंदिग्ध है। काव्यसौन्दर्य के सम्बन्ध में वेदों के मूल्यांकन की प्रक्रिया तो निरुक्त में ही प्रारम्भ दिखलाई देती है। काव्यात्मक सौन्दर्य के आधार स्वरूप रस, भाव, गुण, रीति और अलंकार आदि सभी तत्त्व के मूलरूप वेदों में उपलब्ध होते हैं। जिनके क्रमिक निरूपण के रूप में रस–निष्पत्ति व भाव विभूति के लिए भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र की वैदिक उपजीव्यता को उद्घाटित करते हुए नाट्यशास्त्र में कहा है –

जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।[2]

अर्थात् अथर्ववेद को रस स्रोत माना जाना चाहिए तथा अथर्ववेद में बहुत से ऋग्वेदीय मन्त्र हैं, इसलिए ऋग्वेद में भी रसगर्भ प्रसंग अवश्यम्भावी हैं। वस्तुतः वैदिक काव्य अधिकांशतया मुक्तकाव्यात्मक होते हैं। परन्तु इतिवृत्ति से रहित आलम्बन (नायक के नायिका अथवा नायिका के लिए नायक के रूप में) की स्थिति में कोई अन्तर नहीं आता। उदाहरण के लिए पुरुरवा और उर्वशी को यदि वायु और विद्युत मान लिया जाय जैसा कि 'वाररुचिनिरुक्तसमुच्चय' में नैरुक्तों के नाम से अभिमत प्रकट किया गया है–

य नैरुक्तपक्षे तु पुरूरवः मध्यमस्थानो वादवादीनामेकतः पुरूरौति इति पुरूः उर्वशी। उरुविस्तीर्णाम् अन्तरिक्षम् अभ्नुते दीव्यत इति उर्वशी। वर्षाकाले विद्युति विनष्टायां तथा नियुक्तः स्तनयित्नु लक्षणं शब्दं कुर्वन् विलपति।[3]

तब भी रस निष्पत्ति की दृष्टि से अन्य स्थितियाँ अनुकूल हैं। मेघदूत का यक्ष भी 'कश्चित्' ही है,

वहाँ नाम नहीं होने पर भी रसनिष्पत्ति होती है, निष्कर्षरूप में यह कह सकते हैं कि वैदिक–वाङ्मय में अनेक ऐसे सरस प्रसंग हैं, जिनमें रस–निष्पत्ति का अनुभव होता है। पुरुरवा उर्वशी के संवाद में विप्रलम्भशृंगार के अनेक हृदयदावक उदाहरण सन्निहित हैं –

उदपप्ताम वसतेर्वयो यथा रिणन्त्वा भृगवो मन्यमानाः।

पुरूरवः पुनरस्तं परेहि आ मे मनो देवजनाः अयान्त्स्युः।[4]

अथर्ववेद के अनेक सूक्तों में संयोग की कामना भी अत्यन्त आवेगपूर्वक व्यक्त हुई है –

आहं रिवदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ठ्यामिव।

रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः।।[5]

यहाँ किसी स्त्री के हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करने का वर्णन है। इसी प्रकार प्रेम की उष्मा से दग्ध स्त्री के मनोभाव के रूप में वर्णन है–

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।

यथासो मम केवलो नान्यासां कीर्तयाश्वन।।[6]

शृंगार की भाँति वेद में अन्य रसों की भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

इन्द्र की वीरता वर्णन क्रम में ऋषि गृत्समद् की उक्ति है –

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः।।[7]

अथर्ववेद में रस शब्द का वर्णन कई बार आया है। लाक्षणिक रूप से उसे आलोच्य 'रस' के सन्दर्भ में लिया जा सकता है। रति के अतिरिक्त शोक, भय, क्रोध और विस्मयादि भावों की अभिव्यक्ति भी वेदों में स्थान–स्थान पर दृष्टिगत है –

यथा विद्युद्धतो वृक्ष आ मूलादनु शुष्यति।
एवं स प्रति शुष्यतु यो मे पापं चिकीर्षति।।

इस मन्त्र में कहा गया है कि जिस पेड़ में विद्युत गिरती है, वह जैसे जड़ से सूख जाता है, वैसे ही कृत्या उस व्यक्ति को सुखा दे, जिसके हृदय में हमारे प्रति पाप भावना है।

वेद को शास्त्रकारों ने सामान्यतः शब्द प्रधान माना है, तदनुसार अभिधा का इसमें प्राधान्य है परन्तु काव्यों में अभिधा का विशेष महत्त्व नहीं होता है। कदाचित् इसीलिए ऋषियों ने मन्त्रों में भी स्थान–स्थान पर लक्षणा का आश्रय लिया है। ब्राह्मण–ग्रन्थों में विद्यमान लाक्षणिक प्रवृत्ति को निरुक्तकार यास्क ने इंगित किया है –

''बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि''[8]**।**

अभिप्राय यह है कि ब्राह्मणों ने देवों के विषय में भक्ति अथवा गुण कल्पना के माध्यम से बहुविध

तात्त्विक अन्वेषण किया है। अर्थवाद के भी तीन भेद हैं–गुणवाद, अनुवाद और भूतार्थवाद। गुणवाद लक्षणा के अत्यन्त निकट है। गुणवाद के सन्दर्भ में **स्तेनं मनः, आदित्यो यूपः, शृणोत ग्रावाणः** इत्यादि वैदिक उदाहरण उपलब्ध हैं।

साहित्य के ग्रन्थों में लक्षणा निरूपण के प्रसंग में आचार्यों ने इसीलिए **'सिंहो माणवकः' 'गौर्वाहीकः'** प्रभृति लौकिक उदाहरणों के साथ ही **'यजमानः प्रस्तरः', 'आदित्यो यूपः'** इत्यादि वैदिक उदाहरण भी दिये हैं। भोजराज ने तो अर्थवादात्मक लाक्षणिक प्रयोगों में निहित काव्यात्मक चारुता को भी वचनवक्रता के रूप में **''वक्रं यदर्थवादादौतस्य काव्यामिति श्रुति''** शृंगार प्रकाश में कहा है। वैदिकवाङ्मय के मीमांसकों ने व्यंजना के अस्तित्त्व को मान्यता ही नहीं दी है।

काव्यसौन्दर्य तत्त्वों में अलंकारों का विशेष स्थान है। अलंकार के होने से काव्यत्व में निखार आता है, उत्कर्षाधायक हो जाता है। शास्त्रकारों ने अलंकारों की तीन कोटियाँ मानी हैं–शब्दा, अर्था, उभया। जो शब्द पर आश्रित है, शब्द का परिवर्तन हो जाने पर अर्थात् किसी शब्द का पर्याय शब्द रख देने पर जहाँ अलंकार नहीं रहता वे शब्दालंकार हैं, किन्तु जो अर्थ पर आश्रित है, जहाँ किसी शब्द का पर्याय रख देने पर भी अलंकार बना रहता है, वे अर्थालंकार कहलाते हैं एवं जो शब्द और अर्थ दोनों पर आश्रित हैं, वे उभयालंकार कहलाते हैं।

वैदिकवाङ्मय में प्रायः सभी मन्त्रों में रसानुगमन करने वाले चमत्कारी वर्ण हैं। मन्त्रध्वनि में कर्ण कोमल एवं श्रुतिसुखद–पद वाक्य प्राप्त होते हैं। वेदमन्त्र में बहुत सुन्दर अनुप्रास अलंकारों का दर्शन किया जा सकता है। यथा–**'हिरण्यकर्णमणिग्रीवमर्ण'** जिसके सर्वांग में आचरण हो, कर्ण में हिरण्य–कुण्डल, ग्रीवा में रत्न आदि झलक रहे हों। इसी प्रकार अथर्ववेद में भी उदाहरण आया है। **''कुलायेऽधि कुलायं कोशे कोशः समुब्जितः।''**[9]

यमक अलंकार के रूप में ऋग्वेद का एक मन्त्र द्रष्टव्य है–

गत्ययीत्ग् भवति निर्णियजव्ययी।[10]

इसी प्रकार **'अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते'**[11] में शब्द का भिन्न–भिन्न अर्थ के रूप में प्रयोग हुआ है। उपमा अलंकार अर्थालंकारों में सबसे प्राचीन है। उपमा का वेद के संदर्भ में सर्वप्रथम विवेचन यास्क ने निरुक्त में किया है। तदनुसार उपमा वाचक निपात चार हैं – 'इव' 'न' 'चित्' और 'नु'। उपमा को परिभाषित करते हुए आचार्य गार्ग्य का मत है **यद् अतत् तत्सदृशं कर्म इति गार्ग्यः**। इसके अनन्तर यास्क का मत है–

ज्यायसा वा गुणेन प्रख्याततमेन वा कनीयांस वा अप्रख्यातं वा उपमिमीते। निरुक्तकार ने उपमा के कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा और लुप्तोपमा संज्ञक भेदों का उल्लेख किया है–ऋग्वेद के मन्त्र में उपमा का सौन्दर्य एवंविध है **सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।।** **1/115/2**

उपमा के अतिरिक्त वैदिकवाङ्मय में सर्वाधिक प्रयोग रूपक अलंकार का भी वर्णित है। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।[12]

इस मन्त्र में जीव और परमात्मा का निरूपण दो सुन्दर पक्षियों के रूप में एक ही वृक्ष पर समासीन रूप में किया गया है। विद्वान् इस मन्त्र में विभावना और विशेषोक्ति अलंकारों का भी उद्भव करते हैं।

साहित्यदर्पण में दिये विभावना अलंकार के लक्षणानुसार **''विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।**[13] अर्थात् बिना हेतु के कार्य होना। फल का भोग ही दैहिक सौन्दर्य या तेज का जनक है, जबकि यह कार्य यहाँ बिना फल–भोग–रूप हेतु के ही हो रहा है। इसी का विपरीतार्थ कर देने पर विशेषोक्ति हो जाती है–

''सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिर्बुधैर्मता'' हेतु के होने पर भी फल का न होना। यहाँ फल के रूप में तेज के अभाव का कारण विद्यमान है किन्तु वह है नहीं। इसी प्रकार ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा गया है:– **अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।''**[14]

स्तोता का जल में खड़ा होना और तृप्तिरूपक कार्य न होना विशेषोक्ति अलंकार का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त अर्थापति, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना अलंकार का भी दर्शन होता है। शब्दालंकार, अर्थालंकार के साथ–साथ उभयालंकार भी ऋग्वेद में द्रष्टव्य है। यहां कोई ऐसा मन्त्र नहीं है जहाँ शब्द और अर्थ के सौन्दर्य का एक ही वाक्य में सन्निवेश न हो। अलंकृत भाषा मन को सुकोमल, आनन्दित, प्रफुल्लित बनाती है। दसवें मण्डल में कहा गया–

''महामनसां भुवनच्यवाना घोषो देवाना जयतामुदस्थात्''[15]

इस मन्त्र मे हमारे मन की दिव्यता, भव्यता, मनस्विता, जयशीलता एवं उद्धत अपराधियों का दमन करने की मनोवृत्ति का ज्ञान होता है, भाषा में ओजभाव होने से इसे उभयालंकर की कोटि में माना जा सकता है।

इसी प्रकार अन्यान्य अनेक अलंकारों के रमणीय साक्ष्य वैदिक– वाङ्मय में उपलब्ध हैं। मन्त्रों में निहित मनोवैज्ञानिक सौन्दर्य के साथ–साथ काव्यसौन्दर्य भी अप्रतिम है। वैदिक नाना भणिति भङ्गी मन्त्र गर्भित काव्यसौन्दर्य तत्त्व रस, गुण, दोष, अलंकार इत्यादि वैदिक ऋषियों के समुच्छ्वास रूप हैं, जो कि विभिन्न देवताओं के स्वरूप प्रतिपादन में अथवा किसी प्रकार के अन्य प्रसंगों में जहां ऋषिमुख से भावातिरेक की स्थिति में प्रकारान्तर से स्वतन्त्र रूप में प्रस्फुटित हो गयी प्रतीत होती हैं। अतः यह कहना उचित होगा कि वेदों में काव्यशास्त्रीय विवेचन तो नहीं मिलता किन्तु काव्यसौन्दर्य तत्त्वों के भव्य एवं रमणीय उदाहरण का पर्याप्त रूपेण दिग्दर्शन किया जा सकता है। ये प्राचीनतम रूप होने पर भी सौन्दर्य और उत्कृष्टता की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं।

सन्दर्भग्रन्थ

1. मनुस्मृति 2 / 6
2. नाट्यशास्त्र 1 / 17
3. निरुक्तसमुच्चय
4. ऋग्वेद 3 / 19 / 1
5. अथर्ववेद 6 / 102 / 2
6. अथर्ववेद 7 / 37 / 1
7. ऋग्वेद 2 / 12 / 9
8. निरुक्त
9. अथर्ववेद 9 / 3 / 20
10. ऋग्वेद 9 / 60 / 4
11. ऋग्वेद 5 / 15 / 3
12. ऋग्वेद 1 / 164 / 20
13. साहित्यदर्पण 10 / 66
14. ऋग्वेद 7 / 89 / 4
15. ऋग्वेद 10 / 103 / 9

***

शोधप्रविधि–समस्याएँ एवं समाधान

डॉ0 सुचिता त्रिपाठी
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दीविभाग

खोज एवं अनुसंधान मानव जाति के लिए ऐसे दो शक्तिशाली साधन सिद्ध हुए हैं जिन्होंने प्रकृति के रहस्यों की थाह लेने और भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से ताल–मेल बिठाते हुए सुख और सुविधाजनक जीवन–यापन में उसकी बहुमूल्य सहायता की है। इनके द्वारा जो परिवर्तन लाये गये हैं उनके दर्शन हमें जीवन के हर क्षेत्र में नजर आ सकते हैं। गलत धारणाओं तथा अंध–विश्वास की परतों को हटाने में भी इनसे हमें काफी सहायता मिली है। आज हम अपनी असफलताओं का ठीकरा सितारों और ग्रहों की विपरीत स्थिति पर नहीं फोड़ते और न मंगल, चन्द्रमा तथा शुक्र को विभिन्न देवताओं के रूप में देखने की कोशिश करते हैं। बल्कि आज हम उस दिन का इन्तज़ार करते दिखाई देते हैं जब इन ग्रहों पर मानव बस्तियाँ बसेंगी। यह सब कुछ प्राकृतिक तथा प्रायोगिक विज्ञानों में किये जाने वाले अनुसंधानों तथा होने वाली खोजों के जरिये ही संभव हो पाया है। इसी प्रकार सामाजिक एवं व्यवहारजन्य विज्ञानों में किये जाने वाले अनुसंधानों ने भी हमारे व्यवहार करने और सामाजिक जीवन जीने की दिशा और दशा में क्रांतिकारी परिवर्तन किये हैं और फलस्वरूप शिक्षा, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और प्रबन्धन की दुनियां में आवश्यक व्यवस्था और अनुशासन बनाये रखकर फलदायी परिणाम प्राप्त करना संभव हो पाया है। परन्तु यह सब कुछ तभी संभव हो सकता है और आगे तभी संभव हो पायेगा जबकि इन खोजों और अनुसंधानों में प्रयुक्त विधियों और तकनीकों के प्रयोग का कार्य पूरी तरह तर्क–सम्मत, वैज्ञानिक और वैधानिक हो।

शोध, खोज, अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषणा सभी हिन्दी में पर्यायवाची शब्द हैं। इसी को मराठी में संशोधन और अंग्रेजी में रिसर्च कहते हैं। खोज में सर्वथा नूतन सृष्टि का ही नहीं, अज्ञात को ज्ञात करने का भी भाव रहता है।

पी0पी0 यंग के अनुसार –

Research May be defined "As the systematic method of discovering new facts or verifying the old facts, their sequences, interrelationships, casual explanations and the natural laws which govern them" - Young P.V.

सी0आर0 कोठारी के अनुसार –

अनुसंधान पद से तात्पर्य एक ऐसी व्यवस्थित विधि से है जिसमें सोपानों के रूप में समस्या की पहचान, परिकल्पना का निर्माण, तथ्य और प्रदत्तों का संकलन, संकलित तथ्यों का विश्लेषण तथा कुछ ऐसे निष्कर्षों पर पहुंचना निहित रहता है जिनकी अभिव्यक्ति समस्याविशेष के हल अथवा सैद्धान्तिक

आधार के रूप में सामान्यीकृत धारणाओं के रूप में दिखाई दे।

The term Research refers to the systematic method consisting of enunciating the problem, formulating a hypothesis, collecting the facts of data, Analysing the facts and Reaching certain conclusions either in the form of solutions, towards the concerned problem or in certain generalizations for some theoretical formulations - Kothari C.R. 1990

बहुत से शोध ऐसे किये जा रहे हैं जो सहज इंद्रियगम्य हैं और कुछ ऐसे भी शोध किये जा रहे हैं जो सहज इन्द्रियगम्य नहीं हैं, परन्तु उनके अस्तित्व को एकदम नकारा भी नहीं जा सकता। शेक्सपियर के 'हेमलेट' नाटक में जब हेमलेट का पिता प्रेत–रूप में प्रकट होकर बातें करने लगता है तो हेमलेट के मित्र होरेशियो का सिर घूम जाता है, उसे देखा दृश्य अनदेखा लगता है। कहता है–

O day and night, but this is wondrous strange

(हे दिन, हे रात, यह है क्या? यह तो चमत्कारपूर्ण आश्चर्य है।) हेमलेट भी प्रेतदर्शन से पहले तो चौंकता है। फिर संभलकर मित्र को समझाता है–

And therefore as a stranger, give it welcome, there are more things in the heaven and earth floratio, than are dreamt of in your Philosophy.

(इसलिए इस आश्चर्य का भी स्वागत करो, धरती और आसमान पर ऐसी अनेक वस्तुएँ हैं होरेशियो, जिनकी तुम्हारे दर्शन ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी) कहने का तात्पर्य है कि अनुसंधान के लिए विभिन्न क्षेत्रों में गुंजाइश पायी जाती है। जो तथ्य दृष्टि से ओझल हैं उन्हें भी प्रत्यक्ष करने की ओर शोधार्थी संलग्न रहते हैं। प्रेत–विद्या के अनुसंधाता भी देश–विदेश में मौजूद हैं। जब ब्रह्माण्ड के अनेक अदृश्य रहस्यों को अनुसंधाताओं ने रहस्य नहीं रहने दिया तब मरणोपरान्त जीवन भी कैसे रहस्य बना रह सकता है?

उपनिषद्कार कहते हैं–

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

हिरण्मय पात्र प्रतीकात्मक शब्द है जो माया या अज्ञान का द्योतक है। सत्य अर्थात् ज्ञान, अज्ञान के आवरण में छिपा रहता है। उसे निरावरण करने का कार्य 'तत्त्वदर्शी' (अन्वेषक) का है। वह आप्त–वचन को निष्क्रिय भाव से स्वीकार नहीं करता।

कालिदास कहते हैं–

पुराणमित्येव न साधु सर्वम्, न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्,
संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः। (मालविकाग्निमित्र)

प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री डेविड बॉब भी यही कहता है– ''नई सृष्टि का अर्थ यह हुआ कि यह न पुराने क्रमों की नकल करती है, न ही उनकी मौलिक सच्चाई के विपरीत जाती है। वह पुराने क्रमों की हमारी समझ को नए सन्दर्भों में ढालती है और इसके साथ–साथ हमारे ज्ञान के आयाम को विस्तृत करती है।

भारतीय पुराणों के सम्बन्ध में पाश्चात्त्य विद्वानों की धारणा थी कि वे पंडितों के कल्पनाविलास मात्र और भोली जनता को धर्मविश्वासी बनाने के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। परन्तु सत्यानुरागी शोधकर्ताओं पर्जीटर आदि ने उनमें अनेक ऐतिहासिक तथ्य खोजकर उनका महत्त्व प्रतिपादित किया है। वेदों के संबंध में भी पाश्चात्त्यों की भ्रांतिपूर्ण धारणा थी परन्तु मैक्समूलर जैसे शोधकर्ताओं ने उसमें एक समृद्ध ज्ञान का भण्डार खोज निकाला और आर्य जाति की विचार गरिमा का उद्‌घाटन किया।

ज्ञान के क्षेत्र में शोध का कार्य निरन्तर जारी रहता है। शोध ज्ञान की किसी एक सीमा तक पहुंचकर रुक नहीं जाता, वह आगे बढ़ता ही जाता है। विज्ञान के सिद्धान्तों को लोग प्रायः शाश्वत मानते रहे हैं, अब यह मान्यता भी खण्डित होने लगी है। वे परिस्थितिविशेष में भले ही सत्य अथवा अकाट्य रहे हों पर उनकी सत्यता और अकाट्यता सार्वकालिक सिद्ध नहीं हो पायी। विज्ञान का सृजनशील विकल्प तभी संभव है जब हम अब तक की जानी हुयी मौलिक समानताओं तथा असमानताओं के अर्थ की सीमित प्रकृति को समझ लें।

महर्षि पतंजलि ने वार्तिकों पर भाष्य लिखकर जो नवीन उद्‌भावनाएँ की हैं, वे आज भी विद्वानों में समादृत हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में रसनिष्पत्ति के सूत्र **'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः'** की व्याख्या करने में उनके परवर्ती आचार्यो ने जो श्रम किया, उसकी मीमांसा, न्याय तथा सांख्य आदि से प्रभावित जो व्याख्या की, वह भी शोध का ही अंग माना जा सकता है। ठुमरी, चैती, कजरी, होली, बारहमासा को संगीतकारों ने शास्त्रीय संगीत का रूप दिया, काशी की परम्परा में ख्याल शैली को नया रूप प्राप्त हुआ, तुकाराम के पदों को महाराष्ट्र के अभंग शैली से जोड़ा गया, ध्रुपद और धमाल शैली भी नये–नये रूपों में संगीत में प्रकट हो चुकी है। रवीन्द्र संगीत को ध्रुपद शैली से जोड़ा गया।

तात्पर्य यह है कि शोध की प्रक्रिया प्राचीन काल से लेकर आज तक नित्य नये–नये रूपों में विकसित हो रही है।

भाषा में दो स्तरों पर शोध होता है–

1. भाषा के क्षेत्र में भाषाविज्ञान और पाठानुसंधान की दृष्टि से
2. भाषाविशेष में लिखित साहित्य के क्षेत्र में

हिन्दी में इन दोनों ही स्तरों पर शोध होता रहा है और हो रहा है। इनमें भाषा के क्षेत्र में, हिन्दी में अभी शोध के लिए पर्याप्त क्षेत्र पड़ा है क्योंकि उपभाषाओं और बोलियों की दृष्टि से हिन्दी अत्यंत समृद्ध भाषा है। शोधपद्धति विभिन्न रूपों में अपनायी जाती है। शोधार्थी अपने विषय की अनुरूपता में स्वयं यह निर्णय कर सकता है कि उसके लिए कौन–सी पद्धति उपयुक्त होगी।

सर्वेक्षण की पद्धति–

सर्वेक्षण की पद्धति के अन्तर्गत साहित्य के किसी कालखंड, अंग, विधा आंदोलन अथवा प्रवृत्ति का क्रमबद्ध विवरण उपस्थित करने में किया जाता है। उदाहरणार्थ– यदि छायावाद के किसी एक कवि की

कविता पर शोध करना है तो शोधार्थी को आधुनिक काल की समस्त प्रवृत्तियों से अवगत होना पड़ेगा। साथ ही साथ छायावाद की परिभाषा एवं विशेषताओं से परिचय प्राप्त करने के बाद शोधार्थी शोध की दिशा में आगे बढ़ पायेगा।

आलोचनात्मक पद्धति–

आलोचनात्मक पद्धति जिसे शोध की दार्शनिक चेतना कहा जा सकता है, आलोचनात्मक पद्धति से शोधार्थी को यह भ्रम नहीं पालना चाहिए कि उसे शोध में आत्मपरकता की छूट है। शोधार्थी को चलना तो विषय से वस्तुनिष्ठ रूप में बँधकर ही होता है, आलोचना के कुछ मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं जिसका ध्यान रखना शोधार्थी के लिए आवश्यक है।

1. किसी कृति की व्याख्या करना
2. परंपरागत मूल्यों का पुनराख्यान करना
3. नये मूल्यों की स्थापना करना
4. काव्यानुभूति एवं जीवनानुभूति के सम्बन्धों की व्याख्या करना
5. काव्य के आस्वादन का स्वरूप निर्धारित करना
6. अवांछित पद्धति एवं मूल्यों का विरोध करना
7. काव्यवस्तु और काव्यशिल्प के संश्लिष्ट सम्बन्ध का विश्लेषण करना
8. कालजयी कृतियों की प्रासंगिकता का निरूपण करना।

ये समस्त कार्य उसे एक साथ करने पड़ते हैं। किसी कृति की प्रासंगिकता को पहचानना, उस कृति को नवीन संदर्भ में व्याख्यायित करना शोधार्थी की शोध के प्रति नवीन दृष्टि का द्योतक माना जा सकता है, जैसे– मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'जिहाद' के मर्म को उद्घाटित कर आज के संदर्भ में व्याख्यायित किया जा सकता है। बीसवीं सदी का यह महान् लेखक लगभग 70–80 वर्ष पूर्व किस प्रकार इस्लामी धार्मिक कट्टरता, धर्मांतरण तथा आतंकवाद को देख रहा था। प्रेमचन्द की वैचारिक पृष्ठभूमि और आज की जेहादी आतंकवाद की चुनौती के बीच उनकी कहानी 'जिहाद' अफगानिस्तान की कहानी है। 1929 के आस पास लिखी गयी कहानी आज के समय में भी उतनी ही प्रासंगिक है। कहानी में बिन लादेन के समान एक मुल्ला पर्वतीय प्रदेश में आकर धर्मशून्य पठानों में धार्मिक कट्टरता जागृत कर देता है। वह जो धार्मिक उत्तेजना के लिए भाषण देता है, आज के कट्टरपंथी भी उसी भाषा का प्रयोग करते हैं। परिणाम वही होता है, जो आज हो रहा है। हिन्दुओं पर अत्याचार होने लगते हैं और उन्हें इस्लाम की दीक्षा दी जाने लगती है। सदियों से हिन्दू, मुसलमान साथ–साथ रहते आये थे, पर यह शान्ति धर्मान्तरण की आंधी में बदल गयी, हिन्दुओं के काफिले भागने लगे। जो पकड़े जाते उन्हें जिहादी मुसलमान बना लेते और जो तैयार न होते उन्हें मार दिया जाता।

मनोवैज्ञानिक पद्धति–

मनोवैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत रचनाकार और रचनागत पात्रों की अंतश्चेतना का मनोवैज्ञानिक

अध्ययन किया जाता है। इस पद्धति में रचना को चैतन्य मानकर चला जाता है। यह रचनागत चैतन्य व्यक्ति और समाज के अन्तःसम्बन्धों और प्रभावों की दृष्टि से ही माना जाता है। जैसे–निराला के राम की शक्तिपूजा में निराला के सृजित राम पौराणिक राम न होकर सामान्य मनुष्य के रूप में सृजित किये गये हैं जहाँ निराला की मनःस्थिति–'धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध' में पूरी सांस्कृतिक चेतना का विम्ब उभर आता है। जहाँ निराला की निराशा बस अपने ही जीवन के प्रति न होकर समग्र भारत देश के प्रति उभर कर प्रतिबिम्बित हो उठती है।

समस्यामूलक पद्धति–

इस प्रकार के शोध में शोधार्थी की दृष्टि का लक्ष्य साहित्य का सांगोपांग अध्ययन न होकर समस्या विशेष की दृष्टि से शोध करना होता है। शोधार्थी किसी मौलिक समस्या में बँधकर शोध में प्रवृत्त होता है। मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यास 'निर्मला' की पृष्ठभूमि दहेज की समस्या में बुनी गयी है, यहाँ शोधार्थी दहेज की समस्या से बँधकर शोध में प्रवृत्त होता है।

विश्वविद्यालयीय शोधकर्ता के सम्मुख अनेक प्रकार के संकट उपस्थित होते हैं। उसका प्रधान लक्ष्य, शोध न होकर उपाधि प्राप्त करना होता है, क्योंकि वह उसके माध्यम से आजीविका प्राप्त करना चाहता है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने जबसे नये वेतनमान के लिए शोध डिग्री अनिवार्य कर दिया, तब से शोधार्थियों की संख्या अत्यधिक बढ़ गयी है। शोधप्रक्रिया के दौरान शोधार्थी के सामने सबसे बड़ा संकट विषयचयन का आता है। शोधप्रक्रिया शीघ्र ही पूर्ण, उपाधि प्राप्त कर नौकरी में नये वेतनमान को प्राप्त कर सके इसके लिए वह ऐसा विषयचयन करना चाहत है जिससे शोध–प्रबन्ध तैयार करने में भाग–दौड़ न करनी पड़े। वह जहाँ है वहीं के पुस्तकालय में अपना कार्य सिद्ध करना चाहता है। दूसरी बड़ी समस्या शोधार्थी के सामने निर्देशक की होती है, शोधार्थी जिस विषय का चयन करता है, उस विषय में निर्देशक की गति नहीं होने पर रूपरेखा तैयार करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। रूपरेखा निर्धारित होने के उपरांत सामग्री–संकलन का संकट खड़ा हो जाता है। कई विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्ष यदि समर्थ हैं तो शोधसामग्रीसंकलन आसान हो जाता है, सामग्रीसंचयन के बाद शोधप्रबंध–लेखन का संकट भी शोधार्थी के लिए कम नहीं आंका जा सकता क्योंकि संकलित सामग्री में से कितना अंश उपयोग में लाया जाये, कितना अंश छाँट दिया जाये, यह प्रश्न कम महत्त्व का नहीं है। शोध प्रबंध की प्रस्तावना से लेकर उपसंहार तक व्यवस्थित रूप देना भी शोधार्थी के कठिन परिश्रम का परिणाम होता है। निम्नलिखित बातों का ध्यान देने पर शोधार्थी के संकट का समाधान हो सकता है और एक व्यवस्थित शोधप्रबन्ध तैयार किया जा सकता है।

यदि निर्देशक की गति उस विषय में नहीं है जिस विषय को शोधार्थी ने चयनित किया है, इसके लिए विषय विशेषज्ञ से साक्षात्कार के माध्यम से वह अपनी समस्या का समाधान कर सकता है। किसी सुपठित पुस्तकालयाध्यक्ष से संपर्क करने पर भी समस्या का समाधान हो सकता है। कई विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्ष इतने सुपठित होते हैं कि वे शोधार्थी को उसके विषय का साहित्य प्रस्तुत करने में बड़ी सहायता प्रदान करते हैं। वे आवश्यक पुस्तकों की सूची तैयार कराने में सहायक होते हैं। अप्रकाशित

शोध–प्रबंधों को अन्य विश्वविद्यालयों से मँगा देते हैं और ऐसे स्थानों का पता भी बतला देते हैं जहाँ पुस्तक–विशेष उपलब्ध हो सकती है।

शोधार्थी को अपने विषय से संबंधित प्रकाशित–अप्रकाशित सामग्री का भली–भाँति अध्ययन करना भी आवश्यक है, क्योंकि बिना अध्ययन के परिकल्पना (Hypothesis) का निर्माण नहीं होगा। परिकल्पना (Hypothesis) का निर्माण शोध के लिए आवश्यक है।

कुछ विश्वविद्यालयों में यह भी नियम है कि शोधार्थी को महीनों पूर्व उसके परीक्षक का ज्ञान करा दिया जाता है और उसे अधिकार है कि वह अपने शोध–प्रबंध के संबंध में परीक्षक से परामर्श कर सकता है। इससे शोध–प्रबंध की त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। परीक्षक ही मौखिकी परीक्षा–तिथि निर्धारित करता है, जिसमें सभी परीक्षक उपस्थित हो शोधार्थी की मौखिकी लेते हैं और जब संतुष्ट हो जाते हैं तो सम्मिलित प्रतिवेदन विश्वविद्यालय को भेज दिया जाता है। उपर्युक्त दोनों पद्धतियों से शोधार्थी का संकट टल जाता है। हमारे देश में दोनों शिक्षा–पद्धतियाँ प्रचलित हैं। क्या समस्त विश्वविद्यालयों में परीक्षा–पद्धति की एकरूपता नहीं प्रचलित की जा सकती है? विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है। शोध में गोपनीयता नहीं होनी चाहिए। वह एक व्यक्ति के परिश्रम का फल नहीं होता, अनेक व्यक्तियों के सहयोग का परिणाम होता है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्यधर्मिता

डॉ0 मीनाक्षी मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दीविभाग

रचनाकार की मूल्य भावना या दृष्टि की अभिव्यक्ति का माध्यम साहित्य है। मानवीय संस्कृति की प्रामाणिक अभिव्यंजना है। साहित्य अतीत और वर्तमान की मूल्यवान उपलब्धियों को अभिव्यक्त करने के साथ ही भविष्य की रचनात्मक दिशाओं का निर्देश करता है। साहित्य के माध्यम से देश अथवा समाज के सांस्कृतिक मूल्यों को भली प्रकार समझा जा सकता है। साहित्य संस्कृति का सजग प्रहरी व संरक्षक है। संस्कृति जिन संस्कार मूल्यों द्वारा समृद्ध और समुन्नत होती है, साहित्य उन्हीं को प्रतिष्ठित करने के लिए व्यवहारिक उपक्रम करता है। दोनों का परम उद्देश्य मानवमात्र का कल्याण है।

आचार्य द्विवेदी के चिंतन की दिशा सांस्कृतिक मूल्यों पर बराबर रही है। वे भारतीय संस्कृति के आख्याता और सजीव रूप हैं। द्विवेदी जी के साहित्य में निबन्ध हो, उपन्यास हो, आलोचना इन सभी में सांस्कृतिक मूल्यधर्मिता के दर्शन होते हैं। भारतीय परम्परा और संस्कृति के विषय में उनका गहन विश्लेषण– 'भारतीय संस्कृति की देन', 'भारतीय संस्कृति का स्वरूप', 'संस्कृति और साहित्य', 'धार्मिक संस्कृतियों का संगम', 'भारतवर्ष की सांस्कृतिक समस्या', 'अशोक के फूल', 'विचार व वितर्क', 'कल्पलता', 'विचार प्रवाह', 'कुटज' जैसे निबन्धों में व्यक्त है। 'उनके अनुसार– संस्कृति सभ्यता का आन्तरिक पक्ष है। प्रकृति जब बिगड़ती है तो वह विकृति और जब उसका उन्नयन होता है तो उसे संस्कृति कहते हैं[1]।

हिन्दी साहित्य की निर्माण–भूमि की समस्त सांस्कृतिक साधना का पर्यालोचन करने के पश्चात् द्विवेदी जी का विचार रहा है कि सभी संस्कृतियों में सबसे सामान्य मिलने वाली संस्कृति मानव संस्कृति है। संस्कृति का मनुष्यता से अनिवार्य लगाव है। मनुष्यता से भिन्न संस्कृति हो ही नहीं सकती। द्विवेदी जी के मानवतावादी विचारधारा में रवीन्द्रनाथ टैगोर की **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** विश्वनीड़ की धारणा निहित है तो दूसरी ओर गाँधीवाद का भी प्रभाव है। मनुष्य की नैतिकता और चारित्रिकता की ओर जगह–जगह इंगित करते रहते हैं। उनका मानना है कि मानव देवता से भी बड़ा है– ''मनुष्य क्षमा कर सकता है, देवता नहीं कर सकता।'' मनुष्य हृदय से लाचार है, देवता नियम का कठोर प्रवर्तयिता है। मनुष्य नियम से विचलित हो जाता है पर देवता की कुटिल भृकुटि नियम की निरन्तर रखवाली करती है, ''मनुष्य इसलिये बड़ा होता है कि वह गलती कर सकता है, देवता इसलिये बड़ा होता है कि वह नियम का नियन्ता है।'' द्विवेदी जी अपने संस्कृति चिंतन इतिहास से गुजरते हुये मानव की असीम शक्ति को पहचाना है – 'सृष्टि परम्परा में मनुष्य का विकास एक अद्भुत घटना है, वह सृष्टि–प्रक्रिया की सबसे उत्तम घटना है। वह सृष्टि प्रक्रिया की सबसे उत्तम, सबसे सुकुमार और सबसे शक्तिशाली और इसलिये सबसे महत्त्वपूर्ण देन है।[2]'' मनुष्य की

जययात्रा का आशावादी जयघोष करते हुये 'कल्पलता' में लिखते हैं– 'मनुष्य ही मुख्य है, बाकि सब बातें गौण हैं, अंलकार, छंद, रस का अध्ययन इस मनुष्य को समझने का ही साधन है, ये अपने आप में कोई स्वतंत्र मान नहीं है, मनुष्य को अर्थात् पशुसुलभ वासनाओं से ऊपर उठाने के लिये प्रयत्नशील उस प्राणी को जो त्याग, प्रेम, संयम और श्रद्धा को छीना–झपटी, मारामारी, लोलुपता और घृणा–द्वेष से बड़ा मानता है– उसे लक्ष्य की ओर ले जाना ही साहित्य का मुख्य उद्देश्य है।[3]'' द्विवेदी जी की स्पष्ट घोषणा है– ''मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ, जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गतिहीनता और परमुखापेक्षिता से न बचा सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।[4]'' द्विवेदी जी का मानवतावादी दृष्टिकोण उनकी समग्र साहित्य साधना का आधार बिन्दु है। वे मानवमूल्यों को वरीयता देने वाले साहित्यकार थे। लोक कल्याण द्विवेदी जी के साहित्य का चरम बिन्दु है।

भारतीय संस्कृति में आदियुग से ही समाज, राष्ट्र तथा विश्व के लिये आत्मोत्कर्ष करने की भावना प्रबल रही है। द्विवेदी जी का मानना है कि मानवजीवन की सार्थकता तभी है जब वह विश्वकल्याण कि लिये अपने सुखों या जीवन की इतिश्री कर दें। द्विवेदी जी का साहित्य **''उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्''** दृष्टि को व्यक्त करता है।

द्विवेदी जी की दृष्टि संस्कृति के आंतरिक चिंतनधारा पर भी रही है। उन्होंने आर्य का दुश्मन अनार्य जैसी परस्पर विरोधी धारणाओं को ध्वस्त करते हुये कहा है– 'अशोक अनार्यों में असुरों की नहीं गंधर्वों–कंदर्पों की देन है। शिरीष और कुटज भी। तीनों कुल शील, गोत्र, जाति से मुक्त। तीनों प्रेम, काम और वासना जैसी स्वाभाविक प्रवृत्तियों के प्रणेता। तीनों कर्म–कांड, अंधविश्वास, जादू–टोना के विरोधी तीनों अवधूत।' तीनों कालिदास की सौंदर्यदृष्टि के माध्यम से संस्कृति को सुपुर्द। इस प्रकार द्विवेदी जी संस्कृति की आंतरिक चिंतनधारा के गहन अन्वेषक के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

लोकजीवन, लोकसंस्कृति के तत्त्व द्विवेदी जी के निबन्धों में प्रचुरता से मिलते हैं। लोकजीवन के ऋतुपर्व, त्योहार, उत्सव, शकुन सूक्तियों, मनोविनोद के साथ प्रकृति के प्रति गहन अनुराग वनस्पति–जगत से आत्मीयता विभिन्न प्रकार के पेड़–पौधों का सूक्ष्म अवलोकन उनके निबन्धों में पाते हैं।

द्विवेदी जी जब ऐतिहासिक अवशेषों का मूल्यांकन करते हैं तब बताते हैं कि पारस्परिक प्रेम, सहिष्णुता भारतीय संस्कृति के मूल में रची बसी है।'मेरी जन्मभूमि' में लिखते हैं– 'मेरे गाँव में जो जातियाँ बसी हैं वे किसी उजड़े महल या गाड़ी हुई ईंटो से कम महत्त्वपूर्ण तो है ही नहीं। मेरे इस छोटे से गाँव में भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास पढ़ा जा सकता है।[5]''

द्विवेदी जी के निबन्धों का विषय चाहे प्रकृति से सम्बन्धित हो, चाहे व्यावहारिक हो या भारतीय फलित ज्योतिष हो सर्वत्र ही सांस्कृतिक मूल्यधर्मिता निहित है।

परम्परा और आधुनिकता के बीच सेतु का निर्वहन करने वाले द्विवेदी जी के उपन्यासों में सांस्कृतिक गरिमा के साथ ही मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा है। बाणभट्ट की आत्मकथा में महामाया का

वक्तव्य आधुनिक मनुष्य, उसकी शक्ति, प्रभुत्व के साथ उपस्थित है– ''अमृत के पुत्रों मृत्यु का भय माया है, राजा से भय दुर्बल–चित्त का विकल्प है। प्रजा ने राजा की सृष्टि की है। संघटित होकर म्लेच्छवाहिनी का सामना करो। देवपुत्रों और महाराजाधिराजाओं की आशा छोड़ो। धर्म की रक्षा अनुनय विनय से नहीं होती, शास्त्र–वाक्यों की संगति लगाने से नहीं होती, वह होती है अपने को मिटा देने से। न्याय के लिये प्राण देना सीखो, सत्य के लिये प्राण देना सीखो, धर्म के लिये प्राण देना सीखो। आगे जनशक्ति की एकता को सम्बोधित करते हुये कहती है– 'ब्राह्मण से लेकर चांडाल तक एक हो जाओ चट्टान की तरह दुर्भेद्य एक। यही बचने का उपाय है।' महामाया के इस वक्तव्य में जनतांत्रिक चेतना है।

धर्म, विभिन्न साधना पद्धतियाँ, ये सभी द्विवेदी जी के चिंतनपद्धति के अभिन्न अंग हैं। जाति, वर्गों की वैमनस्यता, जनशक्ति का विभाजन उस काल की अशांति और बिखराव का कारण था ही, आज के युग की भी जटिल समस्या है। मनुष्यों में बढ़ते परस्पर लोभ, द्वेष, पाशविकप्रवृति को दूर करने के लिये भट्टिनी बाणभट्ट से कहती है– ''तुम आर्यावर्त के द्वितीय कालीदास हो, तुम्हारे मुख में सरस्वति का निवास है। तुम इस म्लेच्छ कही जाने वाली निर्दय जाति के चित्त में संवेदना का संचार कर सकते हो, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना सिखा सकते हो, बालकों को प्यार करना सिखा सकते हो।'' 'प्रेम और करूणा उच्चतर मानव मूल्य हैं। इन मूल्यों पर बराबर द्विवेदी जी की दृष्टि रही है। अनामदास का पोथा में कहते हैं– ''दूसरों के सुख के लिए अपने को दलितद्राक्षा की तरह निचोड़कर दे देना है। इससे बड़ा तप मुझे मालूम नहीं।[7]'' मनुष्यता के इन भावों को केन्द्र में रखकर साहित्य की सर्जना करने वाले उत्कृष्ट सांस्कृतिक चिंतक एवं गम्भीर अध्येता के रूप में द्विवेदी जी को पाते हैं। द्विवेदी जी के साहित्य में भारतीय संस्कृति की जीवन्त परम्परा के साथ राष्ट्रीय मनोवृत्तियों की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित है।

सन्दर्भग्रन्थ

1. साक्षात्कार, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, जून, नई दिल्ली, पृ. 35।
2. द्विवेदी ग्रंथावली, खण्ड–4, पृ. 421।
3. कल्पलता– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 186।
4. अशोक के फूल– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 166।
5. अशोक के फूल– हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. 43।
6. बाणभट्ट की आत्मकथा– हजारी प्रसाद द्विवेदी।
7. अनामदास का पोथा– हजारी प्रसाद द्विवेदी।

भोजपुरी महाकाव्य 'कुँवर सिंह'

डॉ0 अनुपम गुप्ता
अंशकालिक प्रवक्ता, हिन्दीविभाग

1857 की क्रान्ति भारत के इतिहास का गौरवमयी एवं उज्जवल पृष्ठ है। यह भारत की स्वाधीनता के लिए प्रथम राष्ट्रव्यापी संग्राम था, जिसमें सभी जाति, धर्म, वर्ग व सम्प्रदाय के लोगों ने अपना सर्वस्व न्योछावर किया था। इस क्रान्ति में बिहार के श्रेष्ठतम योद्धा वीर कुँवर सिंह का योगदान भी अविस्मरणीय है। 80 वर्ष की आयु में भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में इन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी से लोहा लिया और बहुत से युद्धों में विजय हासिल की। अपनी वृद्धावस्था के बावजूद कुँवर सिंह अंग्रेजों के खिलाफ जिस तरह से लड़े उससे वह जनक्रान्ति के नेता बन गये। हिन्दू–मुस्लिम एकता के प्रतीक वीर कुँवर सिंह को भोजपुरी भाषी जनता ने 'तेगवा बहादुर' की उपाधि से नवाजा तो वहीं अंग्रेजों ने 'हीरो ऑफ भोजपुरी' कहा।

वीर कुँवर सिंह परमार वंश के क्षत्रिय थे। इनका जन्म बिहार के भोजपुर जिले के जगदीशपुर में सन् 1776 में हुआ था। कुँवर सिंह के पिता साहबजादा सिंह जगदीशपुर के जमींदार थे। साहबजादा सिंह को चार पुत्र हुए– कुँवर सिंह, दयाल सिंह, राजपति सिंह और अमर सिंह। कुँवर सिंह सबसे बड़े थे। इन्हें बचपन से ही खिलौनों की जगह तीर–तलवार से लगाव था। बड़े होकर ये एक वीर योद्धा के रूप में ख्यातिलब्ध हुए। पिता की मृत्यु (1826) के बाद कुँवर सिंह को जगदीशपुर की गद्दी मिली। उन्होंने बहुत कुशलतापूर्वक शासन का संचालन किया और कई व्यवस्थाएँ स्थापित कीं। कुँवर सिंह ने अपने जमींदारी काल में काफी जनसेवा की। जितौंरा में तालाब का निर्माण करवाया, हिन्दुओं के लिए मन्दिर बनवाए तो वहीं मुसलमानों के लिए मस्जिद का निर्माण करवाया। इस तरह उन्होंने 'सर्वधर्म समभाव' का मंत्र अपना कर हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों में समान लोकप्रियता बटोरी। आरा में आज भी एक बाजार 'बाबू बाजार' के नाम से विख्यात है।

1857 की क्रान्ति की चिंगारी पूरे देश में जगह–जगह फूट रही थी। ऐसे में 25 जुलाई 1857 में बिहार में पटना, दानापुर तथा आरा में भी विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। इन क्रान्तिकारियों का नेतृत्व वीर कुँवर सिंह कर रहे थे। उस समय उनकी अवस्था लगभग 80 वर्ष की थी, फिर भी उनमें अपूर्व साहस और पराक्रम था। उन्होंने देश को आजादी दिलाने के लिए दृढ़ संकल्प के साथ संघर्ष किया। कुँवर सिंह को छापामार युद्ध में महारथ हासिल थी और अपनी इस युद्ध नीति के बल पर उन्होंने अंग्रेजों को जन–धन की बहुत क्षति पहुँचाई। वीर सावरकर ने अपने ग्रंथ '1857 का भारतीय स्वातन्त्र्य समर' में कुँवर सिंह के रण कौशल का मूल्यांकन करते हुए लिखा है– ''1857 की क्रान्ति में अपनी युद्धपद्धति और रणकौशल में उसकी बराबरी का कोई वीर नहीं था। छत्रपति शिवाजी के पश्चात् वृकयुद्ध (गुरिल्लावार फेयर) के महत्त्व को सर्वप्रथम उन्होंने सिद्ध किया था।'' (पृ0 398)

विद्रोह प्रारम्भ होने के समय तक कुँवर सिंह वृद्ध हो चुके थे। फिर भी वे सिंह के समान थे। अपने शौर्य, साहस और पराक्रम से उन्होंने विद्रोह का नेतृत्व करते हुए आरा के विद्रोहियों में नव चेतना का संचार कर दिया। भोजपुरी के प्रख्यात कवि श्री चन्द्रशेखर मिश्र ने 'कुँवर सिंह' नामक महाकाव्य की रचना की है जिसमें कुंवर सिंह सैनिकों से कहते हैं–

जेके पियारी घर क तिरिया, ते लवट के घरे चलि जाई।

जेके पियारी भारत माता, रण में चढ़ि के लोहा चबाई।। (पृ095)

कुँवर सिंह के सैनिक उत्तर देते हैं–

हम अगले भाला भोंकि देब, हम बगले भाला भोंक देब।
आगे छूरा पाछे छूरा, चउतरफा छूरा कोंचि देब।।
बस बाबू क अज्ञा चाही, हम पाऊँ पछाड़ी ना धरबई।
छूड़ी चहलै छूड़ी देबइ, मूड़ी चहले मूड़ी देबइ।। (पृ098)

इस प्रकार अपने सैनिकों को इकट्ठा कर कुँवर सिंह ने अंग्रेजों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। उनकी जीत से अंग्रेज बौखला गये थे। विसेंट आयर के नेतृत्व में 3 अगस्त को ब्रिटिश सेना ने कुँवर सिंह को पराजित कर दिया। मजबूरन कुँवर सिंह को जगदीशपुर छोड़कर लखनऊ आना पड़ा। फिर भी इस महान योद्धा ने हार नहीं मानी, और मार्च 1858 में आजमगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया। 7 अप्रैल, 1958 ई0 को कुँवर सिंह और डगलस के बीच युद्ध हुआ जिसमें डगलस की करारी हार हुई। 23 अप्रैल 1858 को जगदीशपुर के नजदीक गंगा नदी पार करते समय कुँवर सिंह को अंग्रेजों की गोली लग गयी तो उन्होंने अपना हाथ काटकर माँ गंगा को समर्पित कर दिया। गंभीर रूप से घायल होने के कारण 26 अप्रैल, 1858 को उनकी मृत्यु हो गई। इस वीर बाँकुड़ा ने जीवित रहते अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये थे और मरते दम तक अपनी मातृभूमि की रक्षा की। 1857 की क्रान्ति के अमर शहीद और बिहार के गौरव कुँवर सिंह ने बिहार की जनता पर अमिट छाप छोड़ी है। भोजपुर के लोकगीत उनकी अमरता एवं लोकप्रियता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आज भी भोजपुर की होली के गीतों में कुँवर सिंह का नाम पहले आता है–

बाबू कुँवर सिंह तोहरे राज बिन,
अब न रंगइबो केसरिया,
इतहो अइलो धरी फिरंगी,
उतते कुँवर दोऊ भाई,
गोला बारूद के चलत पिचकारी,
बिचवा में भइले लड़ाई।

स्वर्गीय कवि डॉ0 मनोरंजन प्रसाद ने कुँवर सिंह की वीरता को याद करते हुए लिखा था–

अस्सी वर्षों की हड्डी में जागा जोश पुराना था।
सब कहते हैं कुँवर सिंह भी बड़ा वीर मरदाना था।।

वीर कुँवर सिंह का त्याग और बलिदान कभी भी भुलाया नहीं जा सकेगा। उन्होंने प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को सफल बनाने के लिए अपनी एड़ी–चोटी का जोर लगा दिया। इस प्रकार अपनी वीरता पूर्ण नेतृत्व से उन्होंने उस संघर्ष को गरिमा प्रदान किया। भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनकी अमूल्य भूमिका के लिए 23 अप्रैल 1966 में भारत सरकार ने एक डाक टिकट जारी किया।

संवाद

डॉ0 कविता आर्या
असिस्टेंट प्रोफेसर, अंग्रेजीविभाग

कल्पना कीजिये एक ऐसी दुनिया की, जिसमें बोलने के लिये मुंह तो हों, लेकिन सुनने के लिये कान नहीं हो या एक ऐसी दुनिया, जिसमें कान हों, लेकिन कोई मुंह नहीं हो बोलने वाला। कितनी भयानक होगी वह दुनिया? कल्पना से भी मन सिहर उठता है! और कितने भाग्यशाली हैं हम, कि हमारे पास सुनने के लिये कान और बोलने के लिये मुंह दोनो हैं! देखने के लिये आँखें, स्पर्श करने के लिये हाथ भी हैं। हाथों से लेकर मन तक अन्दर, और मन से लेकर चारो ओर अनंत तक फैले विस्तार तक संवेदनशीलता का एक अदृश्य मगर जबरदस्त इंटरनेट है। बोलना, सुनना, देखना, स्पर्श करना, स्पर्श का एहसास, ये सब मिल कर हमे जो एक पूरा संसार देते हैं, एक प्रक्रिया बनाते हैं, उसके लिये एक अच्छा शब्द है संवाद। क्या है यह संवाद? आम तौर पर हम समझते हैं भाषा में अपनी बात किसी से कहना और दूसरों की बात सुनना समझना, लेकिन यह तो संवाद का शतांश भी नहीं है। जिस किसी भी तरह से मनुष्य, जीव, प्रकृति का कोई ज़र्रा अपनी उपस्थिति और अपने भावों को अभिव्यक्त करता है, वह सारा ही कुछ संवाद है। जंगल में मोर का नाच कर अपने साथी को रिझाना, कोयल का कूँकना संवाद ही तो है और अगर आप सुन सकें – समुद्र की लहरों में वह आदिम निमंत्रण, आसमान में घुमड़ते बादलों का गर्जन ये प्रकृति का संवाद ही तो है। प्रकृति से बड़ा संवाददाता कौन है? तभी तो विरही यक्ष ने मेघ को अपना संदेशवाहक बनाया और राम ने हंस को, यह सन्देश संवाद ही तो है। संस्कृतसाहित्य में सन्देश–काव्य एक अलग और बहुत सुन्दर विधा है।

प्रकृति से संवाद

प्रकृति के ज्यादा निकट जीवन जीने वाले हमारे पूर्वज प्रकृति के साथ संवाद स्थापित कर पाने में जितने सक्षम थे, हम उतने नहीं रहे। बादलों की गर्जना हमारे लिए सिर्फ एक अर्थहीन गरजना है, समुद्र की लहरों में निमंत्रण कहाँ सुनते हैं हमारे कान? प्रकृति तो प्रकृति, हम तो पड़ोस से आने वाली इंसानी चीखें और पुकार भी नहीं सुनते और न कोई संवाद अपनी तरफ से भेज पाते हैं। हर हाथ में एक मोबाइल है और वो कान से लगातार लगा भी है, लोग बोले और सुने भी जा रहे हैं लेकिन संवाद हो रहा है क्या ? संवाद कहाँ है? संवाद होता तो पेरिस से पेशावर तक और संकट मोचन से लेकर सीरिया तक ऐसी बमबाजी और खूंरेजी क्यों होती? जो लोग एक साथ गा सकते थे, वे एक दूसरे को गालियाँ क्यों देते? क्योंकि उनके बीच कोई स्वस्थ संवाद नहीं है। स्वस्थ संवाद संसार को जोड़ता है। संवादहीनता और बीमार संवाद संसार को बर्बाद करता है, फिर चाहे वह संसार नितांत निजी स्तर पर व्यक्तियों के बीच का हो या विश्व स्तर पर देशों

के बीच का हो, संवाद के बिना संसार का क्या वजूद ? संवाद है तो संसार है और संवाद नहीं तो कोई संसार भी नहीं! अब सवाल उठता है कि जो इतनी महत्त्वपूर्ण गतिविधि है, वह संवाद क्या है? और क्यों होती है संवादहीनता? फिर ये भी कि जो हमारी प्राणवायु की तरह है, हमारे जिन्दा रहने की सबसे ज़रूरी निशानी है, उस संवाद के बारे में हम कभी बातें क्यों नही करते?

प्रकृति के संवाद का सबसे संवेदनशील रूप है ओस, शबनम और इंसान के संवाद का सबसे सुन्दर रूप है आंसू, आकाश की ओस और इंसान के आंसू, कितने एक जैसे होते हैं ? ओस और आंसू, दोनों संवाद के असंख्य रूपों में सर्वोत्तम हैं, लेकिन ना कोई ओस देखता है ना आंसू, न हम कभी शबनम के बारे में बात करते हैं, न आंसुओं के बारे में, हम कभी बातें क्यों नहीं करते?

संवाद का महत्त्व

दरअसल बात ये है कि जो चीजें बिन मांगे, खुद–ब–खुद मिल जाती हैं, हम ना तो उनका महत्त्व समझते हैं और न उनके बारे में सोचते हैं. संवाद कर पाने की शक्ति भी वैसे ही है, जैसे हमारी सांस लेने की क्षमता। बेहद जरूरी – लेकिन चूँकि मुफ्त में मिल गई तो किसी को उसके बारे में सोचने की ज़रूरत ही नहीं महसूस हुई। जैविक रूप से जिंदा रहने के लिये अनिवार्य चीजें हवा, पानी, मौसम, धूप, वगैरह हमे बिन मांगे, खुद ब खुद मिल जाती हैं, इसलिये हम ना तो उनका महत्त्व समझते हैं और न उनके बारे में सोचते हैं, वैसे ही हम कभी संवाद की अहमियत के बारे में नहीं सोचते जबकि एक ज़िंदा इंसान की पहली और सबसे बड़ी जरूरत है संवाद, क्योंकि संवाद ही एक व्यक्ति को दूसरे से और इस संसार से जोड़ता है।

अगर संवाद ना हो तो जिंदा और मुर्दा में कोई फ़र्क नहीं, फिर तो कोई भाषा नहीं होगी, कोई किसी से बात नहीं करेगा, किसी से कोई मिलेगा नहीं, किसी को कोई इशारे नहीं करेगा, आपका मोबाइल फोन, फ़ेसबुक, किताबें, अखबार, सिनेमा , टीवी – ये सब कुछ होगा ही नहीं, लेकिन तब आप क्लिनिकल तौर पर, डाक्टरों के हिसाब से, जिंदा तो हों लेकिन कोई संवाद नहीं कर सकें, कभी ना कुछ बोल सकें ना सुन सकें क्या ऐसी जिंदगी आप जीना चाहेंगे? ऐसी जिंदगी कौन चाहेगा?

जिंदगी को अर्थ मिलता है सिर्फ और सिर्फ संवाद से। संवाद से ही लोग जुड़ते हैं, परिवार बनता है, देश बनता है, संवाद ही समाज का निर्माण करता है, इसलिए ज़रुरी है कि हम संवाद के बारे में बातें करें और इसकी अहमियत को समझें।

सिर्फ भाषा ही नही है संवाद

सबसे पहले ये समझना ज़रुरी है कि संवाद सिर्फ भाषा ही नही है। मुंह से शब्द बोलना लिखना ही भाषा नहीं है, संवाद का सिर्फ एक बहुत छोटा हिस्सा है– शब्द। आम तौर पर संवाद का मतलब समझा जाता है – बातचीत या भाषा में कही गई कोई बात, लेकिन संवाद सिर्फ भाषा में ही नहीं होता। जिस किसी तरीके से हम अपने भावों या सूचनाओं या विचारों को किसी और तक पहुंचाते हैं या ग्रहण करते हैं , वह सब कुछ संवाद ही है।

कंकन किंकनी नूपुर धुनी सुनी, कहत लखन सन राम हृदय गुनी

स्वयंवर से पहले सीता जब बाग में फूल लेने जाती हैं तो उनके नूपुर की ध्वनि राम से कुछ कह देती है ये संवाद ही तो है, लेकिन वह तो बाद की बात है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो श्री रामचरित मानस की पहली पंक्ति में ही सब कुछ कह दिया है, संवाद के सारे सूत्र एक साथ सँजो दिये है –

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छंदसामपि, मंगलानां च कर्तारौ वंदे वाणीविनायकौ।

वर्ण, अर्थ, रस, छंद, मंगल करने वाली वाणी और श्रीगणेश। वेद कहते हैं शब्द ब्रह्म है,– शङ्ख नाद ब्रह्माङ्ग, बाइबिल कहती है, जब कुछ नहीं था, तब शब्द था। इन द बिगिनिंग वाज द वर्ड, ऐंड द वर्ड वाज विद गॉड, ऐंड द वर्ड वाज गॉड। शब्द ही ईश्वर! कैसी अद्भुत समानता है नाद ही ब्रह्म है – शब्द ही ईश्वर है, सचमुच संवाद ही ईश्वर है। संवाद ही संसार है, इसका उपयोग करने की कला ही सबसे बड़ी शक्ति है, लेकिन सच ये है कि संवाद की कला और इसका उपयोग करना ज्यादातर लोग नहीं जानते।

संवादहीनता और अकेलापन

संवाद की अनन्त संभावना से भरी इस दुनिया में अधिकांश लोगों की समस्या है अकेलापन. संवादहीनता। आज ही नहीं, हर जमाने में अकेलापन एक जिन्दा इंसान की सबसे बड़ी समस्या रहा है। अगर यह अकेलापन न होता तो कालिदास को अकेले पड़े विरही यक्ष के लिए 'मेघदूत' रचने की जरूरत और वेदांत देशिक को राम के लिए 'हंस–सन्देश' लिखने की जरूरत आखिर क्यों महसूस हुई होती?

अकेलापन दूर करने के लिये इंसान ने परिवार बनाया, समाज बनाया, राज्य और देश बनाये, ईश्वर को भी बनाया, भाषा बनाई, गीत गाये, कहानियाँ लिखीं – नाटक, नौटंकी, सिनेमा, टीवी, फोन रेडियो, अखबार क्या नहीं किया! लेकिन अकेलापन है कि फिर भी गया नहीं।

संवाद में बाधा

सबकुछ के बावजूद सबकुछ अधूरा सा लगता रहा. अधूरी सी लगती रही जिंदगी। क्यों ऐसा लगता है कि पूरी जिंदगी बीत गई लेकिन आप वह न कह पाए जो कहना था ? क्या आपको भी ऐसा लगा है कभी कि जो कहना था न कह सके? और बिना कहे अधूरी रह गयी जिंदगी? आखिर क्या है वह जिसके बिना सबकुछ अधूरा है? – ये है संवाद। क्या है वह, जो संवाद होने नहीं देता? संवाद के रास्ते मे क्या होती हैं दिक्कतें? संवाद के रास्ते में बाधाएं क्या होती हैं?

संवाद कर पाने में सबसे बड़ी बाधाएँ होती हैं अज्ञान, अहंकार, संकोच और डर। दरअसल अहंकार, संकोच और डर – ये तीनों भी अज्ञान के ही अलग अलग रूप हैं। देशों के बीच लड़ाइयां, आतंकवाद, कट्टरपंथ, दंगे–फसाद, सबके पीछे कारण यही अज्ञान है। लोग अगर जिन्दा हैं और जबतक जिन्दा हैं तो उनके बीच समस्याएं, स्पर्धाएं और मतभेद तो होंगे ही, ये स्पर्धाएं और मतभेद नहीं होते तो दुनिया का विकास भी नहीं हुआ होता, ना कोलंबस ने अमेरिका खोजा होता, ना वास्कोडिगामा ने भारत। लेकिन स्पर्धा, मतभेद और संघर्ष के बीच संवाद कब समाप्त हो गया, इसका हमें पता ही नहीं चलता और आगे आनेवाली तमाम समस्याओं की जड़ यही होती है। संवाद समाप्त हो जाता है। अक्सर लड़ने वालों को इस बात का

एहसास ही नहीं होता कि बड़ी से बड़ी समस्या का निदान संवाद से हो सकता है, लेकिन संवाद नहीं हो पाता।

कितना मजेदार होता है, उन लोगों को देखना जो भारत पाकिस्तान की तरह कुछ समय मुंह फुलाए बैठे रहते हैं फिर सुषमा स्वराज की तरह मुस्कुरा कर हाथ मिला लेते हैं! भाई बेकार ही इतना समय जाया किया! लेकिन छोड़िये सुषमा और शरीफ को वे बड़े लोग हैं, देशों की बात करते हैं. आइये हम गरीब लोग गरीबों के बीच संवादहीनता के दुःखों की बात करें। चेखव की एक कहानी है एक तांगेवाले की, वह सुबह से किसी से कुछ कहना चाहता है, तांगे में भर दिन सवारियां आती जाती रहीं, किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। हर सवारी अपने आप में मशगूल है किसी के पास सुनने का वक्त नहीं। अंत में वह अपने घोड़े के गले में हाथ डालकर उसके कान में कहता है 'जानते हो आज मेरा बेटा मर गया! ये दर्द और अकेलापन है। १६ वीं सदी के इंसान का जिसे चेखव ने सुना और अब तो हम २१ वीं सदी में हैं। कहीं कोई सुननेवाला नहीं है, तब तांगे वाले के पास एक घोड़ा हुआ करता था, अब तो वह घोड़ा भी नहीं है।

सच पूछिए तो इंसान की सबसे बड़ी ज़रुरत है कि कोई उसकी सुने। आसमान पर भी बहुत भरोसा नही रह गया। मोबाइल फोन पर बोल सभी रहे हैं, लेकिन सुन कौन रहा है? सोचा है कभी? कोई नहीं। सब अपनी सुना रहे हैं, फेसबुक पर सब अपना लिख रहे हैं, लेकिन न कोई सुन रहा है, न पढ़ रहा है। और तो और अपने प्रधानमंत्री भी मन की बात कहना चाहते हैं, कहते हैं, लेकिन सुनता कौन है?

ज़ाहिर है, ऐसे दौर में किसी की सुन लेना ही उसकी सबसे बड़ी सेवा है. सुन कर कुछ कह सके तो बहुत अच्छी बात, न भी कह सकें तो कई बार किसी की तरफ सहानुभूति से देख लेना भी एक राहत भरा संवाद होता है। कई बार देखना या किसी की तरफ नहीं देखना भी एक संवाद होता है। मौन भी एक संवाद है. किसी के कंधे पर सहानुभूति का एक स्पर्श अक्सर सबसे मजबूत संवाद होता है।

आज संवाद के तमाम माध्यम विज्ञान की कृपा से दुनिया भर में सुलभ हैं। हर किसी के पास मोबाइल फोन है, वॉट सॅप है, कलम है, कागज है, इंटरनेट है. २, ३, ४, फ़ेसबुक, ट्विटर और ना जाने क्या क्या। सब कुछ है, अपनी बात कहने और दूसरों की बात सुनने के लिये। लेकिन वो बात कहाँ है जो कही जानी थी? वो बात क्या है जिसे कहना जरूरी था? वो संवाद कहाँ है हमारे पास, जिसे दुनिया तक पहुंचाना जरूरी था? क्या सचमुच हमारे पास ऐसी कोई बात है, जिसे कहा जाना, जिसका सुना जाना ज़रूरी है? क्या सचमुच हमारे दिल में ऐसा कोई गीत है जिसे गाया जाना जरूरी था? शायद है। लेकिन हम गा नहीं पाते, कह नहीं पाते, सुन नहीं पाते, सबसे शानदार ऑडियो सिस्टम्स डिजिटल और बॉस के बावजूद, हमें सुनाई क्यों नहीं देता वह संगीत जो करोड़ों लोगों की सांसों से फूट रहा है। उनके अस्तित्व का, उनके संघर्ष का संगीत, उनकी आत्मा का संगीत क्यों नहीं सुन पाते हम? उस संवाद से हम बहिष्कृत क्यों है? हम क्यों अभिशप्त हैं, संवाद की इस सुन्दर दुनिया में एक अवांछित घुसपैठिये की तरह जीने के लिये? अगर हम ये बात खुद समझ सकें और समाज को समझा सकें तो ये सबसे बड़ी समाज सेवा होगी। एक ही साथ अगल–बगल रहने वाले दो धर्मों के लोग एक–दूसरे की संस्कृति और त्योहार के बारे में कुछ भी नहीं जानते। यह अपरिचय पहले संवादहीनता फिर सन्देहों को जन्म देता है, जिसकी परिणति दुश्मनी में होती है। ये है संवादहीनता का खतरा और यह खतरा बढता जा रहा है।

टीवी, टेलिफोन, इंटरनेट की सुविधा, संवाद की सुविधा बढ़ रही है, लेकिन संवाद घटता जा रहा है। आज अधिकांश लोग ऐसे हैं, जिनके पास ऐशोआराम की सब चीजें हैं, लेकिन बात करने वाला कोई नहीं, खुशी और गम बांटने वाला कोई नहीं। कंधे पर हाथ रखनेवाला कोई नहीं, बगल में कोई बीमार है, कोई मर गया तो ना ये उसके यहाँ जायेंगे और ना वो इनके यहाँ आयेगा, ना इनसे कोई दो शब्द संवेदना के कहेगा, ना ये किसी के लिये दो बूंद आंसू बहायेंगे। ये हैं २१ वीं सदी के इंसान, इनके सामने सबसे बड़ा खतरा है संवादहीनता का। इस संवादहीनता की सबसे बड़ी वजह है, वही अज्ञान जो तमाम डिग्रियों के बावजूद दूर नही होता. ये डिग्रियां कालिदास के पास नही थीं, होमर और तुलसीदास के पास नही थीं, लेकिन वे हर जीवित और अजीवित से संवाद कर सके, क्योंकि वे दुनिया से उसकी सम्पूर्णता में प्यार करते थे, यायावर बाबा नागार्जुन की तरह। उनमे और कालिदास में कोई फर्क दीखता है क्या? जब बाबा लिखते हैं 'बादल को तिरते देखा है' दोनों की संवाद दृष्टि में किसी फर्क का कोई संदेह ही नही रह जाता जब नागार्जुन अपने प्राचीन पूर्वज से सीधे पूछ बैठते हैं –

'कालिदास! सच–सच बतलाना
पर पीड़ा से पूर–पूर हो
थक–थककर और चूर–चूर हो
अमल–धवल गिरि के शिखरों पर
प्रियवर! तुम कब तक सोये थे?
रोया यक्ष कि तुम रोये थे!
कालिदास! सच–सच बतलाना!

इस प्रश्न में ही छिपा है संवाद शक्ति का मूल मन्त्र पर–पीड़ा से पूर–पूर हो, पर–पीड़ा से जो पूरा नहीं हुआ और जो सिर्फ अपनी पीड़ा से ही ग्रस्त है, वह संवाद क्या करेगा? कैसे करेगा? वास्तविक सार्थक संवाद के लिये ज़रूरी है, दुनिया की हर चीज़ के लिये स्नेह। अगर आप के अंदर ये स्नेहभाव है, तभी आप सार्थक संवाद कर सकते हैं। लेकिन अगर आपने अपनी संवाद संभावना को अहंकार, शर्म या अज्ञान के आगे कुर्बान कर दिया तो फिर कोई फ़र्क नहीं आप में और सड़क किनारे पड़े ठूंठ पेड़ में। फाइव एस, बीएमडब्ल्यू, स्विट्ज़रलैंड में छुट्टियों के बावजूद आप बस एक संवादहीन ठूंठ हैं। जिन्दा हैं, तो जागिये। दुनिया के प्रति स्नेहभाव से भरिये और सुनिये अपने भीतर दमित बैठे संवाद के संगीत को। आप तब पाएंगे कि संवाद ही जिंदगी है और संवाद ही ईश्वर।

Tears of Darkness: Exploration of the Unexplored

Dr. Kumari Priti
Assi. Prof. Deptt. of English

Author's Biography:

Dr. Sulchona Das is a novelist, short story writer, biographer, essayist, literary critic belonging to the contemporary Oriya Literature. To her credit, there is the production of eight short-story collections. To her profuse literary oeuvre she has been honoured by Odisha Sahitya Akademi and Utakala Sahitya Samaj and many other awards.

Translator's Biography:

Dr. Pravati Mishra has translated short stories from Odia to English Literature. Her Translation of selected short stories by eminent Odiya women writers has been published with the title *Petals of Joy* in 2012.

A Short Story is a fictional work of prose that is shorter in length than a novel. Edgar Allen Poe in his essay *The Philosophy of Composition* said that a short story should be read in one sitting; anywhere from a half hour to two hours. A Short Story because of its shorter length focuses on one plot, one main character (with a few minor characters) and one central theme. It may be characterized with intensity, concentration, suggestiveness, surprise. It allows a variety of approaches from Fantasy and Fairytale at one end to Journalism and Social Documentation at the other.

The term Short Story was coined by Professor Brander Matthews of Columbia University in 1901. It is assumed that Short Story as a literary genre came into existence only in the 19th century after the emergence of novel in the 18th century. The history of Short Story may be traced even before the nineteenth century. With the Oral tradition of narrating an incident or an event, story came into existence. The Short Story began as a tale told orally. Further with the invention of writing, stories began to be recorded on paper. The earliest example of the existence of short story may be traced in the Bible. There are numerous Parables and Stories which offer moral lessons and judgments.

In the 6th century BC Short Story existed in the form of fables of the slave, Aesop. *The Arabian Nights* is a collection of Short Stories from Persia, Arabia, India and Egypt. Chaucer in his *Prologue to the Canterbury Tales* portrays historical, political, social,

religious picture of the 14th century society through stories in verse. Boccaccio's *Decameron* is also a collection of short stories which comprises of hundred in numbers. It is about a group of young people who fled from Florence to avoid the Plague. While they waited for the epidemic to be controlled, they entertained each other with racy stories about corrupted priests and lascivious nuns.

In the 18th century the Periodical *the Spectator* published many semi-fictional sketches of characters. Sir Walter Scott's *The Two Drovers* was a collection of short stories, gained much popularity in its age. Thomas Hardy's Wessex Tales (1888) was the first volume of short stories which enjoyed a major success. In Indian English Literature the history of Short Story has a long and enriched tradition. R.K Narayan's collection of short stories is *Malgudi Days* (1982), *An Astrologer's Day & Other Stories* (1947), *A Horse & Two Goats* (1970), *and Under the Banyan Tree* (1985). Raja Rao's The Cow of the Barricades and Other Stories (1947), The Polishman and the Rose(1978) On the Ganga Ghat(1989). Khushwant Singh's collection of short stories is *The Collected Short Stories of Khushwant Singh* (1989). Manohar Malgonkar collection of short stories is *Bombay Beware* (1975), *Four Graves and Other Stories* (1990). K.N.Daruwalla's collection of short stories *The Sword& the Abyss* (1979) & *The Minister for Permanent Unrest& Other Stories*(1996), Jayanta Mahapatra's collection *The Green Gardener & Other Stories*. *Tales from Firozsha Baag* (1987) by Rohinton Mistry is one of the most outstanding collection of short stories. This Time I Promise It'll be Different (1994) by Makarand Paranjape is a putatively experimental short story collection.

Among women writers of Short Story, there are many prominent names to be mentioned. Ruth Prawer Jhabwala's short stories Like Birds, Like Fishes & Other Stories(1964), A Stranger Climate (1969), An Experiment with India (1972)& How I Became a Holy Mother & Other Stories (1976) deal with India. Anita Desai's first collection of short story is *Games at Twilight & Other Stories* and the Other One is *Diamond Dust* (2000). Jhumpa Lahiri's *Interpreter of Maladies: Stories of Bengal, Boston & Beyond* (1999) is Diasporic in nature, focuses on migratory identities and hybridity. Shashi Deshpande's The Legacy & Other Stories (1971), The Miracle & Other Stories (1986), *It was Dark* and *It was the Nightingale* (1986), *The Intrusion & Other Stories* (1971).Dina Mehta's *The Other Woman & Other Stories* (1981), *Miss Menon Did Not Believe in Magic & Other Stories* (1994). Anjana Appachana's *Incantations & Other Stories* and Manjula Padmanabhan first short story collection is *Hot Death Cold Soup* (1996).

Writers of the Indian Diaspora have also made notable contribution in the field of short story writing. Suniti Namjoshi's Feminist Fables (1981) are more effective than her

poems in speaking up for the rights of the marginalised. Bharati Mukherjee's collection of short stories are *Darkness* (1985) and *The Middleman & Other Stories* (1988) etc. Chitra Banerjee Divakaruni *Arranged Marriage* explores the lives of immigrant Asian Women.

The very title of the Short Story *Tears of Darkness* is overloaded with meaning. Tears are in themselves having negative overtones and darkness also reflects the negativity of life. The conjoining of concrete and abstract tends to intensify its significance.

The story is all about the terrorists and their lives.it is the narrative of the compulsive transformation of innocence into bestiality. In the words of the writer: the desire to live had made them blood-thirsty. In their dictionary they lost all good values like family, relatives, love, kindness, hatred, sinfulness and justice, etc. They were measuring life in the bullets of the police…. Murder, burglary and kidnapping were the catchwords.It is through two characters Samara and Sunari, we may have an access to the psyche of the disjointed, fragmented group of the society. They have been abducted by a group of terrorists in their childhood. Though they are bound to follow the instructions of their Master, they are not oblivious of their peripheral existence. They knew that they had least hope of life. They compare themselves with leaves set apart by cyclonic wind losing their individual identities. They were social outcaste. They knew only to destroy, not to create. They played with blood forgetting the sweet taste of life.

The seed of friendship which was sown between Samara and Sunari in their childhood has been nourished in love. And for his love, Samara makes an effort to find out an escape from this hellish life. But Sunari knows the essence of this life. She thought that he did not know how they had entered into such a field where footprints of entry were only visible, no footprint of exit. Samara would like to migrate to such a place where he may alienate himself from this life. He fondly tells her : let us go away from this place, to such a place where the Master cannot trace us….No more …no more (117). His emotional outburst reflects his agitated mental and tortured physical self.

The lives of gendered sex were characterized by humiliation, apathy and endless torture. In the first person voice of the writer: for their carnal satisfaction not only Sunari but other girls like Ketaki, Basanti, Badamati and Phulamati were employed….the colour of all flesh is the same. It has same appeal (112). In the view of Sunari, her destiny was responsible for her misfortune. God was a cheat, an illusion for her. She did not beg help from God as she did not believe in him. It was her earnest desire to come across God in order to enquire him that what offence she had committed for which she was given such a life of curse. She knew the reality of her existence as well. She was living only in present. She could not look back nor forward as her past and future both were only a void. She was herself an empty space

which could never be filled up. It was not the destiny of a terrorist but the lives of all were patterned in the same manner.

The sweet memories of her childhood often occur to her as flashback: she was going to school in the company of Samara. Of them played, moved, and ran after butterflies in the daytime, plucked guava and berries. Gradually she looked golden. Her cheeks were pink, her dreamy eyes became expressive, and her breasts developed and became visible. Her mother advise to be away from the company of boys especially Samara disturbs her. But her mother comforts her by saying that when time comes she will realize the essence of her advice.

The very thought of her mother makes her sobbing. She felt how she has turned into a puppet in the hands of men . She has no dignity, no honour. She has become as hard as iron. Her body had neither reaction, nor excitement nor emotion nor even pleasure. A stream of tears gushed through her eyes. Its only through tears one's sorrow would wash away, the poisonous pains would vanish. God has given tears to human eyes purposely. Otherwise human heart would burst with suppressed pains and sufferings.

She is reminded of that inauspicious day when she along with other children had been abducted. She recalls: The untimely cloud was spreading all over the sky. Sunari and other started running. Samara was following them. Just at that time a group of men surrounded them. They had black dress, their faces and heads were covered with black cloth. Only their eyes were visible. They held guns.... Getting panicked they could not open their mouth (120).

Samara's love for Sunari was unconditional and beyond any barrier. He knows that her chastity has been violated by a number of men still he loves her and for her he would like to get rid of this wretched life. She tries to submit herself completely but he unties himself from her clutches. He out rightly says: I love you very much, whole-heartedly. Your soul is as fresh as lotus and as pure as flowers for worship. I touch your holy spirit with my sincere love. I knew your body has been used thoroughly, still then you are for me the same maidenly spinster as before (116).

They had been deployed by their Master to set a landmine at night in order to explode Home Minister with their retinue. They carefully kept the landmine and decided to spend night in the company of each other. Sunari was quite agitated and was not willing to go back to camp. In the morning she kisses and embraces him and utters that they could not fulfill their dreams in this life and she does not know their destiny for the next birth. He requests her to move to camp but in the mean time they hear the sound of Minister's vehicle. And in a fraction of second Sunari runs speedily and jumps over the spot where landmine was planted. An explosion is immediately followed by a scene of destruction. He also moves in the direction of the place of subversion and receives the fate of Sunari. His body is exploded and

his physical parts are scattered in the surroundings. The sky is gradually looking red.

It is in brief a realistic picture of the pathetic position of the socially rejected class of terrorists. They don't prefer this life of social exclusion and pines for social inclusion but they have no way out except to live the lives of anonymity. The Government and society are also very unsympathetic to the terrorists because their heinous crimes never allow anyone to think in terms of kindness for them. But the fact remains that we the people of society forget that they are also human beings but their circumstances have compelled them to act inhumanly.

A brief history of terrorism shows that it poses a significant threat to the people of India. Terrorism found in India includes ethno-nationalist terrorism, religious terrorism, left wing terrorism and narco terrorism. The regions with long term terrorists activities have been Jammu and Kashmir, east-central and south-central India (Naxalism) and the Seven Sisters States. An act of terror includes any intentional act of violence that causes death, injury or property damage, induces fear, and is targeted against any group of people identified by their political, philosophical, ideological, racial, ethnic, religious affiliation.

References:

Wikipedia: The Free Encyclopedia (2015). Definition of Terrorist and Terrorism. Web. 18 Feb 2015.

Das,Sulochana. Tears of Darkness and Other Stories. Trans. By Pravati Misra. New Delhi: Adhyayan Publishers& Distributors, 2012. Print.

Holmstrom, Lakshmi, ed.The Inner Courtyard: Stories by Indian Women.New Delhi: Rupa& Co. 2008. Print.

Naik,M.K. and Shyamala A. Narayan.Indian. English Literature 1980-2000: A Critical Survey. New Delhi: Pencraft International, 2001. Print.

Indian English Literature: Promises & Possibilities

Dr. Amit Kumar Shukla
Assistant Professor-Dept. of English

According to Vladimir Navokov, "Literature and butterflies are the two sweetest passions known to man". Literature always has a large, close and fresh relation with life: and in that fact lies the final explanation of its power. In fact, a great book grows directly out of life, means that it is in life itself that we have to seek the sources of literature. Man, as we are often reminded, is a social animal and the basic constitution of his nature is such that he is unable to keep his experiences,observations,ideas,emotions, fancies to himself. Not only this he is also constantly under the stress to share them with others and for that purpose the various forms of literature are regarded as only mediums to discharge his sociality and to blend expression with artistic creation.

So far as English language is concerned, at its best it is a beautiful language. It is a flexible and expressive vehicle for the transmission of thought, whether the simplest and plainest or the highest and most profound. The very intensity of the situation catches the eloquent fancy (of the writer) by the throat and compels him to put his meaning into a few broken words. Today English has become the need of time. The Calcutta University Commission has already reported that the use of English would have to be continued as a means of inter communication necessary for the maintenance of the unity of India for mutual exchange and for promotion of interprovincial relations-commerce and industry.

After the popularity of English education in India, obviously there was now the need to write and express in English as it has become a natural part of our mental makeup. It was rather a difficult task as English is not rooted in the soil of India. It is in the brain of Indian but not in his blood and bones. Moreover, English has always been "a second language" but Indians have naturally used it for expressing themselves creatively. But the most challenging task of the Indian creative writer in English was the problem of using it in a way that will be distinctively Indian and still remain English. Once Raja Rao announced:

> We cannot write like the English: we should not.
>
> We cannot write only as Indians. We have grown to look at
>
> the large world as a part of us. Our method of expression, therefore, has to be a dialect which will someday prove
>
> to be as distinctive and colourful as the Irish or the American……..

Indians have been using the English language for creative purpose for more than a century and half but not until the third or fourth decade of this century was there a serious and systematic attempt to place such writings in its proper historical and cultural context and to evaluate it as literature. A general awareness of the identity of Indo-Anglian writing has now spread in Indian literary circles and in abroad largely. A well-organised group like the Writers Workshop of Calcutta- "a small group which believes that English has proved its ability to play a creative role in Indian literature……"- has done a great deal to place such writings before the reading public in India and abroad through its journals as well as books.

Today the Indian English Writers are able to achieve the interfusion of the "world of words" and "world of sensations". With their continuous experimentation they have lent to the English language a peculiarly Indian tone and colour by the way of infusing the Indian life into English expression. Modern India represents, to a large extent, a synthesis of the East and the West, as it has grasped and assimilated much from the West, maintaining, preserving and researching much that it always has. This synthesis and its positive results are clearly discernible in Indian Writings in English, which itself represents part of this process. In this way Indian English Literature is playing a prominent role in the development of India in particular and in the globalization of the world in general.

Undoubtedly, Indian writer in English, with his divine imagination and authentic presentation is creating wonders in the field of literature, having his roots firmly in the soil of his own native land. According to Meenakshi Mukherjee:

> Indian writing in English is the only form of modern Indian literature that is accessible to critical examination all over the country and even abroad…….. The critic of Indo-Anglian literature is thus exposed to the lager world of literary criticism and runs the risk as well as enjoys the challenge of such exposure.

Thus, Indian English literature is playing a vital role as English is now-a-days necessary to unite the masses, fight against provincialism, communicate and enable the people of India mutually to exchange and to stimulate ideas. In the absence of a common Indian language, English can help to bring together people from different parts of India, working as a unifying force. Its influence on our vernaculars is quite positive, resulting in simplicity and directness in these languages like Hindi, Marathi, and Bengali etc. It has caught the intellectual growth of the nation and stood in the way of traditional cultural development. As we can see Indian English writers have established themselves quite firmly by gaining world-wide fame. They have their own grounds of identification now. The names of Tagore, Aurvindo, Kamala Das, R.K.Narayan, MulkrajAnand, Raja Rao, Salman Rushdie, Arundhati Roy, Shashi Deshpande, Girish Karnad and many more have become the part of the world history. Every now and then a star (Indo-Anglian/Anglo-Indian) here (in India) or there (abroad) might be heard appearing and shining in the horizon of world literature. Finally, its handful knowledge

may enable us to establish intellectual, cultural, commercial and political relations with the rest of the world which can be strong means of sustainable development in India.

References:

- Iyenger, K.R.S.: Indian Writing in English. 15th Edition Sterling Publications Delhi : 2004.
- Naik, M.K.: edt. Aspects of Indian writing in English Macurillan India Publishers : 1992.
- Google Scholar (Internet site)

स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा दर्शन

डॉ0 ममता गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्रविभाग

व्यवहार में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग विशेषतया दो अर्थों में किया जाता है– संकुचित और व्यापक। संकुचित अर्थ में शिक्षा से तात्पर्य शिक्षा–संस्थाओं में अल्प वर्षों की होने वाली पढ़ाई अथवा प्रशिक्षण है। इसमें किसी निश्चित स्थान पर, कुछ निश्चित व्यक्तियों द्वारा, कुछ निश्चित माध्यमों से, निश्चित पाठ्यक्रम की शिक्षा दी जाती है। इससे वास्तविक ज्ञान प्राप्त नहीं होता। प्रत्येक देश में ऐसे बहुत से समाजसुधारक, सन्त और दार्शनिक तथा विचारक पाये जाते हैं जिनकी औपचारिक शिक्षा के विषय में 'मसि कागद छुओ नहीं' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। परन्तु क्या इससे कोई उनको अशिक्षित कहता है? स्पष्ट है कि शिक्षा को संकुचित अर्थ में लेना ठीक नहीं है।

व्यापक अर्थ में मानव–प्राणी अपने जीवन में, सभी आयु में और सभी स्थानों से कुछ न कुछ शिक्षा प्राप्त करता है। इस प्रकार शिक्षा केवल विद्यालय या कक्षा के कमरे तक ही सीमित नहीं होती, बल्कि परिवार और समाज की विभिन्न संस्थाओं तथा समितियों आदि के माध्यम से भी मिलती है। इसलिए कठोपनिषद् में कहा गया है–

उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति।[1]

अर्थात् उठिए, जागिए और श्रेष्ठ पुरुषों को प्राप्त करके अच्छी तरह समझिए; ज्ञानी लोग इस मार्ग को छुरे की धार के समान तीक्ष्ण एवं दुर्गम बताते हैं। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ द रिपब्लिक में शिक्षा की परिभाषा करते हुए प्लेटो ने कहा है,''वास्तविक शिक्षा, वह जो कुछ भी हो, उसे मनुष्यों को उनके परस्पर सम्बन्ध में और उनकी सुरक्षा में सर्वाधिक प्रवृत्ति रखती होगी।''[2]

प्लेटो द्वारा दी गई शिक्षा की यह मानववादी परिभाषा पश्चिम में वर्तमान काल में शिक्षा की व्याख्या करने में सबसे अधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। आज सब कहीं शिक्षा को मूल्य को उत्पन्न करने की प्रक्रिया माना जा रहा है।

समकालीन भारतीय दार्शनिकों ने भारत की संस्कृति के अनुरूप शिक्षा–प्रणाली को अपनाने का समर्थन किया। समकालीन भारतीय शिक्षादर्शन कुछ ऐसी सामान्य प्रवृत्तियाँ दिखलाता है, जिनसे विभिन्न दार्शनिकों के विचारों में न्यूनाधिक अन्तर होते हुए भी कुछ ऐसी सामान्य बातें स्पष्ट होती हैं जो शिक्षा के प्रति आधुनिक भारतीय विचारधारा की प्रतिनिधि हों। महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् आदि के शिक्षा–दर्शन इसके श्रेष्ठ उदाहरण है।

प्रस्तुत लेख में स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शन का विवेचन किया गया है। स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य थे। स्वामी रामकृष्ण परमहंस वेदान्त की परम्परा को मानने वाले सन्त थे। वेदान्त का मूल सिद्धान्त है कि एक ही ब्रह्म सब जगह भिन्न–भिन्न रूपों में दिखलाई पड़ता है। अस्तु श्री रामकृष्ण परमहंस ने अपने उद्देश्यों में सभी धर्मों की एकता पर बल दिया। उनके इसी उपदेश को विवेकानन्द ने दूर–दूर तक फैलाया। एक ओर जहाँ स्वामी विवेकानन्द पर प्राचीन भारतीय वेदान्त –दर्शन का प्रभाव था, वहीं दूसरी ओर वे पाश्चात्त्य वैज्ञानिक प्रगति से भी कम प्रभावित न थे। इसलिए उन्होंने कोरे निवृत्तिवाद का खण्डन किया है और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति का समन्वय करने का प्रयास किया है। मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानते हुए भी वे इस लोक में प्रवृत्ति की अवहेलना नहीं करते। इसके लिए तो एक स्थान पर उन्होंने यहाँ तक कह दिया है, ''सबसे पहले युवकों को सबल बनाना चाहिए। धर्म तो बाद की चीज है। श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन की तुलना में तुम फुटबाल के द्वारा स्वर्ग के अधिक निकट पहुँचोगे। जब तुम्हारा शरीर तुम्हारे पैरों पर दृढ़ रूप में खड़ा होगा और तुम अपने को मनुष्य के रूप में अनुभव करोगे तब तुम उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को अधिक अच्छी तरह समझोगे।''[3] इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा में समन्वयात्मक दृष्टिकोण उपस्थित किया। वे समकालीन भारत में महान् संतों की उस परम्परा में आते हैं, जिसमें रामकृष्ण परमहंस, स्वामी दयानन्द, रमण महर्षि और अरविन्द घोष की गिनती की जाती है। वे केवल एक महान् संत ही नहीं, अपितु प्रसिद्ध नेता भी थे जिनका यश भारत के अतिरिक्त सुदूर विदेशों में भी फैला हुआ था। उनके विचारों से अमेरिका के लोग चमत्कृत हुए, क्योंकि उन्होंने ऐसी भाषा में वेदान्त के उपदेशों को उपस्थित किया जिसको पश्चिम के लोग समझ सकते थे।

स्वामी विवेकानन्द ने भारत में अंग्रेजों द्वारा चलाई हुई वर्तमान शिक्षा–प्रणाली का खण्डन किया। उनका कहना था कि यह शिक्षा हमें अपनी संस्कृति के अनुरूप नहीं बनाती। उन्होंने कहा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली से मनुष्य का केवल बाहरी परिवर्तन हो रहा है, परन्तु नई–नई उद्भावना शक्ति के अभाव के कारण आप लोगों को धन कमाने का उपाय उपलब्ध नहीं हो रहा है। इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द को सबसे बड़ा क्षोभ यह था कि वर्तमान शिक्षा हमारे नवयुवकों को केवल नौकरी के योग्य बनाती है, नौकरी के अतिरिक्त वे कुछ नहीं कर सकते। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, ''हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिससे चरित्र–निर्माण हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होना सीखे।''[4] वर्तमान शिक्षा–प्रणाली की आलोचना करते हुए उन्होंने उसकी तुलना एक ऐसे व्यक्ति से की है जिसे अपने गधे को घोड़ा बनाने के लिए खूब पीटने की सलाह दी गयी थी और उस व्यक्ति ने अपने गधे को घोड़ा बनाने के लिये उसे पीट–पीट कर अधमरा कर दिया था।

पाश्चात्त्य ढंग की शिक्षा –प्रणाली की आलोचना करते हुए स्वामी विवेकानन्द यह स्पष्ट रूप से समझते थे कि उपयुक्त व्यवस्था का प्रबन्ध किये बिना देश का उत्थान नहीं हो सकता। एक ओर नया भारत कहता है कि ''पाश्चात्त्य भाव, भाषा, खान–पान, वेष–भूषा और रीति का अवलम्बन करने से ही हम लोग पाश्चात्त्य जातियों की भाँति शक्तिमान हो सकेंगे। दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है कि मूर्ख! नकल करने से भी कहाँ दूसरों का भाव अपना हुआ है? बिना उपार्जन किये कोई वस्तु अपनी नहीं होती। क्या सिंह की खाल पहनकर गधा कहीं सिंह हुआ है?''[5]

एक ओर नवीन भारत कहता है कि ''पाश्चात्त्य जातियाँ जो कुछ कर रही है, वही अच्छा है। अच्छा न होता तो वे ऐसी बलवान् हुईं कैसे? दूसरी ओर प्राचीन भारत कहता है कि बिजली की चमक तो खूब होती है, पर क्षणिक होती है। बालकों! तुम्हारी आँखे चौधियाँ रही हैं, सावधान।''[6] शिक्षा के बिना भारतवासियों में आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं हो सकता। यूरोप और अमेरिका के नगरों में समान्य व्यक्तियों के स्तर और शिक्षा को देखकर स्वामी जी के मन में बार–बार अपने देशवासियों की दीन दशा के लिए दुःख उत्पन्न होता था। उन्होंने स्पष्ट रूप से समझ लिया कि इस दीन दशा का कारण उपर्युक्त शिक्षा का अभाव है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, '' केवल शिक्षा! शिक्षा! शिक्षा! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों के भी अमन–चैन और विद्या को देखकर हमारे गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ? जवाब पाया– शिक्षा।''[7]

स्वामी विवेकानन्द ने भारत की वर्तमान स्थिति की आयरलैण्ड से तुलना करते हुए दिखलाया है कि किस प्रकार उपर्युक्त शिक्षा के अभाव में वहाँ के लोग निर्धन, दीन–हीन और सब प्रकार से उत्साहीन दिखलाई देते थे। शिक्षा मिलने के बाद उनकी आँखें उठने लगीं और भय के चिह्न समाप्त हो गये। इसके पहले वे अपने को दास समझते थे और दूसरों से नीचा मानते थे। अमेरिका में पहुँचकर उन्होंने यह अनुभव किया कि वे भी मनुष्य है और वे सब कुछ कर सकते हैं। उनमें हिम्मत बँधी और उन्होंने सिर उठाकर रहना सीखा। भारत की भी समस्या इसीप्रकार की है। हमारी शिक्षा हमारे नवयुवकों को इन्सान नहीं बनाती, बल्कि उनमें इन्सानियत के बहुत से गुणों को समाप्त कर देती है। इसप्रकार की निषेधात्मक शिक्षा देश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है। इसप्रकार की शिक्षा से मनुष्यों का नहीं बल्कि कुलियों और बाबुओं का निर्माण होता है। वह कभी हमें यह अनुभव नहीं करने देती कि हमारा भूतकाल कितना उज्ज्वल है। उससे हमें यह भी ज्ञात नहीं होता कि हमारा भूत कैसा था और इस कारण पिछले पचास वर्षों की लगातार शिक्षा से भी ज्ञान की दृष्टि से देश में एक भी मौलिकता वाला व्यक्ति उत्पन्न नहीं हो सका है। स्वामी जी ने स्पष्ट लिखा, ''मौलिकता वाला प्रत्येक व्यक्ति जो कि उत्पन्न हुआ है, इस देश में नहीं, अपितु अन्य स्थान पर शिक्षा पाता रहा है अथवा वे अपने को एक बार फिर से स्वच्छ करने के लिए पुराने विश्वविद्यालयों में गये हैं।''[8]

इस प्रकार स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा कोरी जानकारी नहीं है। बालक–बालिकाओं के मस्तिष्क में जानकारी को भरने के प्रयास को शिक्षा नहीं कहना चाहिए। उन्होंने तथाकथित शिक्षित व्यक्तियों की भर्त्सना करते हुए कहा, ''विदेशी भाषा में दूसरों के विचारों को याद कर लेने तथा अपने मस्तिष्क को उनसे भरने तथा किसी विश्वविद्यालय से उपाधि प्राप्त कर लेने पर आप अपने को शिक्षित समझने का गर्व कर सकते हैं। क्या यह शिक्षा है?[9] आपकी शिक्षा का लक्ष्य क्या है? या तो क्लर्की अथवा वकील बनना, अथवा अधिक से अधिक एक डिप्टी मजिस्ट्रेट बनना जो कि एक दूसरे प्रकार की क्लर्की ही है, क्या यही सब कुछ है? अपनी आँखें खोलो और देखो कि इस भारत देश में, जो कि खाद्य सामग्री के लिए प्रसिद्ध था, आज भोजन के लिए कैसी त्राहि–त्राहि मची हुई है। क्या आपकी शिक्षाप्रणाली इस कमी को पूरा करेगी? इसप्रकार स्वामी विवेकानन्द देश में एक ऐसी शिक्षा–प्रणाली का प्रसार करना चाहते थे, जिससे देश की आवश्यकताओं की पूर्ति हो, लोगों में विश्वास और दृढ़ चरित्रनिर्माण हो तथा साहस और आगे बढ़ने की इच्छा जाग्रत हो।

ज्ञान क्या है, इस विषय में प्राचीन भारतीय और आधुनिक पाश्चात्त्य मत में स्पष्ट अन्तर दिखलाई पड़ता है। अनेक पाश्चात्त्य शिक्षा–शास्त्रियों के अनुसार ज्ञान मानव–प्राणी के परिवेश से अन्तःक्रिया में उत्पन्न होता है, बाहरी परिवेश के प्रभाव से नहीं। वास्तविकता ज्ञान से नहीं आतर, उसका अन्दर से अनावरण होता है, क्योंकि मनुष्य के अन्दर उसकी आत्मा ही ज्ञान का सनातन स्रोत है। स्वामी विवेकानन्द इसी भारतीय परम्परा के अनुयायी थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा, ''विश्व ने कभी भी जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह सब मानस से आता है। विश्व का असीम पुस्तकालय आपके मानस में है। बाहरी दुनिया केवल एक संकेत, केवल एक अवसर है जो आपको मानस के अध्ययन के लिए प्रेरित करता है। सेब के गिरने से न्यूटन को संकेत मिला और उसने अपने मस्तिष्क का अध्ययन किया, उसने अपने मस्तिष्क में विचार की पिछली सब कड़ियों को व्यवस्थित किया और उनमें एक नया नियम खोजा जिसको हम गुरुत्वाकर्षण का नियम कहते हैं।''[10]

इसप्रकार स्वामी विवेकानन्द के अनुसार हमारा समस्त ज्ञान हमारे मस्तिष्क में गुप्त रूप से उपस्थित रहता है। शिक्षा इसी का अनावरण है, उसमें बाहर से कुछ नहीं आता, बल्कि जो हमारे अन्दर है, वही अभिव्यक्त होता है। स्वामी विवेकानन्द ने तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली की आलोचना करते हुए केवल जानकारी देने वाली शिक्षा को अनुपयुक्त बतलाया। उनके अनुसार, शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य निर्माण करना है। मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता उसका चरित्र है।

विवेकानंद के शब्दों में ''शिक्षा क्या वह है जिसने निरन्तर इच्छाशक्ति को बलपूर्वक पीढ़ी दर पीढ़ी रोककर प्रायः नष्ट कर दिया है, जिसके प्रभाव से नये विचारों की तो बात ही जाने दीजिए, पुराने विचार भी एक–एक करके लुप्त होते जा रहे हैं ? क्या वह शिक्षा है जो मनुष्य को धीरे–धीरे यन्त्र बना रही है? जो स्वयंचालित यन्त्र के समान सुकर्म करता है, उसकी अपेक्षा अपनी स्वतन्त्र इच्छाशक्ति और बुद्धि के बल से समुचित कर्म करने वाला मेरे विचार से धन्य है।''[12] इस प्रकार शिक्षा आत्म–विकास की प्रक्रिया है। बालक स्वयं अपने को शिक्षित करता है। विवेकानंद के शब्दों में, ''जिस तरह से आप एक पौधा नहीं उगा सकते, उसी तरह आप किसी बालक को शिक्षा नहीं दे सकते। पौधा स्वयं अपनी प्रकृति को विकसित करता है।''[13] परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि शिक्षा में शिक्षक का कोई महत्त्व नहीं है? शिक्षा की प्रक्रिया में शिक्षक का महत्त्व बालक के आत्म–विकास के मार्ग की बाधाओं को दूर करने में है। जिस तरह माली का काम जमीन को ठीक करना, और समय–समय पर उसको पानी देना है, उसी प्रकार शिक्षक का कार्य बालक की देखभाल करना और उसको ऐसा परिवेश प्रदान करना है जिसमें उसका समुचित विकास हो सके। यह ठीक है कि ज्ञान के स्रोत स्वयं बालक में उपस्थित होते हैं, किन्तु शिक्षक ही उसको जगाता है। प्रेरणा बालक में होती है, किन्तु शिक्षक के संकेत से यह प्रेरणा बालक में होती है, शिक्षक के संकेत से ही यह प्रेरणा जाग्रत होती है। अतः शिक्षक का कार्य यह है कि वह बालक–बालिकाओं को अपने हाथ–पैरों, इन्द्रियों और बुद्धि आदि के प्रयोग के लिए प्रेरित करे। आधुनिक काल में शिशु की सभी विधियाँ इस विचार का समर्थन करती हैं।

स्पष्ट है कि विवेकानन्द शिक्षा में किसी प्रकार का बाहरी दबाव नहीं चाहते, क्योंकि इसमें बालकों की स्वतन्त्रता में व्याघात पहुँचता है। शिक्षकों अथवा माता–पिता को बालकों पर आवश्यक दबाव नहीं

डालना चाहिए और उनके विकास को उन्मुक्त छोड़ देना चाहिए। वास्तविक सुधार अन्दर से होता है, बाहरी दबाव से उल्टी प्रक्रियाएँ होती हैं।

भारतीय दर्शन की परम्परा में विवेकानन्द ने जीवन में तपस्या पर जोर दिया। उन्होंने आजकल के युवक–युवतियों में व्यापक रूप से फैले हुए आलस्य, भोगवाद और अधिक से अधिक आराम की इच्छा के प्रति खेद प्रकट किया। कठोर परिश्रम के बिना ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। सुख से अधिक दुःख और कष्ट मानव चरित्र के निर्माण में सहायक है। जीवन में संघर्ष से अधिक अच्छा कोई शिक्षक नहीं हो सकता। जो प्रकृति के विरुद्ध लड़ता है, उसी में चैतन्य का विकास होता है। चेष्टा और पुरुषार्थ जीवन के चिह्न हैं। निष्क्रियता जीवन का अभाव दिखलाती है। सब प्रकार के आराम के साधनों में रहते हुये, शारीरिक और मानसिक सब प्रकार के परिश्रम से दूर भागने वाले विद्यार्थियों में यदि चरित्र, अनुशासन और साहस का अभाव दिखाई पड़े तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जीवन के संघर्ष में तप कर ही मनुष्य की आत्मा प्रखर होती है। स्पष्ट है कि शिक्षा के क्षेत्र में जो विद्यार्थी परीक्षा पास करने हेतु तरह–तरह की संक्षिप्त पुस्तकों और प्रश्नोत्तरियों से थोड़े से परिश्रम से लाभ उठाना चाहते हैं, वह सर्वथा अनुपयुक्त है।

उपनिषदों के काल में शिक्षा–व्यवस्था में शिक्षक शिक्षार्थी को मार्ग–भर दिखाता था, शिक्षार्थी को स्वयं परिश्रम से उस पर चलना पड़ता था। शिक्षार्थी नाना प्रकार से शिक्षक की सेवा करता और तब कहीं शिक्षक उसको मार्ग–दर्शन मात्र देता, क्योंकि इससे अधिक देने से शिक्षार्थी को परिश्रम का अवसर नहीं मिलता। आजकल की शिक्षा–प्रणाली में विद्यार्थियों के द्वारा दी गयी फीस के बदले में शिक्षक तरह–तरह के पाठ्य विषय को तैयार करके विद्यार्थियों के मस्तिष्क में भरने की कोशिश करते हैं तो उससे चरित्र–निर्माण और व्यक्तित्व–विकास के आदर्शों को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? मुंशी प्रेमचन्द ने अपने एक उपन्यास में ठीक ही लिखा है कि किराये की तालीम हमारे कैरेक्टर को खराब कर रही है।

शिक्षा की प्रक्रिया में चरित्र–विकास कैसे होता है, यह समझाते हुए स्वामी विवेकानन्द ने झील में उठने वाली लहरों का उदाहरण दिया। झील में उठने वाली प्रत्येक लहर गिरने के साथ समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि दूसरी लहर को उत्पन्न करती है जो कि उससे भी आगे जाती है। इसी प्रकार जीवन में हम जो कुछ भी शारीरिक अथवा मानसिक क्रिया करते हैं, उससे हमारे मन पर संस्कार पड़ते हैं। ये संस्कार भले ही वे बाहर से दिखाई न पड़ते हों, हमारे भविष्य का निर्माण करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इन सब संस्कारों के संयुक्त परिणाम से ही चरित्र का विकास होता है। यदि अच्छे संस्कारों की अधिकता होती है तो अच्छा चरित्र बनता है। अतः चरित्र का निर्माण लम्बे काल तक शुभ संकल्प और शुभ कर्म से होता है। यदि कोई मनुष्य बहुत दिनों तक बुरे विचार और बुरे कर्म में लगा रहता है तो उसमें बुराई की प्रेरक शक्ति तीव्र हो जाती है। दूसरी ओर, यदि वह बहुत समय तक अच्छे कार्य और अच्छे विचारों में रहता है, तो उसमें भलाई की शक्ति तीव्र हो जाती है। ''देखा, एकमात्र ब्रह्मचर्य का ठीक–ठीक पालन कर सकने पर सभी विद्याएँ बहुत ही कम समय में हस्तगत हो जाती हैं– मनुष्य श्रुतिधर, स्मृतिधर बन जाता है। ब्रह्मचर्य के अभाव से ही हमारे देश का सब कुछ नष्ट हो गया।''[14]

विवेकानन्द के अनुसार शुभ विचार अच्छे चरित्र की पूँजी है। बहुत दिनों तक अच्छे विचार रखने से अच्छे संकल्प उत्पन्न होते हैं और अच्छे संकल्पों से एक ऐसी आत्म–शक्ति का निर्माण होता है जो विरोधी

परिवेश में व्यक्ति को शुभ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती है। ऐसा व्यक्ति यदि बुराई की ओर जाना भी चाहता है तो उसकी अन्तरात्मा उसे नहीं जाने देती। एक बार अच्छा चरित्र बन जाने पर व्यक्ति को कहीं भी छोड़ दिया जाए, वह अच्छे ही मार्ग पर चलता है।

इस चरित्र को आप कैसे बनायेंगे? मनुष्य के चरित्र की कसौटी बड़े–बड़े काम नहीं हैं। उसके जीवन की छोटी–छोटी बातों में ही उसका चरित्र दिखाई पड़ता है। बड़े–बड़े कामों के अवसर आने पर तो बहुत से छोटे व्यक्ति भी चरित्र के ऊँचे गुर दिखाते हैं, किन्तु देखना तो यह है कि रोजाना के जीवन में वे किस तरह व्यवहार करते हैं। अपने आस–पास के लोगों से हमारा व्यवहार, हमारा उठना–बैठना, तौर–तरीके, सोच–विचार, बातचीत का ढंग, दिनचर्या इन सब बातों से हमारा चरित्र अभिव्यक्त होता है। खेद का विषय है कि हमारी वर्तमान शिक्षा–प्रणाली में इस प्रकार के चरित्र के विकास का कोई स्थान नहीं है। यही कारण है कि अत्यन्त ऊँची शिक्षा की डिग्री प्राप्त करने के बाद भी बौद्धिक, संवेगात्मक, शारीरिक और सामाजिक किसी भी दृष्टि से युवक–युवतियों में विशेष विकास दिखलाई नहीं पड़ता और वे बौने ही रह जाते हैं। विवेकानन्द ने तत्कालीन शिक्षा–प्रणाली की कटु आलोचना की और उसके दोषों का विश्लेषण किया। उन्होंने दिखाया कि वह शिक्षा–प्रणाली विशुद्ध भौतिक और जड़वादी दर्शन पर आधारित है। उसमें धार्मिक और आध्यात्मिक तत्त्व के लिए कोई स्थान नहीं है।

देश के दीन–हीन, दरिद्र और पिछड़े वर्गों की ओर ध्यान देते हुए विवेकानन्द ने भारतीय नारियों की ओर भी ध्यान दिया क्योंकि उनकी दशा पुरुषों से बहुत पिछड़ गयी थी। प्राचीन भारतीय परम्परा में स्त्री–पुरुष में कोई ऊँच–नीच नहीं माना गया है। वे दोनों परस्पर पूरक माने गए हैं। उपनिषदों के काल में स्त्रियों में शिक्षा का व्यापक प्रचार था। अनेक स्त्रियों ने दर्शन और गणित जैसे विषयों में भी ख्याति प्राप्त की थी। विवेकानन्द ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के इस ऊँचे आदर्श के होते हुए भी आज हम स्त्री–पुरुष में भेदभाव कर रहे हैं। उन्होंने स्त्रियों की हीन दशा की ओर ध्यान आकर्षित किया और स्त्रियों को फिर से आगे बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर दिया। वे नारी को शक्ति का अवतार मानते थे, जिसका सब प्रकार से सम्मान किया जाना चाहिए। वे इस सिद्धान्त को मानते थे, **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।'** भारतीय दर्शन में नर–नारी ब्रह्म के दो रूप माने गये हैं। विवेकानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो देश अपनी स्त्रियों का सम्मान नहीं कर सकता, वह कभी आगे नहीं बढ़ सकता। इस सम्बन्ध में उन्होंने अमेरीका का उदाहरण दिया और यह कहा कि वहाँ पर स्त्रियों के इतने अधिक सम्मान के कारण ही वह देश आज इतना आगे बढ़ सका है।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए एक मात्र उपाय शिक्षा है। शिक्षा से ही उनमें आत्म–विश्वास उत्पन्न होगा और वे स्वयं अपनी सहायता कर सकेंगी। स्त्रियों की शिक्षा में धार्मिक शिक्षा आवश्यक है, क्योंकि विवेकानन्द भारतीय नारी को सीता और गार्गी के आदर्श के अनुरूप बनाना चाहते हैं, पाश्चात्त्य नारी की प्रतिलिपि बनाना नहीं चाहते। उन्होंने स्त्रियों में चरित्र और शुद्धता पर विशेष जोर दिया। इसी से उनमें साहस जाग्रत होगा। उन्होंने स्त्रियों के सामने सीता का आदर्श उपस्थित किया। उन्होंने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आधुनिक शिक्षा–प्रणाली से हमारे युवक–युवतियाँ पाश्चात्त्य आदर्शों का अनुकरण कर रहे हैं। इससे युवकों से भी अधिक युवतियों की हानि हुई। इससे सब ओर नैतिक पतन बढ़ा है। उन्होंने

स्त्रियों में त्याग और सेवा का आदर्श उत्पन्न करने की सलाह दी। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य के आदर्श का पालन करना चाहिए। स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए स्त्री शिक्षकों में उच्च चरित्र की आवश्यकता है। स्त्री शिक्षा स्त्रियों के द्वारा ही दी जानी चाहिए। ये अविवाहित अथवा विवाहित अथवा विधवा कोई भी हो सकती हैं, किन्तु सर्वत्र उच्च चरित्र अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में किसी भी स्त्री को शिक्षक होने का अधिकार नहीं है। केवल धनोपार्जन के लिए शिक्षण कार्य ग्रहण करना उपयुक्त नहीं है।

स्त्री–शिक्षा के पाठ्यक्रम के लिए विवेकानन्द ने इतिहास और पुराण, गृह–विज्ञान और कला तथा धर्म की शिक्षा पर जोर दिया है। गृह–विज्ञान में सिलाई–कढ़ाई, भोजन पकाना तथा गृहस्थ जीवन के विभिन्न कार्य सम्मिलित हैं। इन सबके साथ–साथ पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शारीरिक शिक्षा दी जानी चाहिए, वे स्वयं अपनी रक्षा कर सकें और निर्भय होकर सब ओर घूम–फिर सकें। युवकों के समान युवतियों में भी साहस और शौर्य उत्पन्न करने की आवश्यकता है। ऐसी माताएँ ही साहसी बालकों को जन्म दे सकती हैं। उन्हीं की गोद में पलकर देश का निर्माण करने वाले सपूत पैदा हो सकते हैं।

इस प्रकार विवेकानन्द ने स्त्री–पुरुष, धनी–निर्धन सभी में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया है। उनकी शिक्षा–प्रणाली भारत की दार्शनिक और आध्यात्मिक परम्परा के अनुरूप थी। वे स्वदेशी के हिमायती थे और उन्होंने पाश्चात्त्य विज्ञान और प्रवृत्तिवाद को अपनाने के लिए कहा। उन्होंने दूसरी ओर ब्रह्मचर्य और आध्यात्म के प्राचीन आदर्शों को शिक्षा में सबसे प्रमुख स्थान दिया। युवक–युवतियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय उन्होंने साहस, आत्म–विश्वास, एकाग्रता, अनासक्ति तथा उच्च नैतिक चरित्र के गुण निर्माण करने पर विशेष रूप से ध्यान दिया। उन्होंने शिक्षकों को शिक्षा देने के कार्य को व्यवसाय बनाकर एक मिशन के रूप में लेने की सलाह दी। उन्होंने सर्वत्र संतुलित और समन्वयवादी दृष्टिकोण रखा। वे अंग्रेजी और पाश्चात्त्य संस्कृति के विरुद्ध नहीं थे। ऐसा होता तो पश्चिम में उनका इतना जोरदार स्वागत न होता। परन्तु दूसरी ओर उन्होंने पश्चिम से जो कुछ ग्रहण किया। उसको भारतीय संस्कृति का ऐसा जामा पहनाया कि वे कहीं भी स्वदेशी के आदर्श से नहीं हटते। महान् आदर्शवादी होते हुए भी उनके शिक्षा सम्बन्धी विचार अत्यधिक व्यावहारिक और यथार्थवादी हैं। उन्होंने तत्कालीन भारत की परिस्थितियों के अनुसार शिक्षा–प्रणाली की ऐसी रूपरेखा उपस्थित की जिससे देश स्वतन्त्रता प्राप्त करके प्रगति के मार्ग में आगे बढ़े। उनके शिक्षासम्बन्धी विचार आज भी समकालीन शिक्षा–प्रणाली के सुधार के लिए मार्ग निर्देशक का कार्य कर सकते हैं।

स्वामी विवेकानन्द के ही शब्दों में, 'आज हमें आवश्यकता है 'वेदान्तयुक्त पाश्चात्त्य विज्ञान की, ब्रह्मचर्य के आदर्श और श्रद्धा तथा आत्मविश्वास की। ..... वेदान्त का सिद्धान्त है कि मनुष्य के अन्तः में – एक अबोध शिशु में भी – ज्ञान का समस्त भण्डार निहित है, केवल उसके जाग्रत होने की आवश्यकता है और यही आचार्य का काम है .... पर इस सब का मूल है शिक्षा, वही मुख्य है।''[15]

संदर्भग्रन्थ

(1) कठोपनिषद् 1/3/14

(2) The Republic, Jowett, 653.

(3) Vivekanand, Collected Works, Vol III, Advaita Ashram, P. 242.

(4) विवेकानन्द के सान्निध्य में, द्वितीय संस्करण, पृ0 नं0 49–50

(5) वर्तमान भारत, षष्ठ संस्करण, पृ0नं0 42–43

(6) वर्तमान भारत,षष्ठ संस्करण, पृ0नं0, 43

(7) पत्रावली–द्वितीय भाग, द्वितीय संस्करण, पृ0नं0 74

(8) Vivekananda, Collected works, Vol III, Mayavati Memorial Edition, Advaita Ashram, P. 301.

(9) Vivekananda, Collected works, Vol II, Mayavati Memorial Edition, Advaita Ashram, P. 145.

(10) Vivekananda, Collected works, Vol III, Mayavati Memorial Edition, Advaita Ashram, P. 26.

(11) विवेकानन्द के सान्निध्य में, द्वितीय संस्करण, पृ0नं0 49–50

(12) पत्रावली–द्वितीय भाग, पृ0नं0 291

(13) Vivekananda, Collected works, Vol V, Mayavati Memorial Edition, Advaita Ashram, P. 324.

(14) विवेकानन्द के सान्निध्य में, तृतीय खण्ड, पृ0नं0 327

(15) विवेकानन्द के सान्निध्य में, तृतीय खण्ड, पृ0नं0 4

कर्म सिद्धान्त – वर्तमान भारतीय सामाजिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

डॉ0 शुचि तिवारी
अंशकालिक प्रवक्ता, दर्शनशास्त्रविभाग

दर्शनशास्त्र किसी देश अथवा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के अमूल्य कोष का सूचक होता है। किसी भी देश की सभ्यता, संस्कृति एवं उसके सामाजिक स्तर का सहज मूल्यांकन उसके दार्शनिक ज्ञान के अध्ययन से प्राप्त किया जा सकता है। यह बात विशेष रूप से भारतीय दार्शनिक परम्परा के लिए सत्य कही जा सकती है। अपने दीर्घ अनुभव, तपःपूत ज्ञान और चिन्तन द्वारा भारत के आत्मदर्शी ऋषिगण इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि आत्मानुभव, आत्मसाक्षात्कार, आत्मदर्शन ही मानव जीवन का परम पुरुषार्थ है। इस कारण हमारी समस्त सम्यक् चेष्टाएँ,इसी की उपलब्धि की दिशा में संचालित होनी चाहिए। यही कारण है कि भारतीय जीवनविधि में त्याग, तप, दया, सेवा, धर्म, कर्म, दर्शन व आध्यात्मिकता का प्राधान्य है।

भारत के दार्शनिक, धार्मिक एवं नैतिक चिन्तन ने विश्व को प्रभावित ही नहीं किया, अपितु उसने विश्व का धार्मिक एवं नैतिक नेतृत्व किया है। हमारे दार्शनिक चिन्तन का ही परिणाम है कि आज भी विश्व के अधिकांश देश हमसे धार्मिक एवं नैतिक निर्देश प्राप्त करने हेतु अति उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं। महात्मा बुद्ध, महावीर, विवेकानन्द, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द आदि के दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों को आज भी विश्व उतनी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखता है जितना कि तत्कालीन युग में उनका प्रभाव रहा है।

बीसवीं शताब्दी के दर्शन से यह स्पष्ट है कि किसी विषय पर निष्कर्ष निकालना दार्शनिक दृष्टि से उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि जीवन की चिरन्तन समस्याओं का सरल विश्लेषण करना। सामाजिक जीव की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में भारतीय समाज के निर्माताओं ने मानव की बौद्धिक क्षमताओं द्वारा केवल भौतिक जीवन से ही नहीं अपितु आध्यात्मिक जीवन से भी सम्बद्ध अनेक संस्थाओं का निर्माण किया। जैसे वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, संयुक्त परिवार जातिप्रथा, विवाह, धर्म की प्रधानता, कर्म का सिद्धान्त, संस्कार आदि। ये संस्थाएँ ही सामाजिक परम्परा के आधार हैं। प्रत्येक संस्था को धर्म से संबन्धित रखा गया जिससे व्यक्तिगत स्वार्थ, सामूहिक स्वार्थ के आगे झुका रहे। उन्होंने भारतीय धर्म, दर्शन, कला, अर्थव्यवस्था, पुरुषार्थ, कर्म एवं पुनर्जन्म, वर्ण और आश्रम, संस्कार, परिवार और विवाह आदि कितनी ही अन्य संस्थाओं द्वारा एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की।

भारतीय समाज को 'कर्म' तथा 'पुनर्जन्म' की धारणा ने जितना अधिक प्रभावित किया है, सम्भवतः किसी भी दूसरी अवधारणा का एक सामान्य भारतीय के जीवन पर उतना अधिक प्रभाव देखने को नहीं मिलता। सभी वर्ग और सभी स्तर के लोग किसी न किसी रूप में कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार करके उसे अपनाते हैं। यद्यपि बौद्धधर्म तथा जैनधर्म ने हिन्दुओं के अनेक परम्परागत धार्मिकविचारों की कटु आलोचना

करके उनका बहिष्कार किया है लेकिन फिर भी इन दोनों धर्मों ने कर्म के सिद्धान्त को स्वीकार किया। यह कर्म का ही सिद्धान्त है, जो तीन धर्मों हिन्दू, बौद्ध तथा जैनधर्म को कुछ विषयों में विचारों की एकता प्रदान करता है। कर्म की धारणा प्रत्येक भारतीय के मन में इतनी प्रबल है कि वेदान्त, उपनिषदों और स्मृतियों से अनभिज्ञ व्यक्ति भी निश्चित रूप से कर्म के इस आधारभूत तत्त्व से परिचित है कि अच्छे कर्म का फल अच्छा और बुरे कर्म का फल बुरा होता है और कर्म के फल को टाला नहीं जा सकता। पूर्वजन्म में उन्होंने जैसे कर्म किए हैं, उनका फल उन्हें इस जीवन में मिल रहा है और इस जीवन में किए गए कर्मों का फल निश्चित रूप से आगामी जीवन में मिलेगा। यही वह विश्वास है, जिसने भारतीय जीवन को एक लम्बे समय तक संगठित बनाये रखा और अनेक विभेदकारी सामाजिक व्यवस्थाओं के प्रति भी व्यक्तियों के मन में विद्रोह पैदा नहीं होने दिया।

कर्म तीन प्रकार के होते हैं संचित, प्रारब्ध और संचीयमान या क्रियमाणकर्म। संचितकर्म वे हैं, जिन्हें व्यक्ति ने अपने पूर्वजन्म में किये हैं किन्तु जिसके फलों का मिलना प्रारम्भ नहीं होता। प्रारब्धकर्म भी पूर्व जीवन में ही उत्पन्न होता है किन्तु उसके फलों का प्रारम्भ इस जीवन में हो चुका रहता हैं। जैसे वर्तमान शरीर तथा धन–सम्पत्ति क्रियमाणकर्म वह कर्म हैं, जिसे मनुष्य इस जीवन में कर रहा है। इस प्रकार आगामी जीवन में व्यक्ति को जो कर्मफल प्राप्त होगा वह संचित और क्रियमाणकर्म का परिणाम होगा। इससे स्पष्ट होता है कि कर्म की धारणा केवल वर्तमान जीवन से ही संबंधित नहीं है, बल्कि यह भूत, वर्तमान और भविष्य के सम्पूर्ण चक्र को प्रभावित करती है।

कर्म सिद्धान्त के अनुसार मानव जीवन का सबसे प्रमुख उद्देश्य कर्म (कार्य) करना है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत यह विश्वास किया जाता है कि मनुष्य को अपने भाग्य पर भरोसा रखकर अकर्मण्य नहीं हो जाना चाहिए। साथ ही मनुष्य का भाग्य भी उसके 'कर्मो' के संदर्भ में ही निर्मित होता है। मनुष्य जिस प्रकार के कर्म करता है, उसका भाग्य भी उसी प्रकार का निर्धारित होगा। इस रूप में मनुष्य का परम कर्तव्य है अच्छे कर्मों को करना। व्यक्ति को कर्म भी फल की इच्छा के संदर्भ में नहीं करना चाहिए। मनुष्य का कर्त्तव्य तो कर्म करने का है, फल प्रदान करना तो ईश्वर का कार्य है। यही कर्मवाद है, जिस पर सम्पूर्ण भारतीय समाज आधारित है। भारतीय दार्शनिक मनीषा के मूल ग्रन्थों– वेद, उपनिषद् एवं गीता केवल ज्ञानमात्र के लिए न होकर समाज व सामाजिकजीवन के लिए हैं। गीता का सम्पूर्ण उपदेश एवं दर्शन ही अर्जुन के माध्यम से मानव समाज के लिए है। गीतायुगीन समाज कर्मप्रधान समाज है। गीता सामाजिक जीवन जीने की शिक्षा देती है। अनासक्त भाव से ईश्वरार्पण एवं लोक कल्याण में अपने सामाजिक एवं वैयक्तिक कर्त्तव्यों को करते जाना ही गीता की शिक्षाओं का सार है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गीता में सामाजिक दायित्वों के निर्वहन पर पूरा बल दिया गया है।

आज हम भौतिकता के प्रभाववश सभी विश्वासों एवं मूल्यों को भुलाते जा रहे हैं। आधुनिकता की दौड़ में हम इतने अंधे हो गये हैं कि हम अपनी प्राचीनसभ्यता, संस्थाओं एवं शिक्षा को भूलते जा रहे हैं। आज देश, समाज क्या पूरा संसार ही विलासिता की चाह में है। पश्चिमी सभ्यता की नकल में मानव अपने धर्म, नैतिकता और कर्तव्यों से विमुख होता जा रहा है, उसके विचारों में जीवन मूल्यों के प्रति निरन्तर

गिरावट आती जा रही है। आज मूल्य बदल गए हैं। अभय की जगह भय, स्वाभिमान की जगह समझौता, परोपकार की जगह स्वार्थ, त्याग और बलिदान की जगह भोग और विलास ने ले लिया हैं। संसार में झूठ, कपट, चोरी, भ्रष्टाचार, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा, आतंकवाद, तस्करी, डकैती, कालाधन, छीनाजोरी, व्यभिचार एवं अनाचार बढ़ रहे हैं। जातिवाद बढ़ रहा है, सामाजिक मूल्यों का तेजी से ह्रास हो रहा है। अपराध, युवा–असन्तोष और आन्दोलन तथा साम्प्रदायिकता बढ़ रहे हैं। इस प्रकार देश अनेक सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है। लोग इसी जीवन एवं भौतिक सुखों की उपलब्धि को ही अन्तिम लक्ष्य मान बैठे हैं। लोगों ने वर्तमान जीवन को ही सब कुछ मान रखा है। इस जीवन के बाद भी कोई जीवन है, इसमें आज विश्वास समाप्त हो चुका है। चार्वाकों का पुराना सिद्धान्त आज सर्वत्र चरितार्थ हो रहा है– 'जब तक जियो सुख से जियो, कर्ज लेकर भी अच्छे पदार्थ का उपभोग करो, मरने के बाद पुनः लौट कर आना नहीं है, अतः निर्भय होकर सुखमय जीवन बिताओ।'' इस सर्वनाशकारी मान्यता की ओर आज प्रायः लोग बढ़े जा रहे हैं। यही कारण है कि सुख के बदले अधिकाधिक दुःख में लोग फँसते जा रहे हैं।

आज समाज में समरसता, सौहार्दपूर्ण वातावरण लाने के लिए अनेकों तरह के नियम, कानून, समितियाँ तथा योजनाएँ बन रही हैं। लेकिन केवल नियमों या कानून के आधार पर इनको एकाएक समाप्त करना मनुष्य के वश की बात नहीं रह गई है।

अब समय, आ गया है कि हम अपने पुराने मूल्यों, सेवाओं, संस्कृति तथा सभ्यता को पहचानें और देश में जो सामाजिक कटुता आयी है उसे कर्मसिद्धान्त के आधार पर दूर करने का प्रयास करें। यह सिद्धान्त वर्तमान जीवन के प्रति सन्तोष और आगामी जीवन में सुधार लाने के लिए सद्कर्मों की प्रेरणा देता है। इसके कारण ही व्यक्ति सुख–दुःख, सफलता और असफलता, समृद्धता तथा निर्धनता जैसी सभी दशाओं में अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहकर सामाजिक व्यवस्था के प्रति निष्ठावान रहता है। कर्मसिद्धान्त ने व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करने की प्रेरणा देने के साथ ही उसे 'त्याग' की ओर उन्मुख किया है। यह न्याय और आत्मसमर्पण की भावना समाजकल्याण के लक्ष्य से ही संबन्धित है। इसके अतिरिक्त कर्मयोग के अन्तर्गत राग, मोह और द्वेष को समाप्त करने पर बल देकर सामाजिक संघर्षों को कम से कम करके एक कल्याणकारी सामाजिक व्यवस्था को प्रोत्साहन देना है। इसी के फलस्वरूप भारतीय समाज एक कर्मप्रधान और कल्याणकारी समाज बन सकेगा।

इसी सिद्धान्त ने यह विश्वास दिलाया कि व्यक्ति को अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति दुष्कर्मों को छोड़कर पुण्य कर्म करे। पुण्य कर्म में ही वह शक्ति है जो व्यक्ति के प्रारब्ध को बदल सकती है तथा आगामी जीवन में उसे सफलता प्रदान कर सकती है। यह विश्वास वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन के लिए परमकल्याणकारी है। पुनः सामाजिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण बात यह भी है कि इसी कर्मसिद्धान्त की धारणा के आधार पर प्रत्येक व्यक्ति दूसरे जन्म में अधिक अच्छे कुल, स्थिति व सुख को प्राप्त करने की अभिलाषा में इस जन्म में समाज द्वारा मान्य समस्त सत्कर्मों व कर्त्तव्यों को करने का प्रयत्न करता है। उसका यह प्रयत्न सामाजिक संगठन व सुव्यवस्था के लिए वरदान बन जाता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि व्यक्ति समस्त कर्त्तव्यों का पालन करके अपने जीवन को सफल बना सकेंगे तथा कुशल एवं योग्य नागरिक बनकर राष्ट्र के विकास में सहयोग कर सकेंगे, क्योंकि भारतीय दार्शनिकचेतना सदा लोकमंगल के लिए सचेष्ट रही है।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः''

संदर्भसूची

- भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, रवीन्द्र नाथ मुखर्जी विवेक, प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण–1992।
- भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, डॉ0 गोपाल कृष्ण अग्रवाल, आगरा बुक स्टोर, आगरा, 1992।
- भारतीय दर्शन, डॉ0 राधाकृष्णन्।
- भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय।

रस एवं संगीत

डॉ. ममता सान्याल
एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत–गायनविभाग

भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भारतीयता का सबसे अधिक प्रबल प्रमाण रस सिद्धान्त है। वैसे रस प्रत्येक भाषा में किसी न किसी रूप में आता है। सहस्रों वर्षों के इतिहास की परम्परा के पश्चात् कला, सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणा बनी है। रस उसी का सार तत्त्व है। कुछ विद्वानों ने रस को भाव कहा है, किन्तु रस और भाव में अन्तर है। कुछ अन्य विद्वानों ने सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic Experience) रसानुभूति (Artistic Experience) कहकर रस की व्याख्या की है। भारतीय शास्त्र और जीवन में रस शब्द का कई अर्थों में प्रयोग होता है। सार मधुर होना चाहिए, माधुर्य और आनन्दप्रधान स्वर ही रस हो सकता है। वेदों में मधु, दुग्ध, सोम, जल आदि के लिए रस शब्द का प्रयोग किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद् में स्वयं ब्रह्मा को ही रस रूप कहा गया है। साहित्य के क्षेत्रों में भी काव्य के आस्वादन से ब्रह्मा आनन्दानुभूति को ही रस कहते हैं। उसी प्रकार संगीत के क्षेत्र में भी स्थायी स्वर उसके संवादी स्वर द्वारा उद्दीप्त, अनुवादी स्वरों द्वारा अनुभावित और संचारी स्वरों द्वारा परिपोषित सहृदयों की चेतना विशष को रस कहा जाता है।

आनन्ददायक सार ही रस का अर्थ है। सारी सृष्टि आनन्द से ही उद्भूत है। ब्रह्मा के आनन्द की अभिव्यक्ति ही रस है। उपनिषद् में कहा गया है–

आनन्दात् खल्विमानि भूतानि जायन्ते।

आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रददाति अभिसंविशन्ति।।

जहाँ आनन्द का अतिरेक होता है, वहाँ हमारा कोई स्वार्थ नहीं होता। जब आनन्द अतिरेक होता है तब हम गाते हैं, आनन्द की स्थिति में हम चित्र बनाते हैं, अतः रस का सम्बन्ध अवश्य ही आनन्द से जुड़ा हुआ है, यह सर्वमान्य है। रस का भाव आनन्द का भाव है। रस में अधिक अनुभूतिगम्यता है इसलिए रस के द्वारा भाव की तीव्रता मानी गई है। रस संगीत का प्राण है। रस न हो तो संगीत का आनन्द ही श्रोताओं को ना मिले। कलाकार और श्रोताओं में जो तादात्म्य स्थापित होता है उसका आधार ही रस है। वास्तव में रस अनुभवजन्य है, चाहे संगीत हो, चाहे काव्यरस, जिसे हम रस अथवा आनन्दात्मक अनुभव कहते हैं वह स्थायी भाव की विलक्षण अनुभूति है। सफल अनुभव वही करता है जो नायक अथवा पात्र विशेष से अपना पार्थक्य भूलकर उस नाटक के भाव को ही आत्मसात् कर लेता है। यह रसात्मक तादात्म्य उस सीमा तक पहुँच पाता है, कि दर्शक उसे वास्तविक नायक अथवा पात्र मानने लगते हैं। इस प्रतीति का अनुभव ही रस है। संगीत में यह और भी मुखर हो उठती है। रसात्मक एकता के कारण गायक इतने सहज एवं स्वाभाविक रूप में अपनी सामग्री प्रस्तुत करता है कि श्रोताओं को श्रेष्ठ रसानुभूति होने लगती है।

यह श्रेष्ठ कलाकार की कसौटी है। भरतमुनि ने काव्य तथा संगीत को नाट्यशास्त्र के अन्दर स्थान दिया है। ऋग्वेद में जो ऋचाएं और छन्द मिलते हैं, वे सामवेद तक आकर गीतों में परिवर्तित हो जाते हैं, उनकी ध्वन्यात्मकता ने ही संगीत का रूप धारण कर लिया है। भामह, रुद्रट, उद्भट ने भी संगीत की प्राचीनता वेदों से मानी है। संगीत की रसात्मक अभिव्यक्ति सूक्ष्मतम होती है। किसी भी कला का उपादान जितना सूक्ष्म है, अभिव्यक्ति वैसी सूक्ष्म होगी। चित्रकला की तूलिका रंग जैसे उपादानों द्वारा, रेखाओं, रंगों की मौन अभिव्यक्ति, सूक्ष्म भावों को मुखरित नहीं होने देती। स्वर जैसा सूक्ष्म उपादान भावों की गहराई, रहस्य को जैसा व्यक्त कर सकता है, अन्य उपादानों के लिए सम्भव नहीं है। यह रस की गहराई में जाता है, अतः भावों की सूक्ष्मतम अभिव्यक्ति संगीत द्वारा ही संभव है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने संगीत रस पर अपने विचार व्यक्त किए हैं, रस को "ब्रह्मानन्द सहोदर" कहा गया है। बह्म का स्वरूप ही आनन्दमय है, अतः रस भी आनन्दमय होना चाहिए। सभी ललित कलाएँ ब्रह्म की अभिव्यक्ति और प्राप्ति का साधन है और सभी विधाओं का सार तत्त्व ब्रम्ह प्राप्ति ही है, चाहे मार्ग कोई भी हो। रस में अधिक अनुभूतिगम्यता है, इसलिए रस के द्वारा भाव की तीव्रता अधिक मानी गई है। किसी भी कला का लक्ष्य तभी पूरा होता है, जब ज्ञाता और ज्ञेय, विषय और विषयी अनुभूति के समय में तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि रस काव्य एवं संगीत तथा अन्य सभी ललित कलाओं का प्राण है। रस के बिना जीवन्तता नहीं होती। रस की अनिवार्यता अनुभवजन्य है। रस की अवस्था तन्मयता की अवस्था है, जिसमें आश्रय अनिवर्चनीय सुख का अनुभव करता है। रस की इस अवस्था में विचार इधर–उधर नहीं बिखरने पाते, बल्कि मुक्ता की तरह घटनाएँ एक के बाद एक पिरोते जाते हैं। रस हो तो संगीत में भाव विह्वलता की स्थिति आ जाती है। वास्तव में संगीत का प्राण ही तो रस है, रस न हो तो संगीत का आनन्द ही श्रोताओं को नहीं मिलेगा। कलाकार और श्रोताओं में जो तादात्म्य स्थापित होता है उसका आधार ही रस है। रस में तन्मय श्रोता और कलाकार एकाकार होकर एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ उनका पृथक् अस्तित्वबोध समाप्त हो जाता है।

साहित्य की उपयोगिता संगीत –सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में

रुचि मिश्रा
अंशकालिक प्रवक्ता संगीत–गायनविभाग

हमारे उत्तर भारतीय शास्त्रीयसंगीत में ओम् शब्द को ही नादोत्पत्ति का आधार माना गया है। सरस बह्म की रसवतता ही संगीत है, संगीत ईश्वरी वरदान है अतः वह ब्रह्म रूप ही है। परबह्म नाद से ही श्रुति–स्वर तत्पश्चात् राग के स्वरूप का निर्धारण हुआ है। संगीत और साहित्य दोनों ही कलाओं का माध्यम नाद है। नाद का सम्बन्ध हृदय से है, जिसमें सहजता है जिसका प्रभाव प्राणी मात्र ही नहीं बल्कि वनस्पतियों पर भी देखा जा सकता है। नाद से ही स्वर और शब्द बनते हैं। शब्दों से भाषा और भाषा से सारे संसार का व्यवहार होता है। शास्त्र के अनुसार ब्रह्म अद्वितीय अखण्ड अद्वैत होते हुए भी परब्रह्म अन्य दो रूपों में कल्पित होता है, शब्द को जान लेने से ही परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है–

शब्दब्रह्माणि निष्णातः परंब्रह्माधिगच्छतिः।

साहित्य की उपयोगिता को ध्यान में रखकर ही हमारे राग संगीत में भी बंदिश की अवधारणा की गई है क्योंकि शब्द के माध्यम से हम किसी भी विचार को रेखांकित कर सकते हैं, समझा सकते हैं। हमारी परम्परा में संगीत और साहित्य दोनों कलाएँ ललित कलाओं के अन्तर्गत आती हैं। भौतिक रूप से देखने पर हमें इनका स्वतन्त्र अस्तित्व दिखाई देता है परन्तु ये कलाएँ सूक्ष्म रूप से एक–दूसरे से सम्बद्ध तथा एक–दूसरे की पूरक हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि साहित्य के दो पक्ष सर्वमान्य हैं गद्य और पद्य। गद्य का प्रयोग साहित्य के कहानी और लेख पक्ष में किया जाता है और पद्य का तात्पर्य गेय कविता से होता है अर्थात् जिसे हम साधारण बोल–चाल की भाषा में काव्य कहते हैं, वह साहित्य का पद्य पक्ष है, और जबकि हम संगीत और साहित्य के सम्बन्ध की चर्चा कर रहे हैं तो स्वाभाविक रूप से पद्य साहित्य का ही प्रयोग संगीत के लिये किया जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से संगीत और पद्य अर्थात् संगीत और काव्य का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। संगीतरचना के प्रमुख अवयवों में जहाँ नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, तान, वर्ण, अलंकार, गमक, राग, ताल, मात्रा, लय इत्यादि प्रमुख हैं वहीं काव्य के प्रमुख तत्त्वों में भाषातत्त्व, कल्पनातत्त्व, बुद्धितत्त्व, शैली तत्त्व आदि प्रमुख हैं।

काव्य/साहित्य शब्दप्रधान है, उसके पास भाव व्यक्त करने के लिये शब्द हैं, जिनसे प्रत्येक प्रकार के भाव व्यक्त किये जा सकते हैं। यदि ध्यान से देखा जाये तो पता चलता है कि शब्द प्रकट करने के लिये स्वर का आश्रय लेना ही होगा। स्वर का आश्रय नाद ही है, बिना नाद या स्वर के शब्दों को उच्चारित ही नहीं किया जा सकता अर्थात् साहित्य को स्वर का सहारा तो लेना ही होगा। भाषा बुद्धि का विषय है।

इसमें कृत्रिम विकास होता है। यदि प्रयोग करने वाले को भाषा का ज्ञान नहीं है तो उसका प्रभाव नगण्य होता है।

प्रसिद्ध ग्रंथ नाट्यशास्त्र के लेखक भरतमुनि ने तो स्वर और शब्द को ताल और छन्द कहा है। दो अक्षरों के मध्य कुछ समयान्तराल होता है, जो लय का काम करता है। यही स्वर और लय संगीत के भाव को प्रकट करने के माध्यम हैं। स्पष्ट है कि स्वर और लय के बिना संगीत नहीं हो सकता। संगीत की अभिव्यक्ति के लिय एक कविता या पद्य जिसको हम सांगीतिक भाषा में रचना कहते हैं, आवश्यक अंग होते हैं। जब हम किसी रचना या गेय काव्य को लय, ताल, स्वर में निबद्ध करके गाते–बजाते हैं तो उसी को सांगीतिक भाषा में बंदिश कहते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि सांगीतिक बंदिश या साहित्य (रचना, पद्य) एक–दूसरे से सम्बन्धित हैं।

प्रारम्भ से ही शास्त्रीय संगीत में काव्य पक्ष का प्रमुख स्थान रहा है। जैसा कि बंदिश की परिभाषा है– शब्दों का वह ढाँचा या फ्रेमवर्क जिसमें कलाकारों की कल्पना हो, जो स्वर, ताल से बँधी हो, उसे ही संगीत में बंदिश कहा गया है।

सर्वप्रथम वेदों में, छन्दों, उपनिषद् में और सामवेद के अन्य स्थलों पर सामवैदिक गीत रचनाओं के छः भाग मिलते हैं अर्थात् वहाँ पर भी पदसाहित्य की प्रधानता है। उसके बाद भरत के नाट्यशास्त्र में भी प्रचलित छः प्रकार के पदगीतों का वर्णन मिलता है। उसके बाद भरत द्वारा वर्णित ध्रुवों को पद या प्राचीन प्रबन्ध कहा जाने लगा। जिसमें पद के साथ–साथ ताल, यति, छन्द, रस और भाव का उचित प्रयोग होता था। भरत के बाद मतंगमुनि ने बृहद्देशी में विभिन्न गीतियों का वर्णन किया है, जिसकी शाब्दिक परिभाषा के अनुसार– पद और लय से युक्त वर्ण, अलंकार आदि से सुसज्जित तत्त्व गीतियाँ कहलाये। शारंगदेव ने भी इन गीतियों का वर्णन किया है। इन्होंने इसके अन्तर्गत निबद्धगान के एक प्रकार आक्षिप्तिका का उदाहरण दिया है, जिसका ताल, स्वर, पद से युक्त गायन होता था। वर्तमानकाल में प्रचलित सभी सांगीतिक रचनाओं की तुलना इस आक्षिप्तिका से की जा सकती है। मतंगकृत बृहद्देशी से ही प्रबन्ध का विकास हुआ, जो रचनात्मक प्रकार के थे और इन प्रबन्धों की तुलना आज के हिन्दुस्तानी संगीत की बंदिशों से की जा सकती है, जो कि पदाश्रित हैं।

पन्द्रहवीं शताब्दी के लगभग प्रबन्ध से ध्रुपद की उत्पत्ति हुई और इसमें ध्रुव और पद का समन्वय था, अर्थात् जिसमें पद एक निश्चित क्रम से निबद्ध हो। ध्रुपद के बाद धमार, फिर आधुनिक ख्याल सभी में साहित्य के पद्यपक्ष की प्रधानता रही है अर्थात् इन सभी शैलीयों का मूल ढाँचा गेय कविता ही रही है और इस गेय कविता को ही राग के नियमों के अन्तर्गत नयी–नयी आवृत्तियों का रूप दिया जाता रहा है। स्वर–लय–ताल के माध्यम से साहित्य का ये गेयरूप संगीत का एक अभिन्न अंग बन गया है।

साहित्य के इस पद के महत्त्व के साथ ही साहित्य के आठ–नौं रसों का भी संगीत से सम्बन्ध है, जिसको आचार्य भरत ने संचारी, व्यभिचारी भावों की परिभाषा से समझाया है। कोई भी गेय कविता का जब एक रसानुकूल प्रस्तुतीकरण होता है तो राग का सौन्दर्य खिल उठता है। इस प्रकार साहित्य की सहायता

से ही नव रसों का प्रयोग संगीत में होता है। रस के समान ही साहित्य के छंद और अलंकार का संगीत में विशेष प्रयोग होता है। छन्द के द्वारा संगीत को लय, गति प्रदान कर निश्चित मात्राओं में बाँधते हैं और अलंकारों के माध्यम से राग के स्वरों की विविध आवृत्तियों, सरगमों, अलंकारों, पल्टों, ताने, बोल–तानों इत्यादि के रूप में राग को सौन्दर्य प्रदान करते हैं। संगीत काव्य का सहजात गुण एवं अन्तरंग तत्त्व है। लय की थिरकन तो इसमें सर्वत्र द्रष्टव्य है। काव्य की उत्कृष्टता प्रभावशीलता एवं हृदयस्पर्शिता का मूलाधार संगीत ही है, इसमें संगीत का नैसर्गिक समावेश जहाँ प्रमाता को रसानुभूति कराता है, वहाँ अलौकिक आनन्द की अनुभूति भी कराता है।

जहाँ तक राग के व्याकरण का सम्बन्ध है तो सभी संगीतकारों ने राग के व्याकरण को भिन्न–भिन्न बंदिशों के माध्यम से शास्त्रोक्त रूप प्रदान किया है और इस प्रकार जहाँ पद की भूमिका बंदिश के माध्यम से संगीत का एक आवश्यक अंग होता है और यही पद बंदिशों के माध्यम से रागों का गायन समय इत्यादि को प्रदर्शित करता है।

पहले भी जब स्वरलिपि पद्धति नहीं थी तो इन गेय काव्य के माध्यम से ही रागों का ज्ञान कराया जाता था और उन रागों में भिन्न–भिन्न बंदिशों को शिष्यों को कण्ठस्थ कराया जाता था। जो कि परम्पराओं में आज भी सुरक्षित हैं। रागों के जो भी स्वरूप बदलते रहे हैं वह स्वर और लय में बँधे इन गेय काव्यों के माध्यम से ही आज हमारी पीढ़ी तक सुरक्षित रह सके हैं। मुख्य बात यह है कि संगीत में राग की अभिव्यक्ति के लिये कैसे गेय पद का चुनाव किया जाये। क्यों आज दो सौ वर्ष बाद भी सदारंग–अदारंग, मनरंग अदि के गेय पद प्रचार में हैं, क्योंकि राग के चुनाव के साथ–साथ इन्होंने अच्छे साहित्य के पदों को बंदिशों के लिये चुना।

संगीतलहरी की मधुर गूँज काव्य के लिये शृंगार ही नहीं वरन् उसके वैशिष्ट्य की भी द्योतक है संगीत और काव्य दोनों ही सूक्ष्म, रहस्यमय एवं सुकुमार हैं। इस प्रकार संगीत अर्थबोध के लिए काव्य का सहारा लेता है और काव्यप्रमाणवृद्धि के लिए संगीत का, दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। इस प्रकार भाव संप्रेषण एवं सुगम रूप से ग्राह्य होने के कारण साहित्य के पदपक्ष का स्थान संगीत में सौन्दर्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सितारवादन में रागसौन्दर्य

डॉ0 (श्रीमती) गीता सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, वाद्य–संगीतविभाग

आदिकाल से ही संगीत मनुष्य की संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम रहा है। संगीतमय नाद से संवेदित हो मनुष्य की इन्द्रियाँ विभिन्न रसों का रसास्वादन कर आनन्द की चरम सीमा को प्राप्त करती हैं। अतः अन्य ललित कलाओं की भाँति ही संगीत में भी रसनिष्पत्ति तथा उसका आस्वादन अवश्यम्भावी है। यह रस ही आनन्द की ओर ले जाने का निमित्त बनता है। संगीत में रसों का वह प्रस्फुटन राग द्वारा होता है। रागों में मानव मन को आह्लादित करने की क्षमता होती है। जैसा कि कहा भी गया है – ''रंजयति इति रागः'' अर्थात् जो रंजित कर सके, वही राग है। किन्तु इन रागों द्वारा रसनिष्पत्ति तभी सम्भव है, जब स्वरों का चयन एवं उनकी अभिव्यक्ति रागों की प्रकृति के अनुसार हो। यदि स्वरसमूहों में स्वरों का चयनक्रम या मात्रा असंतुलित हो, तो वह स्वरसमूह अरंजक बन जाता है। इसी कारण प्राचीन आचार्यों ने अपनी भावदृष्टि से स्वरों को श्रुतियों में विभाजित किया तथा उन श्रुतियों को जाँचने परखने के पश्चात् ही प्रत्येक श्रुति का भाव एवं रस निश्चित किया। इन श्रुतियों के आधार पर ही रागों में स्वरों का विभाजन किया गया। स्वरों के इस सन्तुलित विभाजन तथा विस्तार से प्रत्येक राग एक विशेष चरित्र के साथ एक पूर्ण व्यक्ति के रूप में विकसित हुआ। तथापि किसी भी राग के व्यक्तित्व को उसके पूर्ण सौन्दर्य के साथ निदर्शित करने हेतु कलाकार को राग के शास्त्रीय स्वरूप को ध्यान में रखकर कुशलता से गायन अथवा वादन करना होगा। तभी राग से वांछित रस की निष्पत्ति सम्भव है। अतः स्वरविस्तार के शास्त्रीय नियमों एवं विविध अलंकरणों की सूक्ष्म तकनीकों में प्रवीण कलाकार ही राग को मूर्त रूप प्रदान कर सकता है।

प्रस्तुत प्रपत्र में संगतवाद्य से एकलवाद्य के रूप में विकसित हुए अति प्रचलित वाद्य सितार में राग विशेष का वादनसौन्दर्य निदर्शित किया गया है। अन्य तंत्रीवाद्यों की अपेक्षा सितार का स्वर अधिक मधुर और सौन्दर्य से परिपूर्ण होता है। सितार के स्वरों में हारमोनिक्स के अतिरिक्त अधिक गूँज के लिए तरब के तारों का प्रयोग किया जाता है जो इस वाद्य को विभिन्न शैलियों के वादन का एक अतुलनीय माध्यम बनाते हैं। यही कारण है कि सितार पर किसी भी शैली का वादन उसके सौन्दर्य को द्विगुणित कर देता है तथा राग में जो सौन्दर्य विद्यमान है, वह सितार पर अवतरित हो मूर्त रूप धारण कर लेता है।

सितारवादन में मुख्यतया शान्त, करुण, शृंगार एवं अद्भुत रस उत्पन्न किए जा सकते हैं। आधुनिक समय में सितारवादन का प्रारंभ षड्ज के लगाव से होता है। इस लगाव के साथ ही राग प्रकट हो जाता है। तत्पश्चात् आलाप आरम्भ होता है जिसमें मन्द गति से राग के स्वरों का विस्तार होता है तथा राग में लगने वाले विभिन्न स्वर समूहों के माध्यम से राग का स्वरूप दर्शाया जाता है। वादन की यह आरम्भिक अवस्था भावप्रधान होती है तथा इसमें मुख्यतः शान्त रस की निष्पत्ति होती है। लय बढ़ने के साथ ही स्वरों में

उत्तेजना का आभास मिलने लगता है तथा अन्य रसों का प्रस्फुटन प्रारम्भ हो जाता है। प्रत्येक राग का एक मुख्य रस होता है। मुख्य रसों से सम्बन्धित रसों को ही वादन की विविध अवस्थाओं में दर्शाया जाता है। यह सभी रस सम्मिलित रूप से राग के सौन्दर्य को उद्घाटित करते हैं। परिणामस्वरूप श्रोता उस राग के सौन्दर्य की सरिता में नहाकर आनन्द से तन्मय हो जाता है।

अत्यन्त मधुर एवं गंभीर प्रकृति के राग मालकौंस के स्वरों का सितार पर अवतरण मध्यरात्रि की नीरवता में शान्त रस घोल देता है। औडव जाति का राग मालकौंस सितार पर सर्वप्रथम मन्द्र सप्तक के कोमल निषाद के साथ षड्ज– मध्यम संयोग से ही प्रकट हो जाता है। इसके पश्चात् राग की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आलाप के चार भागों में राग के स्वरों का विस्तार किया जाता है। आरोह में सा–म संवाद तथा अवरोह में सां नी ध म.....म स्वर समूह में दीर्घ धैवत के साथ मध्यम का वादन शान्त एवं करुण भाव प्रदर्शित करता है।

विलम्बित लय की मसीतखानी गतों में मन्द गति के स्वरान्दोलन, मींड एवं गमक द्वारा राग के चरित्र को मूर्त रूप दिया जाता है। द्रुत लय की तानों, रजाखानी गतों एवं झाले में कलाकार वीर तथा अद्भुत रसों की सृष्टि भी कर सकता है। यथा –

1. सा ~ नी़ सा ~, ग म ग सा ~, नी़ सा ध ~, नी़ सा म ~, ग म ध ~म ~, ग म ग ~, नी़ ग सा ~, नी़ सा ग म ध ~, नी ध म ~, ग म ~ ग म ध म ~, ग म ग ~ नी़ ग सा ~

2. नी़ सा ग म ध ~ म ध नी ध म ~, ग म ध नी सां सां नी ध म ~, ग म ध नी सां ~, सां नी ध म ~ ग म ध नी सां ~, सां नी ध म ~, ग म ध ~, म ग सा ~, नी़ गा सा ~

3. म ~ग ~ म ध नी सां ~, नी ~ ग सां ~ नी सां गं सां नी ध ~, म ध नी सां ~, नी ध म ध नी ध ~, ग म ध म ~, सा ग म ग ~, नी़ ग सां ~

4. सा ~ नी सा ग सा ~ नी ~ध़ ~, म़ ध़ नी ~ ध़ नी़ सा ~, ग सा नी सा ~, नी सा म ~ ग ~ ग म ध म ~, म ध नो ध ~, ध नी सां नी नी सां ग सां ~, सां नी ध म ~, ग ~ म गं ~, नी़ ग सा ~

मसीतखानी गत (विलम्बित लय)

तीनताल निबद्ध

स्थाई –

मम	ग सासा ग मम धनी	सां सां सां नीसां	नी धनी ध म	नी ग सा सा
दिर	दा दिर दा दिर दारा	दा दा रा दिर	दा दिर दर रा	दा रा दा रा
	3	×	2	0

मंझा –

मम	ग सासा नी सा	ध़ नी़ नी़ म ध़	ग मम नी ध	नी़ ग सा सा
दिर	दा दिर दारा	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दारा दा रा
	3	×	2	0

अंतरा –

मम	ग मम ध नी	सां सां सां सांसां	नी सांसां गं सां	ध नी ध म
दिर	दा दिर दा रा	दा दा रा दिर	दा दिर दा रा	दारा दा रा
	3	×	2	0

मम	गं सांसां नी सां	ध नी नी म ध	ग मम ध म	ग नी़ सा
दिर	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा दा रा
	3	×	2	0

तोड़े –

1. ध़– ध़ ध़ ध़ ध़ ध़ ध़ नी़ सा ग सा नी़ ग सा–
   म ग – ध़ म – नी ध़ – सां नी़ – गं सां – –
   नी़ सां, ध़ नी़ मं ध़, ग म, नी़ ग सा – मुखड़ा

2. सां नी ध – सां नी ध – सां नी ध म ग म ग सा

गमध, मधनी धनी सां– धनी सां–धनी गमध मधनी धनी

सा–धनीसा–धनी गमध, मधनी, धनी सा–धनीसा–धनी

सा – – – मुखड़ा

रजाखानी गत (द्रुत लय)

तीनतालबद्ध

स्थाई –

सा मम ग म	– सांसां नी सां	ध – ध नी	ध म ग सा
दा दिर दा रा	ऽ दिर दा रा	दा ऽ दा रा	दा रा दा रा
0	3	×	2

मंझा –

नी़ सासा ध़ नी़	सा –साम – म म	ग मम गग मम	ग – गनी़ – नी़सा
दा दिर दा रा	दाऽ रदा ऽर दा	दा दिर दिर दिर	दा ऽ रदा ऽर दा
0	3	×	2

अंतरा–

ग मम धध नीनी	सां–सांनी –नी सां	ध नीनी सांसां गंगं	सां–सांनी – नीध
दा दिर दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दा	दा दिर दिर दिर	दाऽ रदा ऽर दा
0	3	×	2

सां गग सां नी	ध नीनी ध म	ग मम ग म	– सांसां नी सां
दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	दा दिर दा रा	ऽ दिर दा रा
0	3	×	2

तोड़े –

1.	ग॒म ध॒म ग॒म ध॒म ×	ग॒म ध॒म ग॒म ग॒सा 2	मुखड़ा
2.	नी॒सा ग॒सा साग॒ मग॒ ×	ग॒म ध॒म मध॒ नीध॒ 2	मुखड़ा
3.	सांनी॒ ध॒सां नीध॒, सांनी॒	ध॒नी॒ ध॒म ग॒म ग॒सां	
4.	ध॒ध॒ ध॒नी॒ नी॒नी॒ सासा ×	सग॒ गग॒ मम ध॒– 2	मुखड़ा

झाला–

ग॒ ग॒ ग॒ ग॒	म म म म	ध॒ ध॒ ध॒ ध॒	नी॒ नी॒ नी॒ नी॒
सां ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠
ध॒ ∠ ∠ ∠	नी॒ ∠ ∠ ∠	ध॒ ∠ ∠ ∠	म ∠ ∠ ∠
ग॒ ∠ ∠ ∠	म ∠ ∠ ∠	ग॒ ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠
नी॒ ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠	ध॒ ∠ ∠ ∠	नी॒ ∠ ∠ ∠
सा ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠
नी॒ ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠	म ∠ ∠ ∠	म ∠ ∠ ∠
ग॒ ∠ ∠ ∠	म ∠ ∠ ∠	ग॒ ∠ ∠ ∠	सा ∠ ∠ ∠

ग़ ∠ ∠ म	∠ ∠ ध़ ∠	∠ नी़ ∠ ∠	ध़ ∠ म ∠
ग ∠ ∠ म	∠ ∠ ध ∠	∠ नी ∠ ∠	ध ∠ नी ∠
सां ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠	गं़ ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠
नी़ ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠	गं ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠
नी ∠ ∠ ∠	गं ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠	सां ∠ ∠ ∠
सां गं़ सां गं़	नी़ सां नी़ सां	ध़ नी़ ध़ नी़	म ध़ म ध़
ग़ म ग़ म	सा ग़ सा ग़	नी़ – ग़ –	सा – ∠ –
ग़ – म –	– ध़ – नी	सां – ∠ –	ग़ – म –
– ध़ नी़ –	सां – ∠ –	ग़ – म –	– ध़ – नी़

सां .....

उपर्युक्त स्वरलिपियाँ सितार पर राग मालकौंस के अवतरण की एक झलक मात्र हैं। सितार पर किसी भी राग के वादनसौन्दर्य की सूक्ष्मताओं का लेखन स्वरलिपियों के सामर्थ्य से परे है। राग के स्वरूप को साकार करना एवं वादन द्वारा उसकी प्रकृति के अनुसार रसनिष्पत्ति एक ऐसी कला है जो कलाकार की भावक्षमता व साधना के स्तर पर निर्भर करती है। यदि कलाकार भावना और संस्कारों से रिक्त है तो वह राग के चरित्र तथा उसके सौन्दर्य को नहीं संमझ पाएगा, परिणामस्वरूप उसके वादन में उस स्थिरता का अभाव होगा जो राग के सौन्दर्य को आकार देती है। अतः सितार जैसे अति कठिन वाद्य के लिए कठोर साधना एवं संस्कार दोनों ही अनिवार्य है।

आधार–ग्रन्थ

1. मिश्रा, डॉ0 लाल मणि, तंत्री नाद (सन् 1979), साहित्य रत्नालय, कानपुर।
2. ठाकुर, पं0 ओम्कारनाथ, संगीतांजली, (तृतीय भाग) 1955, अमलकुमार वसु, इंडियन प्रेस, बनारस ब्रॉंच।
3. गर्ग लक्ष्मी नारायण, संगीत (मासिक पत्रिका 1986) संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. शर्मा, डॉ0 वंदना, सितार का सौन्दर्यात्मक मूल्यांकन (2005), रोशन आप्सेट प्रिन्टर्स, दिल्ली।

लोकसंगीत

डॉ0 अनामिका दीक्षित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत–वाद्यविभाग

संस्कृति और सभ्यता शब्दों का प्रयोग प्रायः बहु अर्थों में प्रयोग किया जाता है इन शब्दों का चयन प्रायः उन तथ्यों पर किया जाता है जिनमें उनकी विशेष रुचि रहती है संस्कृति को विशेषकर सामाजिक परम्परा के नाम से जाना जाता है उनके अनुसार वे सब चीजें जो मनुष्य के पास है वह सब जो कहते हैं और वो जो सोचते हैं वह है संस्कृति। संस्कृति शब्द कृ धातु सम् उपसर्ग और क्तिन् प्रत्यय लगाने से बनता है। भारतीय संस्कृति की गणना विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में होती है भारतीय संस्कृतियों में साधना के अनेक मार्ग बताये गये हैं जैसे ज्ञान शक्ति कर्म कला आदि अपनी–अपनी अभिरुचि के अनुसार व्यक्ति अपनी अध्यात्म साधना करता है और संगीतकला को तो ईश्वरोपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है मन की एकाग्रता का सरलतम तरीका है परमात्मा के नाम का स्मरण करना। ओम ओंकार अक्षर बिन्दु है परमात्मा ही अक्षर है जो संम्पूर्ण वाक् का प्रतीक है। जो अ से वाणी प्रारम्भ होती है और म पर समाप्त होती है। ओंकार के निरन्तर उच्चारण से ध्वनि मानों हमारे शरीर की आत्मा रूपी दीवार से टकराकर प्रति ध्वनि उत्पन्न करती है तो अनहदनाद उत्पन्न होता है। इसी नाद से देवता की स्तुति की जाती है तो वह प्रणव कहलाता है। परन्तु आधुनिक युग में **सर्वे गुणाः कान्चनमाश्रयन्ते'** अर्थात् सारे गुण कांचन स्वर्ण धन में ही आश्रित होते हैं, यह व्यंग्योक्ति अक्षरशः सत्य चरितार्थ होती है क्योंकि भौतिक उपलब्धियों की आपाधापी के इस युग में, अर्थप्रधान संस्कृति के दौर में अधिकाधिक धन प्राप्ति के लोभ में मनुष्य धन के चक्कर में फंसता जा रहा है। मानव जीवन में धन का महत्त्वपूर्ण स्थान था और हमेशा रहेगा।

भारतीय संगीत का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है इसका समारम्भ वैदिक काल से ही माना जाता रहा है जितनी प्राचीन हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति है उतना ही विस्तृत एवं विशाल यहां के संगीत का अतीत है। जो सभ्यता और संस्कृति में सम्पूर्ण विश्व में अग्रणी रहा है जो अपने चमत्कारपूर्ण बौद्विक कौशल से सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत करता रहा है जितनी गौरवमयी यहाँ की सभ्यता और संस्कृति रही है उतना ही महान् यहाँ का संगीत भी है। संगीत की उत्पत्ति मानव मन में आने वाले विभिन्न भावों से हुई है संगीत मानव की एक आवश्यकता है प्रसिद्ध लेखक एवं साहित्यकार रामवृक्ष बेनीपुरी जी ने अपने लेख गेहूँ और गुलाब में लिखा है जब तन की भूख शान्त हो गई तो मन की भूख लगी इसी मन की भूख से ललित कलायें जन्मी और ललित कलाओं में सर्वोपरि है संगीत।

अत्यन्त प्रसन्नता के क्षणों में हमारे हाथ पैर स्वयं नर्तन करने लगते हैं। लोक संगीत साधारण जनता का स्वाभाविक संगीत है यह उसी जाति या समाज की विशेष कृति होती है जो इसे जन्म देती है यह उसकी जातिगत अथवा समाजगत विशिष्टताओं का प्राकृतिक प्रकटीकरण है जनमानस में प्रचलित परम्परा

को ही लोकसंगीत का नाम दिया गया है संगीत तो मानव जीवन के जन्म से ही जुडा होता है बच्चे के जन्म लेते ही सोहर आदि मंगल गीतों को गाने की परम्परा हमारी संस्कृति का द्योतक है

लोक संगीत में आनन्द उत्साह तथा रस निष्पत्ति में लोक वाद्यों का विशेष महत्त्व रहा है जैसे. ढोलक, खजरी, झांझ, मजीरे इत्यादि लयकारी जो समा बाँध देते हैं उसमें जनमानस पूरी तरह डूब जाता है लोक वाद्यों में रसोत्पत्ति की क्षमता परिमाण में विद्यमान रहती है अपने आप ही बरबस विवश होकर नृत्य करने को आतुर मन रोक नहीं पाता लोकसंगीत की धुनों ने प्रबुद्ध शास्त्रीय गायक, वादक के मन को भी झंकृत कर दिया है इसलिये गायक वादक कार्यक्रम के अन्त मे चैती, कजरी, भटियाली, डोगरी, पहाड़ी, हीर इत्यादि पर आधारित धुनों का प्रदर्शन करते हैं। वाद्यवृन्द में भी लोकगीतों और लोकसंगीत का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

शास्त्रीय संगीत में कुछ रागों का सृजन तो लोक धुनों के आधार पर ही हुआ है, जैसे पहाड़ी, काफी, जंगला भैरवी, सिन्धु भैरवी, बरवा, पीलू, गारा इत्यादि बहुधा इन रागों में ठुमरी दादरा ही प्रस्तुत किया जाता है। जन साधारण द्वारा अपने मनोरंजन के लिये किसी कला का बिना किन्हीं विशेष नियमों का ध्यान रख उसे स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रूप का प्रयोग किया जाता है तो उस कला को लोककला की संज्ञा प्रदान कर दी जाती है निरन्तर विकास के फलस्वरूप जब उसमें कुछ शास्त्रोक्त परिवर्तन किये जाते हैं तब उनका शास्त्रीय रूप भी सामने आ जाता है संगीत कला का जो रूप आदि मानव द्वारा प्रयोग में लाया गया वह उसका सहज रूप था जो कालान्तर में लोक संगीत के नाम से जाना जाने लगा।

प्राकृतिक संगीत ही लोकगीतों की परिभाषा है जब मानव पूर्ण रूप से परिष्कृत नहीं था उस समय वह अपने उद्‌गारों को प्रकट करने के लिये वाणी द्वारा कुछ अस्पष्ट शब्दों को उच्चारण करता था उस समय वही वाणी उसकी कविता और वही अस्पष्ट शब्द अथवा ध्वनियुक्त स्फुरण उसका संगीत होता था। लोक संगीत का विकास मानव के प्रारम्भिक विकास के साथ ही हो गया था इसलिये इस संगीत का इतिहास उतना ही पुरातन है जितना कि मानव का। लोक संगीत की रचना लोक तथा संगीत इन दो शब्दों के संयोग से हुई है संगीत का व्यवहार अपने वास्तविक एवं बहुव्यवहारित अर्थ में प्रयुक्त हुआ है किन्तु लोक शब्द पर चिन्तन करना आवश्यक है क्योंकि लोक शब्द से इसे केवल ग्रामीण अंचल में गाये जाने वाला संगीत समझते हैं परन्तु लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो सभी अभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता पाण्डित्य की चेतना और पाण्डित्य के अहंकार से शून्य है जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।

निःसन्देह लोकसंगीत मूलरूप से आडम्बर रहित होने के कारण कृत्रिम वाद्यों की अपेक्षा नहीं करता वरन् परिस्थिति विशेष में उपलब्ध साधनों द्वारा ही स्वतः उत्पन्न रूप से लय तथा ताल आदि का निर्वाह कर लेता है। धोबी अपने कपड़े की फट–फट की आवाज में अपने गीत के लिये लय बना लेता है। गाड़ी हांकने वाला बैलों, घंटियाँ और घोडों की टाप की आवाज से ही अपने गान को लयबद्ध कर लेता है। इसी पर संगीत निर्देशक ओ0 पी0 नैयर साहब जी का संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ है। ये ही सात स्वरों की सत्ता को सभी ने किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है। संगीत मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक जुड़ा रहता है। भारत अनेकता में एकता की एक अनूठी मिसाल है। यह एक ऐसा गणतंत्र देश है, जहाँ जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति की अनेक विविधताएँ हैं।

भारतीय संगीत–आधार एवम् उपचार

श्रीमती डिम्पल राय
तबला संगतकार, संगीतविभाग

सार शब्द सब शब्द में सर्व वर्ण मह वास।
स्वर व्यंजन मिश्रित रहे, सर्व आधार निवास।। (स्वर्वेद)

शब्द ही ब्रह्म है और जगत् के सारे ज्ञानविज्ञान, कलाकौशल, वर्ण अक्षर वहीं से उत्पन्न हैं। वेद ग्रन्थों में चौदह प्रकार की विद्या एवं चौसठ प्रकार की कलाओं का वर्णन है। इन 64 कलाओं में तीन कलाओं को श्रेष्ठ माना जाता है।

(क) गीत (ख) वाद्य (ग) नृत्य

इन्हीं तीनों कलाओं के समावेश को संगीत कहते हैं। दूसरे शब्दों में गीत, वाद्य एवं नृत्य के द्वारा ताल और लयबद्ध भावनाओं की अभिव्यक्ति को संगीत कहते हैं।

संगीत की उत्पत्ति :

समस्त सृष्टि की उत्पत्ति का कारण कम्प है, अक्षर ब्रह्म में कम्प के कारण ही परमाणुओं में योग–वियोग की क्रिया आरम्भ होती है। फलस्वरूप समस्त सृष्टि गतिशील हो जाती है।

अक्षर माही कम्प है, माया योग विकास।
सृष्टि का प्रादुर्भाव है, अक्षर जग परकास।। (स्वर्वेद)

कम्प ही सृष्टि का कारण है, जिसका श्रोत शब्द ब्रह्म है। संगीत की उत्पत्ति 'नाद' से मानी जाती है और नाद की उत्पत्ति का कारण कम्प है। संगीत की भाषा में एक ऐसी ध्वनि जिसका उपयोग संगीत में किया जा सके अथवा संगीतोपयोगी ध्वनि को नाद कहते हैं। लेकिन नियमित कम्पन से उत्पन्न ऐसी ध्वनि जो एक निश्चित आवृत्ति में हो और सुनने में मधुर व कर्णप्रिय हो एवं हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली हो अथवा जिसका उपयोग संगीत में किया जाय उसे स्वर कहते हैं।

संगीत में सात प्रकार के स्वरों का उपयोग किया जाता है जो इस प्रकार है– सा रे ग म प ध और नि इन्हीं सात स्वरों को सरगम कहते हैं।

संगीत का इतिहास :

वैसे तो संगीत का प्रचलन वैदिक काल से ही माना जाता है। सर्वप्रथम ऋग्वेद में तीन प्रकार के ही स्वरों का उपयोग किया जाता था जो क्रमशः ग, रे और सा था। इन्हीं स्वरों का उपयोग मंत्रोच्चार में

किया जाता था, जिसको उदात्त, अनुदात्त और स्वरित कहते हैं। बाद में सामवेद के अन्दर सात प्रकार के स्वरों की व्याख्या पाई गई। इन स्वरों का प्रयोग ईश्वर की अराधना, पूजा, उपासाना एवं वेद मंत्रों का उच्चारण और गायन में किया जाने लगा, जिसे सामगान भी कहते थे। वैसे तो सामगान का प्रयोग देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर व मानव सभी लोग पूजा–उपासना व मंत्रोच्चार के लिए करते थे, लेकिन गन्धर्व जाति के लोग इस विद्या में विशेष पारंगत थे। इसलिए संगीतविद्या को गन्धर्वविद्या भी कहते हैं।

संगीत के सात स्वर :

संगीत में सात प्रकार के ही स्वर होते हैं और इन्हीं सात स्वरों में संसार के समस्त राग–रागिनी धुन व गीत निहित हैं। प्रत्येक स्वर का पूर्ण रूप और उसके अर्थ हैं। संगीत के सातों स्वर का सम्बन्ध शरीरस्थ सात चक्रों से है। प्रत्येक स्वर के अलग–अलग देवता भी माने जाते हैं। संगीत के सातों स्वरों को प्रकृति में रहने वाले अलग–अलग जानवरों से भी जोड़ा जाता है। इन तथ्यों को निम्न तालिका के माध्यम से समझते हैं –

स्वर	पर्ण रूप	अर्थ	प्रजाति	चक्र	देवता
सा	षड्ज	छः के जन्मदाता	मोर	मूलाधार	अग्नि
रे	ऋषभ	साँड	साँड	स्वाधिष्ठान	ब्रह्मा
ग	गन्धार	आकाश	बकरी	मणिपूरक	सरस्वती
म	मध्यम	मध्य	कपोत	अनाहत	शिव
प	पंचम	पाँच	कोयल	विशुद्ध	विष्णु
ध	धैवत	पृथ्वी	अश्व	आज्ञा	गणेश
नि	निषाद	शिकारी	हाथी	सहस्रार	सूर्य

संगीत के यह सात स्वर तीन प्रकार के होते हैं–

(1) शुद्ध स्वर (2) तीव्र स्वर (3) कोमल स्वर

'शुद्ध स्वर' और 'तीव्र स्वर' चक्रों के दायाँ पक्ष से होती हुई पिंगला नाड़ी से सम्बन्धित होती है और 'कोमल स्वर' चक्रों के बायाँ पक्ष से होती हुई इंगला नाड़ी से सम्बन्धित हैं।

राग :

कम से कम पाँच स्वरों का ऐसा समूह जो आरोही एवं अवरोही क्रम में एक शास्त्रीय नियम के अनुसार, ताल व लयबद्ध हो, राग कहलाता है। प्रत्येक राग के नियम, स्वर, स्वभाव, जाति, ताल, लय, यहाँ

तक कि गायन का समय भी अलग–अलग होता है। आधुनिक काल में तो रागों की संख्या अत्यधिक है, लेकिन शिव मत के अनुसार छः प्रकार के राग एवं प्रत्येक राग के छः रागिनियाँ यानी 36 रागिनियाँ होती हैं, जो इस प्रकार हैं –

<u>राग–रागिनियाँ–</u>

1. श्रीराग – मालवी, त्रिवेणी, गौरी, केदार, मधुमाधवी, पहाड़िका।
2. बसंत राग – देशी, देवगिरी, वराटी, तोड़ी, ललिता, हिन्दोली।
3. पंचम राग – विभाषा, भोपाली, कर्णाटी, बड़हंसिका, मालती, षटमंजरी।
4. मेघ राग – मल्लारी, सोरठी, साबेरी, कौशिकी, गांधारी, हर, श्रृंगारा।
5. भैरव राग – भैरवी, गुर्जरी, रागकिरी, गुणकिरी, बंगाली, सैंधवी।
6. नटनारायण राग – कल्याणी, सारंगी और नट–हंनीरा, सारंगी, कामोदी, आभीरी, नाटिका, कल्याण।

स्वरों का प्रभाव : सात स्वरों का चक्रों पर प्रभाव :

चक्र इस दृश्य शरीर का अदृश्य आधार होता है। जब तक साधक चक्रों का शोधन नहीं करता तब तक आंतरिक शक्तियाँ सक्रिय नहीं होती हैं। चक्र ही शरीर के आंतरिक ऊर्जा का स्रोत है। संगीत के सातस्वरों का सम्बन्ध सात चक्रों से होता है। इन स्वरों के कम्पन से उत्पन्न तरंगें प्रत्येक चक्रों को प्रभावित करती हैं। चक्रों का सम्बन्ध शरीर के अंतस्रावी ग्रन्थियों से होता है, जो शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों को विकसित करने तथा सभी प्रकार के संवेदनाओं को महसूस करने की क्षमता प्रदान करता है।

संगीत के स्वरों का नाड़ियों पर प्रभाव :

माना जाता है कि शरीर में 72000 सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं और प्रत्येक नाड़ी एक विशेष लय में गतिशील है। यदि इसमें अवरोध उत्पन्न होता है तो शरीर में व्याधि उत्पन्न हो जाती है। शरीर में विकार का मुख्य कारण नाड़ीदोष ही है। जिस प्रकार संगीत में स्वरों का लय बिगड़ने से किसी राग में दोष उत्पन्न हो जाता है, ठीक उसी प्रकार शरीर में नाड़ियों का लयबद्ध होना अति आवश्यक है। संगीत के स्वर का प्रभाव इसकी गतिशीलता को बनाये रखने में मदद करती है। शरीर में व्याधि उत्पन्न करने में त्रिदोष की बहुत अहम भूमिका है, जिसे कफ, पित्त और वात कहते हैं। दिन के 24 घंटे में आठ प्रहर होते हैं, पर इन आठों प्रहर में कफ, पित्त और वात का प्रभाव अलग–अलग पड़ता है। आठों प्रहर के अलग–अलग राग और स्वर प्रयोग होते हैं, जो इन त्रयदोषों का समन्वय शरीर में बनाये रखते हैं।

संगीत के स्वरों का मस्तिष्क पर प्रभाव :

शरीर के अंग व अवयव भी ऊर्जा व वायु के माध्यम से ही गठित ध्वनि को जन्म देते हैं। यह अवयव तीन प्रकार के हैं –

1. ध्वनि को गति देने वाले अवयव – फेफड़े, पसलियाँ, डायफ्राम, वायु (श्वास)।

2. स्वर यंत्र के स्नायु समूह – क्रीकाथायराइड मांसपेशी, थाईराएरीटेनाइड मांसपेशी, क्रीकोएरीटेनाइड मांसपेशी, एरीटेनाईड मांसपेशी।

3. गूँज पैदा करने वाले अवयव – मुख्य, नासा, विवर, खोपड़ी में स्थित खोखले भाग, फैरिग्स आदि।

यह मुख्य अवयव ध्वनि को निर्माण से अर्थपूर्ण स्वर तक ले जाने में सहयोग करते हैं। मस्तिष्क में उपस्थित सभी कोशिकाएं, तंत्रिकाएं एवं नाड़ियाँ शरीर में होने वाले आन्तरिक व बाह्य बदलाव का ही निर्वातन करती हैं। आज समाज का एक बड़ा हिस्सा अवसाद और तनाव से ग्रसित हो रहा है, जिसका मुख्य कारण स्वार्थ, नकारात्मक सोच अथवा निराशावादी विचार ही हो सकता है। संगीत के सुरीले स्वरों के प्रभाव से मस्तिष्क की अल्प तरंगों में वृद्धि होती है, सोच व स्वभाव में परिवर्तन हो जाता है। जीवन में सुख और आनन्द का अनुभव तत्क्षण ही हो जाता है। स्वरों द्वारा उत्पन्न तरंगें मस्तिष्क की नकारात्मक तरंगों की दिशा और दशा ही बदल देती हैं।

स्वरों का प्रकृति पर प्रभाव :

संगीत के सातों स्वरों का प्रकृति से गहरा सम्बन्ध है। प्रकृति के अनुकूल स्वरों का प्रयोग वातावरण को काफी हद तक प्रभावित करता है। कई प्रकार के शोध में यह प्रमाणित किया है कि अगर एक पुष्प वाटिका में संगीत के सुरीले स्वर का अभ्यास प्रतिदिन किया जाय तो उस वाटिका के पुष्प अपेक्षाकृत सुन्दर और सुगन्धित होते हैं और यही प्रयोग फसलों में भी कारगर हो सकते हैं।

वर्लिन विश्वविद्यालय के शोध ने यह प्रमाणित किया है कि विगुल, शहनाई के स्वरों से उत्पन्न तरंगें आस–पास के बैक्टिरिया को नष्ट करता है। मन्दिर के घण्टे की ध्वनि, शंखनाद से उत्पन्न तरंगे आस–पास के कीटाणुओं और बैक्टिरिया को पनपने नहीं देते हैं।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के अलग–अलग रागों के स्वर वातावरण को ही नहीं अपितु इससे उत्पन्न तरंगें, ब्रह्माण्ड के अनेक ग्रह, नक्षत्रों को प्रभावित कर अनुकूल परिणाम देने में सक्षम हैं।

निष्कर्ष –

वस्तुतः संगीत के सात स्वर केवल स्वर नहीं हैं बल्कि सात मंत्र अथवा प्रयाग हैं। प्रभाव स्वर व्यंजन और अक्षरों का नहीं होता है किन्तु उससे उत्पन्न तरंगें अपने मण्डल में पहुँचकर अपना कार्य करती हैं।

क्योंकि अन्ततः शब्द ही संगीत है, शब्द ही ब्रह्म है–

एक राग सब राग है, नाद बिन्द भारन बोल।
अनहद वाणी चहुपदा, सकल रागिनी पोल।।

अलकनन्दा

डॉ0 चन्द्रकान्ता राय
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

(देवभूमि उत्तराञ्चल में अलकनन्दा का सौन्दर्य, उसकी जीवन्तता और दिव्यता अनुपम है। मानवीय भाषा में उसकी अभिव्यक्ति सम्भव नहीं, तथापि एक प्रयास है इस भूधरनन्दिनी के माधुर्य को कविता के निर्बन्ध बन्ध में ढालने का। निसर्गकन्या के साथ बीते हुए जीवन के कुछ अविस्मरणीय पलों की शृंखला 21 से 25 मई, 2016 तक।)

ओ अलकनन्दे !
अलकों–सी लहरों वाली सुखशंदे !
मन में आता है बैठूँ तेरे तट पर,
तुझसे पूछूँ –
मानव के कुछ कृत्यों से जब थर्राते होंगे
तेरे तट के ऊँचे भूधर
तुम सिहर जाती तो होगी ?
ओ नम्रे, अलकनन्दे !
पथरीले, अनगढ़ तट पर
मानव वसतियों को ठौर देती,
जीवन भरती उनमें
उल्लास और वेदना की साक्षी बन
उनकी पुकार सुन,
तुम ठहर जाती तो होगी ?
ओ अलकनन्दे !
उमड़ता है कुछ अभ्यन्तर में
तुझे छू लूँ,
सहलाती, बलखाती तेरे साथ चलूँ।
उछल–उछल कर
कल–कल निनाद करती

नीरव में अँगड़ाई लेती
तेरी लहरियाँ
जब बन्धों में जकड़ जाती होंगी
तटबन्धों से टकरा–टकरा कर
तुम भी तड़प जाती तो होगी ?
ओ अलकनन्दे !
अमावस का घोर अँधेरा हो
या पूर्ण चन्द्र का उजियारा
प्रातःकिरण की स्वर्णिम आभा
या सूरज का आतप सारा
गहरी निशा या कि दिवस की निस्तब्धता
चीरती एक–एक कर एकान्त के मौन को
स्पन्दन भरती नभ, थल में तुम,
थक जाती तो होगी ?
ओ नमस्ये, अलकनन्दे !
मन में आता है
तुझमें समाकर, नहाकर
तेरे शीतल आँचल पर– संगीत लिखूँ
कंकरीली, पथरीली राहों पर
उछल–उछल कर दौड़ रही तुम
सप्तरश्मि के अश्वों जैसी
हरित नहीं, पर– श्वेताभा हो
अथवा,
विश्वामित्र की स्वसा, सुधा बन
विपाट्–सी विस्फारित
ओ तरल शुतुद्री–सी चंचल
शुभवर्ण गोमाता–सी
बछड़े से मिलने को आतुर,
किस धुन में किस दिग्–दिगन्त में
अपने आश्रय को स्पर्धा करती,
दौड़ रही उल्लासमयी तुम
सिंचित करती वसुधानी को,

पिरो रही कण–कण अखण्ड में
सत्–चित् की आनन्दवाहिनी
नम्राञ्चिते !
सद्रस में खो जाती तो होगी ?
ओ अलकनन्दे !
तुम अनुपम सुभग, सुधा–सी
सौन्दर्य बाँटती अग–जग में
छा जाती हो मानस पर
कितनी ध्वनियों से आवाहन कर
जन–जन को सत् की राह दिखाती
विधि–निषेध के मर्म बताती
सहज–निसर्ग के उपहारों से
पूरित करती अवनी–अम्बर को
अखण्डमूर्ति हो, चिदानन्द के चिद्रस में
रच जाती तो होगी ?
ओ अलकनन्दे !

वैश्विक आतंकवाद एवं आर्थिक संकट

डॉ0 मंजु बनिक
एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्रविभाग

बढ़ती जनसंख्या, बेरोजगारी, भूख जैसी ज्वलन्त समस्याओं के साथ यदि कोई विश्वव्यापी समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है तो वह है आतंकवाद। धार्मिक कटट्रपन का नकाब ओढ़े जेहाद का नारा लगाने वाले धर्म का अर्थ नही समझते। वे आम नागरिकों में धर्म के नाम पर अपना स्वार्थ साधते हैं। आतंकवादी धर्म को अपने लाभ एवं हितों के लिए प्रयोग कर रहे हैं। सभी धर्मों का उद्देश्य है– परस्पर भाई–चारा, सौहार्द व शान्ति से जीवन जीना। परन्तु धर्म के आड़ में अपना पेट भरने वालों ने इसे ईश्वर, अल्लाह, गॉड के साथ जोड़कर अशिक्षित मासूमों को भरमाया है। इस प्रकार धर्म जैसे सार्थक शब्द का स्वार्थी लोगों ने सदा से ही दुरूपयोग किया है। जब कि धर्म का अर्थ मानवतावाद है। जिसकी उपेक्षा कर आतंकवाद के रूप में यह उत्तरोत्तर विस्तृत होता जा रहा है।

अतः आतंकवाद सम्पूर्ण विश्व के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गया है। आतंकवाद, प्रतिवाद का एक रूप है। किस चीज का प्रतिवाद? असन्तुष्टी का प्रतिवाद। यह असन्तुष्टी या प्रतिवाद, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, व्यक्तिगत, समूह, वर्ग किसी भी प्रकार की हो सकती है। सभ्य समाज में अपनी असन्तुष्टी का समाधान न पाकर, व्यक्ति अपना प्रतिवाद जिस रूप में प्रकट करता है। उसी को हम लोग आतंकवाद कहते हैं। अर्थात् भय उत्पन्न करके या त्रास द्वारा शासन अथवा मानव जीवन को खतरे में डालने वाला या बड़े पैमाने पर सम्पत्ति को हानि पहुंचाने वाला, जान–बूझकर भय का वातावरण उत्पन्न करना ही आतंकवाद का तरीका है। भय उत्पन्न करके, उसे अंजाम देकर अपने उद्देश्य की पूर्ति करना ही आतंकवाद है। आतंकवाद में ऐसे बर्बर, हिंसक तरीकों को अपनाया जाता है, जिन्हें आज के सभ्य मानवतावादी समाज में स्वीकार नहीं किया जाता है।

जब से वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग अर्थशास्त्रियों ने किया तब से आतंकवादियों के साथ भी यह शब्द जुड़ गया है। आतंकवादी संगठन जब परस्पर सम्बन्ध स्थापित कर एक दूसरे को अपने समान मानकर, परस्पर सहायता करते हैं और उनके लक्ष्य प्राप्ति में सहायक हो जाते हैं, तब यह कहा जाता है कि आतंकवाद का वैश्वीकरण हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के प्रमुख अध्येता Brain Crosier का भी यह मानना है कि बीसवीं शताब्दी का आतंकवाद अपने स्वरूप में विश्वपरक (Global) है। विश्व के आतंकवादियों में आपसी मेलजोल है। क्योंकि इनके मूलभूत विश्वास एवं कार्यपद्धति प्रायः एक ही प्रकार के है। यह एक दूसरे को प्रशिक्षण और हथियारों की पूर्ति में सहायता करते हैं।

कहा जाता है कि प्रत्येक परिस्थिति के लिए कुछ कारण होते हैं और जब तक कारण नही मिटते तब तक परिस्थिति भी नही बदल सकती। यही बात आतंकवाद के विषय में भी कही जा सकती है।आतंकवाद के भी कारण हैं और जब तक वे कारण नही मिटेंगे तब तक आतंकवाद को समाप्त करना सम्भव नही होगा।

आतंकवाद के मुख्य कारण–

1. असन्तुलित क्षेत्रीय विकास
2. अल्पविकास
3. अशिक्षा, बेरोजगारी
4. औपनिवेशिकरण
5. सरकार की उपेक्षापूर्ण नीति
6. भ्रष्टाचार
7. मानवतावाद की अनदेखी
8. व्यक्तिगत या सामूहिक आर्थिक असन्तुष्टि
9. राष्ट्रीयता की पहचान का अभाव इत्यादि।

इन सभी कारणों का मुख्य जड़ आर्थिक शक्ति प्राप्त करना या आर्थिक असन्तुष्टि ही है, जिसके कारण आतंकवाद और अराजकता अपने चरम सीमा में भारत और सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया है।

ऐसी आर्थिक नीति जिससे अमीर और गरीब के बीच का अन्तर बढ़े तथा रोजगार बढ़ाने की गति धीमी पड़ जाए, इससे लोगों में कुंठा और हताशा बढ़ती है जो कुछ समय बाद अराजकता और आतंकवाद का रूप ले लेती है। विकासशील देशों विशेषकर भारत में कुछ ऐसा ही हो रहा है। देश की लगभग सभी राजनीतिक पार्टियाँ अपने आपको साम्यवाद, समाजवादी समरसतावादी घोषित करती हैं परन्तु किसी ने भी किसानों और गैर किसानों तथा जनसाधारण और सरकारी सेवा में लगे लोगों के बीच बढ़ती आर्थिक दूरी की ओर ध्यान नही दिया। सरकारी आँकड़े इस बात के गवाह है कि भारतीय किसानों की औसत आर्थिक आय की तुलना में सरकारी उपक्रमों में लगे कर्मचारी तथा हमारे सांसदों की वार्षिक आय का अन्तर क्रमशः 9 गुने और 34 गुने से अधिक है। भारत को उसके संविधान की प्रस्तावना में ही एक समाजवादी गणतन्त्र घोषित किया गया है, परन्तु किसी भी पूँजीवादी देश में आर्थिक अन्तर इतना अधिक नहीं है जितना कि आज भारत में है।

अनेक राष्ट्रों में अलगाववाद और आतंकवाद का कारण वहाँ की राष्ट्रीय सरकारों द्वारा किसी जातीयता विशेष या क्षेत्रविशेष की उपेक्षा करना भी है। उनकी समस्याओं का समाधान न करना, वहाँ समुचित विकास कार्य के प्रति उत्साहित न होना और उनकी राष्ट्रीय राजनीति में सहभागिता को महत्त्व

प्रदान न करना, उन लोगों में हीन भावना को जन्म देती है। आर्थिक एवं नागरिक अधिकारों से उन्हें वंचित किए जाने पर उनमें कुंठा जन्म ले लेती है, जो विद्रोह, हिंसा और अलगाववादी प्रवृत्ति को जन्म देती है। कल्याणकारी योजनाओं, रोजगार के अवसरों की कमी होने से बेरोजगार, विद्रोही भावना वाले नवयुवक आतंकवादी संगठनों को जन्म देते हैं या फिर इन संगठनों के सक्रिय सदस्य बन जाते है। भारत में उत्तर–पूर्व के राज्य और कश्मीर में आतंकवादी संगठनों के अस्तित्व के पीछे यह प्रमुख कारण रहा है।

जिस देश में देशवासियों को अपनी योग्यता और प्रतिभा के अनुरूप आगे बढ़ने का समान अवसर नहीं दिया जाता उस देश में शान्ति बनाये रखना सम्भव नहीं होता और वह देश उन्नति की ओर भी नहीं बढ़ सकता। शिक्षा की कमी के कारण भी अन्धविश्वासी एवं कट्टरपंथी जनमानस तैयार होते हैं। जिन्हें शिक्षित कहा जाता है, उनमें से अधिकांश अशिक्षित के ही समान हैं। इस प्रकार प्रारम्भिक शिक्षा का स्तर निरन्तर गिर रहा हैं। भ्रष्टाचार तेजी से बढ़ रहा है।

21वीं सदी में हम प्रो0 रोस्टोव द्वारा बताये गये विकास की तीसरी अवस्था की बात विकासशील देशों के लिए कर रहे थे, लेकिन 21वीं सदी ने आतंकवाद के रूप में अपनी पहचान दी है। जिसमें कितने नर संहार हुए हैं, विकास का मार्ग अवरूद्ध हुआ है, जिसने सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है।

अब प्रश्न है आतंकवाद, जो 21वीं सदी में हिंसा का नया रूप है, कैसे समाप्त किया जाए?

आतंकवादियों के सारे हथियार विदेशों से आते हैं जैसे अमेरिका, रूस, ब्रिटेन, फ्रांस इत्यादि। इनके लिए धन आतंकवादी नशीले पदार्थों के निर्यात से इकट्ठा करते हैं। अफगानिस्तान ने सन् 2000 में 2 हजार टन नशीले पदार्थ का निर्यात किया, जहाँ का मुख्य व्यवसाय अफीम बनाना है। ये नशीले पदार्थ पश्चिमी देशों में भेजे जाते हैं और सबसे ज्यादा अमेरिका को जाता है। अगर आज पश्चिमी देश नशीले पदार्थों–कोकीन, गांजा, भांग आदि का प्रयोग बन्द कर दें तो आतंकवादियों के आर्थिक स्रोत बन्द हो जाएँगे और आतंकवाद स्वतः ही समाप्त हो जाएगा।

देश चाहे समाजवाद हो या पूंजीवाद तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक उस पर मानवता का पुट न चढ़ा हो। मानवता का उद्देश्य होता है– देशवासियों के ज्ञान, ईमान और कर्तव्यनिष्ठा के स्तर को ऊपर उठाना। बुद्धिजीवियों के कारण ही समाज ऊपर उठता है, जहाँ ये चुप हो जाते हैं, वह समाज, देश नीचे गिरता जाता है। मानवता का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि नागरिकों को संप्रदायवाद, जातिवाद, उपजातिवाद तथा लिंग के आधार पर न बाँटा जाएँ बल्कि सभी के लिए अपनी प्रतिभा के अनुसार आगे बढ़ने के समान अवसर सुनिश्चित किया जाए। मानवतावाद की अनदेखी के कारण ही प्रत्येक देश में स्वदेशी अराजकता विदेशी आतंकवाद के रूप में उभर कर आ रही है।

अतः अराजकता व आतंकवाद को समाप्त करने के लिए मानवतावाद के मूल सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि धर्म के नाम पर आतंकवाद विश्व विकास पथ पर सबसे बड़ा पत्थर है। राष्ट्रीय समस्या से निबटने के लिए सभी को एकजुट होना होगा। धर्मगुरुओं को धर्ममंचों से मानवतावादी सिद्धान्तों का संप्रेषण करना होगा।

भारत सरकार द्वारा नोटबंदी का अहम् फैसला भी आतंकवाद को समाप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है, यदि रोजगार में वृद्धि कर क्षेत्रीय विषमता को दूर कर समानता के आधार पर सभी को जीने का अधिकार दिया जाय, तो कुछ हद तक आतंकवाद को समाप्त करने में सहायता मिल सकती है।

आचारसंहिता, भ्रान्तियाँ और अन्धविश्वास

डॉ0 उषा वर्मा श्रीवास्तव
अंशकालिक प्रवक्ता, मनोविज्ञानविभाग

हर समाज और संस्कृति की अपनी विशेष आचार संहिता होती है। वो उनकी विशेष परिस्थितियों, वहाँ के वातावरण, उस कालविशेष की धारणाओं और उनके सामाजिक स्थिति, अर्थात् उस विशेष समाज की सुरक्षा, समृद्धि, सम्पन्नता और उनकी शैक्षिक स्थिति को ध्यान में रख कर वहाँ के अनुभवी जनों द्वारा बनायी गयी होती हैं। साधारणतया आचारसंहिता का एक निश्चित कारण होता है पर कभी–कभी ये उस समाज की ideosyncrasies भी होती है और हम सोचते हैं कि ये बुजुर्ग हमें क्यों मना करते हैं कि इस दिन नाखून मत काटो, इस दिन ये मत खाओ और वो खाओ और कोई कारण भी नहीं बताते इसका, ऐसा क्यों करें या क्यों ना करें ?

अट्ठारहवीं शताब्दी में यूरोप के अभिजात्यवर्ग में किसी महिला के टखने दिख जाना बहुत बड़ी असभ्यता और बेशर्मी मानी जाती थी। इसी तरह हमारे यहाँ भी एक बृहत् आचारसंहिता बनायी गयी। यहाँ की गर्मी, और वर्षा के उमस भरे मौसम को ध्यान में रखकर खाद्य–अखाद्य के नियम बनाये गए, प्रकृति को ध्यान में रखकर ऐसे नियम बनाये गए कि हम किसी भी आचरण में अति ना करें और जनसाधारण उन्हें माने कि इसके लिए कहीं–कहीं ये भी कहा गया कि अगर ऐसा ना किया तो नरक में जायेंगे या धनहानि होगी। इन सबका बस एक ही उद्देश्य था, प्रकृति के सान्निध्य में, प्रकृति का सम्मान करते हुए दीर्घ आयु प्राप्त करना और सुखी समृद्ध जीवन यापन करना। ये नियम गृहस्थों के लिए हैं, संयासियों के लिए हैं, वानप्रस्थियों और ब्रह्मचारियों के लिए हैं, पर ध्यान रखने योग्य बात ये है की ये नियम देश काल परिस्थिति के अनुसार बदले जा सकते हैं, जैसे दातून किस लकड़ी का हो, आज टूथपेस्ट के युग में कोई औचित्य नहीं रखता। साथ ही यात्रा में, रोग में, आपातकाल में, युद्ध के समय इस आचार संहिता का पालन करना जरूरी नहीं पर उसके बाद पुनः किया जाना चाहिए।

एक किस्सा याद आ रहा है कि किस तरह रूढ़ियाँ अन्धविश्वास बन जाती हैं। एक परिवार में एक पालतू बिल्ली थी। उनके घर में बेटी की शादी पड़ी। सब रस्में हो रही थीं। बारात आने वाली थी कि अचानक घर के किसी बुजुर्ग को ख्याल आया कि कहीं बिल्ली आ कर पूजा की सामग्री न खराब कर दे। तो क्यों न बिल्ली को ढँक दिया जाये। एक बेंत की टोकरी से बिल्ली को ढँक दिया गया। विवाह संपन्न हुआ। लड़की विदा हो गयी। सब खुशी–खुशी अपनी जिन्दगी में व्यस्त हो गए। कुछ दिन बाद उस बुजुर्ग की मृत्यु हो गयी। बिल्ली भी मर ही गयी होगी। चार साल बाद की बात है। दूसरी बेटी की शादी पड़ी तो घर में बिल्ली नहीं थी। बारात आने लगी तो अचानक किसी को याद आया कि बिल्ली ढँकना है। चूँकि जिस बेटी की शादी हो चुकी थी पिछली बार, उसकी जिन्दगी बहुत खुशहाल थी और पति, पुत्र के साथ वो ससुराल में

रानी की तरह रह रही थी। अब किसी ने यह नहीं पूछा कि क्यूँ ढँकना है। चूँकि पिछले विवाह में बिल्ली ढँकी गयी थी, बिल्ली और बेटी खुश है तो इस बार भी ढँकना ही होगा। कहीं कोई अपशगुन ना हो जाये इसलिए एक बिल्ली खोज कर लायी गयी और उसको ढँका गया। टोकरी के नीचे, फिर बारात आई और विवाह हुआ। किस तरह एक साधारण बात एक परम्परा में बदल गयी, यह घटना उसका उदहारण है।

यदि किसी बुजुर्ग की सिखाई किसी बात, आचार–व्यवहार से आपके दैनिक जीवन में कोई बाधा न पड़ रही हो और आपको वो बात जरा भी तर्कसंगत लगे, मान लेनी चाहिए। क्योंकि कुछ लोगों के गहन अनुभव की सीख है। पर हाँ, अपने दिमाग का इस्तेमाल जरूर कर लें कि कहीं आप बिल्ली तो नहीं ढँक रहे। भविष्यकथन के लिए, स्वास्थ्य के लिए, दुर्घटनाओं से बचने के लिए और कुछ ना कुछ लक्षणों को लेकर इन सबको एक विज्ञान का रूप देने की भी कोशिश की है इंसान ने। जैसे सामुद्रिक, जिसमे शरीर के लक्षणों को देख कर बताया जाना कि कौन से गुण या अवगुण हैं, किस पुरुष या स्त्री में? इस स्थान पर तिल होने का क्या प्रभाव पड़ेगा जीवन में या एक विशेष प्रकार के दांत होना एक गृहणी के शुभ लक्षण हैं। ऐसे ही हस्तरेखा, विज्ञान। इसका क्या वैज्ञानिक आधार है। हमें नहीं पता या शायद बहुत से लोगों में अध्ययन करके कुछ विशेष चिन्हों को विशेष घटनाओं से सम्बंधित किया गया। जैसे अमुक रेखा का लम्बा होना, दीर्घायु का द्योतक है। और ऐसे हस्तरेखा के नियम बने।

ज्योतिषशास्त्र का भी कुछ यही मसला होगा शगुन अपशगुन विचार भी pseudoscience ही ज्ञात होते हैं। कौवा बोले तो घर पर अतिथि आयेंगे, दही–चीनी खा कर घर से बाहर जाना शुभ होता है। छींक आने पर थोडा रुक कर बाहर जाना चाहिए....वगैरह... वगैरह। इसी तरह faith healing को भी ले सकते हैं। इसका भी कोई आधार नहीं दिखता, पर ऐसा नहीं कि ये असर नहीं करते हैं। हमने कई बार ऐसे लोगों को पूरी तरह स्वस्थ होते देखा है। किसी एक्सिडेंट या बीमारी के बाद, जिनके स्वस्थ होने की आशा डाक्टरों ने भी छोड़ दी थी। सिर्फ घर वालों के विश्वास और आस्था के बल पर healing हुई और वो पूरी तरह स्वस्थ हुए, इसको हम नकार नहीं सकते। विश्वास से बड़ी कोई शक्ति नहीं है। विश्वास ही ईश्वर है और जब इंसान के पास जीने के लिए कुछ नहीं बचता तो ये विश्वास ही उसे जीवन देता है। अगर उसे कुंडली में विश्वास है तो वो बुरा समय भी मेहनत करके काट लेता है कि हाँ ६ महीने बाद ग्रहदशा बदलेगी और सब फिर से ठीक हो जायेगा और वो ही व्यक्ति इतनी मेहनत करेगा कि सफल हो जाये और इस सफलता का श्रेय भी वो ग्रहों को देगा। मनुष्य को हमेशा अज्ञात का भय रहा है और भविष्य के प्रति उत्सुकता। इसलिए न चाहते हुए भी व्यक्ति इन सबके पीछे भागता है। अच्छा होने की आशा इतनी बलवती नहीं होती, जितनी की अहित होने की आशंका भयप्रद होती है।

लेकिन हम फिर भी यह कहना चाहेंगे कि हमारे जानने का दायरा कितना भी बड़ा क्यों न हो वो हमारी अज्ञानता, हमारे ना जानने के दायरे से छोटा ही होगा। इसलिए ये तथाकथित विज्ञान, पूरी तरह अ–विज्ञान है। ऐसा कौन कह सकता है? क्या हम सच में इतना जानते हैं कि इन्हें झूठला सकें ?

वैनयिकी कला–नीतिग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में

सुश्री आरती श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर, बी.एड.विभाग

'वैनयिकी' अर्थात् विनय सिखाने की कला। संस्कृत नीति–ग्रन्थों का कोई भी अंश पढ़ने पर सहृदय पाठक कुछ न कुछ शिक्षा अवश्य प्राप्त करता है और यह शिक्षा उस पाठक के हृदय में उतर जाती है अर्थात् तुरन्त संप्रेषित होती है जो कि औपचारिक कक्षा में नहीं हो पाती। इसका कारण है संस्कृत काव्य की भाषा और शैली। इसमें किसी भी बात को समझाने के लिए एक नहीं कई दृष्टान्तों तथा उदाहरणों का सहारा लिया जाता है। शिक्षाशास्त्रियों ने भी शोध के आधार पर पाया है कि प्रभावशाली शिक्षण हेतु शिक्षक को उदाहरणों द्वारा समझाने (Illustrating with examples) के कौशल में दक्ष होना चाहिए। किन्तु उदाहरण देने के लिए शिक्षक में ज्ञान, अनुभव, परिपक्वता तथा अध्ययन की विविधता होनी चाहिए। यह परिपक्वता शिक्षक अपने विषय का गहन अध्ययन करके विकसित कर सकता है। किन्तु आचार, विचार, व्यवहार तथा जीवन कौशल की शिक्षा प्राप्त करने के लिए संस्कृत काव्य का अध्ययन करना आवश्यक है जिसमें मानव जीवन के समस्त पक्षों, ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, अभिवृत्यात्मक, अभिरुच्यात्मक तथा सर्वोपरि नैतिकता की शिक्षा सहज ही, बिना किसी शिक्षक के प्राप्त हो जाती है।

हितोपदेश, 'नीतिशतक', 'वैराग्यशतक', 'शृंगारशतक', तथा 'कथासरित्सागर' आदि अनेक ग्रन्थ हैं जो 'वैनयिकी' कला से भरे हुए हैं।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच सर्वदा।।4।। (हितोपदेश)

विद्वान् लोग सब धनों में विद्या को ही उत्तम धन कहते हैं, क्योंकि लोग उसकी चोरी नहीं कर सकते हैं और मूल्य देने पर भी वह खरीदी नहीं जा सकती है और दूसरे को देने अर्थात् (पढ़ाने से कम नहीं होती है, किन्तु बढ़ती ही रहती है)। पुत्र की योग्यता का क्या महत्तव है? इस पर 'हितोपदेश' में अत्यन्त सारगर्भित वर्णन किया गया है–

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।।9।।

जैसे एक ही तेजस्वी चन्द्रमा अपने तेज से समग्र अन्धकार को दूर करता है किन्तु बहुत से तेजरहित तारों का समूह अन्धेरे का नाश नहीं कर सकता, वैसे ही एक भी तेजस्वी पुत्र अपने सामर्थ्य से धन कमाकर कुटुम्ब का दारिद्र्यरूपी अन्धेरा दूर करता है। वही श्रेष्ठ है, परन्तु सैकड़ों मूर्ख पुत्र किसी काम के

नहीं हैं। प्रस्तुत श्लोक किसी भी स्वस्थ्य मनोवृत्ति वाले व्यक्ति को प्रेरणा और शिक्षा देने में सर्वथा समर्थ हैं।

भर्तृहरि ने शृंगारशतक में नारी–रूप के मायामोह में फँसे पुरुषों को शिक्षा दी है–

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाताल्लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत्।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः।।40।।

ऐसी गूढ़ एवं सहज शिक्षा अन्यत्र कहाँ? अर्थात् ऐसी संक्षिप्त, सटीक तथा शिक्षा प्रदान करने में समर्थ सूक्तियाँ संस्कृत वाङ्मय की विशेषता है। इस बाद विश्व में शिक्षा ही वह माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में शुद्ध अन्तःकरण, स्वस्थ मस्तिष्क एवं सामंजस्य के साथ निरन्तर विकास व प्रगति करता है। शिक्षा का शुभारम्भ घर–परिवार से होता है। यहाँ प्राप्त होने वाली बालक की प्रारम्भिक शिक्षा व संस्कार उसकी आगे की शिक्षा का आधार होती है, विशेषकर नीतिसम्बन्धी शिक्षा बालक घर–परिवार के वातावरण में ही आत्मसात् कर सकता है, क्योंकि यहाँ वह स्वाभाविक वातावरण में रहते हुए अनजाने में अप्रत्यक्ष रूप से समस्त संस्कारों को ग्रहण करता रहता है।

इसके बाद बालक विद्यालय एवं विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जाता है जिसका उद्देश्य उन्हें योग्य बनाना होता है कि वह समस्त परिस्थितियों में अपनी समस्याओं का समाधान करने योग्य बने। शिक्षित व्यक्ति सभी प्रकार की सामाजिक, आर्थिक एवं संवेगात्मक समस्याओं का समाधान ढूँढने का प्रयास स्वयं करते हैं। मानसिक अन्तर्द्वन्द्व में भी वे कोई न कोई मार्ग अवश्य ढूँढ लेते हैं। यही शिक्षा का प्रभाव है। किन्तु ऐसा वही कर पाता है जिसका अध्ययन विविध एवं गहन हो। विज्ञान, गणित तथा व्याकरण की समस्याएँ हल करना एवं जीवन की समस्याओं के समाधान ढूँढना, दो अलग विषय हैं। प्रथम में शिक्षक विषयसम्बन्धी समस्या का समाधान ढूँढ देते हैं। किन्तु विद्यालयीय शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् जब शिक्षक सम्मुख नहीं रहेंगे तो उनके द्वारा दी गयी शिक्षा जीवन की विषमताओं में मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

औपचारिक शिक्षा का सम्बन्ध पुस्तकों एवं ग्रन्थों से है। इन्हीं के माध्यम से शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य शिक्षण एवं अधिगम की प्रक्रिया सम्पन्न होती है । किन्तु औपचारिक शिक्षा समाप्त होने के बाद उनमें पढ़ी हुयी बातें ही मनुष्य के पास रहती हैं। उनसे प्राप्त शिक्षा प्रतिक्षण मनुष्य को माता–पिता, भाई–बहन, गुरु एवं मित्र के अभाव में भी निरन्तर उसका मार्गदर्शन करती है। संस्कृत नीतिग्रन्थों से भी कुछ ऐसी ही शिक्षा मनुष्य को मिल सकती है जो उसे मानसिक, अभिवृत्त्यात्मक, अभिरुच्यात्मक, संवेगात्मक, चारित्रिक, नैतिक सभी दृष्टिकोणों से इतना विकसित एवं परिपक्व बना देती है कि वह जीवन में कभी व्यग्र नहीं होता, वरन् सुख एवं शांति से जीवन व्यतीत कर सकता है। भर्तृहरिकृत **शतकत्रय** के श्लोक एवं 'कथासरित्सागर' की कथाएँ 'वैनयिकी कला' के अनुपम उदाहरण हैं।

'नीतिशतकम्' में भर्तृहरि ने अनेक नैतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए पाठकों को विनय सिखाने अर्थात् शिक्षित करने का प्रयास किया है और वे सफल भी हुए हैं। **'नीतिशतकम्'** तो सम्पूर्ण सूक्ति–साहित्य का अलंकारस्वरूप ग्रन्थ है, जिसमें अनेक दीप्तिमान् माणिक स्थल–स्थल पर जड़े हुए हैं।

प्रत्येक श्लोक मनुष्य को गूढ़ शिक्षा प्रदान करता है। उदाहरणार्थ –

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतप तं नरं न रञ्जयति।। (नीतिशतक, 3)

जो अज्ञ हैं उन्हें आसानी से मनाया जा सकता है, जो विशेषज्ञ हैं उन्हें और आसानी से बात समझायी जा सकती है, किन्तु जो अल्पज्ञानी होते हुए भी स्वयं को पण्डित मानते हैं, उन्हें ब्रह्मा भी नहीं मना सकते हैं। अर्थात् अहंकार ज्ञानप्राप्ति में बाधक है, इसे छोड़ देना चाहिए।

उपर्युक्त श्लोक में भर्तृहरि ने अहंकारी पण्डित से सावधान रहने की शिक्षा दी है। उन्होंने निम्नांकित श्लोक में मनुष्य को सावधान किया है कि किसी भी स्थिति में दुष्ट स्वभाव को सज्जनता में परिवर्तित नहीं किया जा सकता–

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते।
छेत्तुं व्रजमणिं शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यति।
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते।
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।। (नीतिशतक, 3)

अर्थात् मधुर वचनों द्वारा दुष्ट को सज्जन बनाना उसी प्रकार असंभव है जैसे कोमल कमलनाल से हाथी को बाँधना, शिरीषपुष्प के अग्रभाग से हीरे को काटने का प्रयास करना तथा एक बूँद शहद से खारे समुद्र में मिठास पैदा करने की चेष्टा। प्रस्तुत श्लोक में बड़े सुन्दर ढंग से यह स्पष्ट किया गया है कि उत्तम शिक्षा सुपात्र को ही देनी चाहिए।

एक अन्य श्लोक में भर्तृहरि ने मानों दृष्टान्तों के माध्यम से जीवन भर की शिक्षा दे दी है। यदि हम इस श्लोक को स्मरण रखें तो जीवन में कभी अशान्ति नहीं रहेगी। नीतिशतक में कवि की 'वैनयिकी' कला द्रष्टव्य है–

शान्तिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेद् देहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्।
किं सर्पैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्।। (नीतिशतक, 21)

अर्थात् मनुष्यों में यदि क्षमा हो तो कवच की क्या आवश्यकता, क्रोध हो तो शत्रुओं का क्या प्रयोजन, बिरादरी के लोग हों तो आग का क्या काम, मित्र हों तो उत्तम औषधों से क्या लाभ, दुर्जन हों तो सर्पों का क्या काम, निर्दोष विद्या हो तो धन की क्या आवश्यकता, लज्जा हो तो आभूषणों से क्या मतलब, सुन्दर कविता हो तो राज्य से क्या प्रयोजन।

प्रस्तुत श्लोक में क्षमा सर्वोत्तम कवच, क्रोध सबसे बड़ा शत्रु, बिरादरी अग्निस्वरूप, मित्र सर्वोत्तम औषधि, दुर्जन भयानक सर्प, विद्या सर्वोत्तम धन, लज्जा श्रेष्ठ आभूषण, श्रेष्ठ कवित्वशक्ति राज्यप्राप्ति स्वरूप प्रतिपादित किए गये हैं।

परमात्मा में अटूट विश्वास दर्शाते हुए कवि कहते हैं कि उनकी कृपा से मनुष्य की समस्त इच्छाएँ पूर्ण होती हैं –

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः
स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निःक्लेशलेशं मनः।
आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं
तुष्टे विष्टपकष्टहारिणि हरौ सम्प्राप्यते देहिना।। (नीतिशतक, 25)

संसार के कष्ट हरने वाले भगवान् के प्रसन्न होने पर मनुष्य को सदाचारी पुत्र, पतिव्रता भार्या, प्रसन्न होने वाला स्वामी, स्नेहयुक्त मित्र, विश्वासपात्र सेवक, सर्वथा क्लेशों से रहित (शान्त) चित्त, सुन्दर स्वरूप, स्थायी सम्पत्ति, विद्या से निर्मल मुख, ये सब मिलते हैं।

इन सभी उपलब्धियों के लिए ईश्वर को प्रसन्न करना है और ईश्वर अच्छे कार्यों से प्रसन्न होते हैं। इस संसार में समस्त प्राणियों को किसी न किसी रूप में अपने उपास्य को प्रसन्न करने के लिए अवांछित कार्यों से बचना चाहिए।

यदि व्यक्ति को व्यावहारिक जीवन में किसी अवांछित व्यवहार को छोड़ने के लिए अभिभावक समझाते हैं, तो प्रायः वह सुनता नहीं है किन्तु अवांछित व्यवहार के दुष्परिणाम को यदि किसी उपयुक्त दृष्टान्त के माध्यम से समझाया जाए तो व्यक्ति इसे चेतावनी स्वरूप लेता है, फलस्वरूप सतर्क हो जाता है। प्रस्तुत श्लोक में कुछ ऐसे ही भावों को व्यक्त किया गया है–

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालनात्,
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात्।
ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्,
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात् त्यागात्प्रमादाद् धनम्।। (नीतिशतक, 42)

(अनुचित सलाह मानने से राजा, लोगों के अति सम्पर्क से योगी, दुलार करने से पुत्र, अध्ययन न करने से ब्राह्मण, कुपुत्र से वंश, दुष्टों के संपर्क से अच्छा आचरण, शराब पीने से लज्जा, बार–बार ध्यान न देने से कृषि, दूर रहने से प्रेम, स्नेह के न होने से मित्रता, अनीति से ऐश्वर्य और दान में असावधानी से अर्थात् व्यर्थ व्यय करने से धन नष्ट हो जाता है)।

कवि ने जो दृष्टांत दिए हैं वे मस्तिष्क में अंकित कर लेने चाहिए जिससे जीवन में मार्गदर्शन व परामर्श के लिए कहीं और जाने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।

एन0सी0ई0आर0टी0 ने सभी विद्यालयों में व्यापक एवं सतत मूल्यांकन की योजना लागू की है। व्यापक से तात्पर्य है व्यक्तित्व के समस्त पहलुओं का विकास। विज्ञान, गणित, सामाजिकविज्ञान तथा भाषा विषयों में अच्छे अंक प्राप्त करना एक अलग बात है, इसे केवल ज्ञानात्मक पहलू का विकास कहेंगे किन्तु भावात्मक तथा क्रियात्मक विकास भी आवश्यक है। इसके लिए नीतिविषयक शिक्षा तथा शारीरिक श्रम के कार्य करवाने की आवश्यकता है।

शारीरिक श्रम जैसे खेल–कूद एवं योगाभ्यास, दूसरों की मदद करना, अपने देश की संस्कृति एवं कला को अक्षुण्ण रखने का प्रयास और उसमें कुछ नवीन जोड़ने का प्रयास ऐसे ही अनेक कार्य जो विद्यार्थी के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करते हैं, इसके लिए उन्हें प्रेरणा प्रदान करने की आवश्यकता है।

संस्कृत नीति–ग्रन्थों में व्याप्त सूक्तियाँ किसे नहीं प्रेरित करतीं? अर्थात् सभी को प्रेरित करती हैं। अतः ये सूक्तियाँ सभी विषयों यथा गणित, विज्ञान तथा सामाजिकविज्ञान सभी के साथ शिक्षण का विषय होनी चाहिए। तभी वैज्ञानिकों, गणितज्ञों एवं अन्य सामाजिक विज्ञानवेत्ताओं का योगदान समाज तथा राष्ट्र के लिए लाभकारी होगा क्योंकि नीति के अभाव में वे अपने कार्यों को समाजोपयोगी एवं राष्ट्रोपयोगी नहीं बना सकेंगे वरन् अपनी क्षमताओं का प्रयोग अवांछित दिशा में भी कर सकते हैं। विषयविशेषज्ञ होने के साथ–साथ मनुष्य को सज्जन भी होना चाहिए। कवि द्वारा सत्य ही कहा गया है–

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाऽविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।। (नीतिशतक, 75)

संसार में कुछ लोग तो सज्जन होते हैं जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरों की भलाई करते हैं। (क्योंकि उनकी चेतना का भावनात्मक पक्ष विकसित हुआ है) और कुछ लोग साधारण श्रेणी के होते हैं जो अपने स्वार्थ के विरुद्ध न जाकर दूसरों के लिए उद्यम करते हैं। कुछ राक्षसस्वरूप मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरों के हित का नाश कर देते हैं किन्तु उन्हें क्या कहें जो व्यर्थ ही दूसरों के हित का नाश करते हैं। यही कह सकते हैं कि या तो उनकी चेतना का भावनात्मक पक्ष जड़ हो गया है अथवा उनके माता–पिता, भाई–बन्धु, शिक्षकों तथा अन्य जिम्मेदार लोगों ने उन्हें दया, संवेदना, ममता, सहयोग, मैत्री, स्नेह, सराहना जैसे संवेगों को विकसित करने के अवसर नहीं दिए।

'कथासरित्सागर' कथा का सागर तो है ही किन्तु उससे भी अधिक यह 'वैनयिकी कला' अथवा शिक्षा से पूर्ण कथाओं का इतना बड़ा भण्डार है कि इसे पढ़ने एवं सही अर्थों में समझने में मनुष्य का जीवन बड़े सुख से व्यतीत हो सकता है। कथाएँ अति प्राचीन हैं किन्तु उनसे मिलने वाली शिक्षा शाश्वत है। आने वाले युगों में भी सार्थक रहेगी। यह 'कथासरित्सागर' भारतीय कल्पनाजगत् का दर्पण है, जिसे सोमदेव भविष्य की पीढ़ियों के लिए छोड़ गये हैं। महान् लेखक सोमदेव की कहानियाँ हृदय में एक बार उतर जाने के उपरान्त फिर नहीं भुलाई जा सकतीं, उदाहरणार्थ रूई वाले की कहानी, जो अत्यन्त मूर्ख था। वह बाजार में रूई बेचने गया किन्तु साफ न होने के कारण उसे किसी ने नहीं खरीदा। उसने सुनार को आग में सोने को शुद्ध करते हुए देखा। उस सोने को सुनार ने बेचा और ग्राहक ने खरीद लिया। यह देखकर उसने भी अपनी रूई को साफ करने के लिए आग में डाल दिया। इससे सब लोग उस मूर्ख पर हँसने लगे (61/28–31)।

दूसरी कथा का उदाहरण गो–दोहक की कहानी है। उसकी गाय प्रतिदिन 25 लीटर दूध देती थी।

अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा एवं शैक्षिक अवसरों की समानता

डॉ0 अनिता अग्रवाल
एसोसिएट प्रोफेसर, बी.एड.विभाग

भारत एक कल्याणकारी राज्य है जो अपने सभी नागरिकों तथा विशेष रूप में सामाजिक दृष्टि से पिछड़े व सुविधाहीन बच्चों के कल्याण के लिए वचनबद्ध है। संविधान में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के शैक्षिक उत्थान हेतु संरक्षण व उपाय किये गये हैं। इसी प्रकार भारतीय संविधान व समाज में अल्पसंख्यकों हेतु अनेक प्रावधान किये गये हैं, जिससे उन्हें अपने अधिकारों व धर्म की रक्षा का एवं शैक्षिक अवसरों का समान रूप से अधिकार मिल सके।

अल्पसंख्यक का अर्थ –

भारतीय समाज में विभिन्न सम्प्रदायों को मानने वाले लोग रहते हैं। धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर समाज के अधिकतर व्यक्ति जिस सम्प्रदाय या धर्म को मानते हैं वे बहुसंख्यक कहे जाते हैं। बहुसंख्यक सम्प्रदाय या धर्म के अतिरिक्त जो व्यक्ति समाज में रहते हैं, उनकी संख्या कम होती है। इन लोगों को अल्पसंख्यक कहा जाता है। भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, बौद्ध आदि सम्प्रदायों को मानने वाले लोग रहते हैं। बौद्ध, जैन, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी, प्रार्थनासमाजी हिन्दू धर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं। सिक्खधर्म को भी हिन्दूधर्म के अन्तर्गत माना जाता है। इस दृष्टि से हिन्दूजन भारत में बहुसंख्यक हैं और मुस्लिम, ईसाई, पारसी, अल्पसंख्यक हैं।

सम्प्रदाय और पंथ को छोड़ दें तो भाषा और जाति के आधार पर भी बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक की बात की जाती है। हिन्दी भाषी बहुसंख्यक है, अन्य भाषा–भाषी अल्पसंख्यक हैं, किन्तु अल्पसंख्यकों की सुविधा के सन्दर्भ में अल्पसंख्यक का अर्थ सम्प्रदाय, धर्म के पथ पर आधारित धारणा के रूप में ही लिया जाता है। अल्पसंख्यकों की शिक्षा से हम यहाँ पर मुस्लिम, ईसाईयों आदि की शिक्षा का ही अर्थ ग्रहण करेंगे।

अल्पसंख्यकों को शैक्षिक सुविधाएँ –

संविधान सभा में अल्पसंख्यकों के विषय में 1 मई, 1947 के दिन ही सरदार बल्लभभाई पटेल ने वाक्यखण्ड 18 प्रस्तुत किया जिसका पाठ निम्नवत् था–

1. हर इकाई के अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति की रक्षा की जायेगी और ऐसे कानून या व्यवस्था का निर्माण न किया जायेगा जिनसे इन बातों पर विरोधी असर हो।
2. कोई भी अल्पसंख्यक, चाहे वे धार्मिकता के आधार पर हो या सम्प्रदाय अथवा भाषा की दृष्टि से,

उनके यहाँ कोई उत्सव होने वाला था। उसने सोचा एक ही बार में उत्सव के लिए सारा दूध दुह लूँगा और महीने भर तक गाय नहीं दुही। उत्सव आने पर जब दुहने बैठा, तब उसे दूध की बूँद भी न मिली (61/44–47)।

'कथासरित्सागर' में 124 तरंगों का विभाग एवं 18 लम्बक हैं। दसवें लम्बक की 61वीं तरंग में लेखक ने पंचतंत्र के हिरण्यक चूहे, लघुपतनक कौए, चित्रगीव कबूतर, मंथरक कछुए की कहानी भी सम्मिलित की है क्योंकि ये प्रज्ञानिष्ठ या व्यावहारिक बुद्धिमानी की कहानियाँ हैं।

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, पुरातत्त्व–विभाग, हिन्दू विश्वविश्वविद्यालय, वाराणसी ने ''कक्षासरित्सागर'' की भूमिका में लिखा है–

''अच्छी कहानी मन के तनाव को दूर करती है और मनुष्य को फिर अपनी स्वाभाविक स्थिति में पहुँचा देती है। यह नमक की उस चुटकी के समान है जो सारे भोजन को स्वादिष्ट बनाती है।''

आशय यह है कि 'कथासरित्सागर' की कहानियों को यदि थोड़ा–थोड़ा पढ़ते रहें तो विद्यार्थियों को आनन्द और शिक्षा दोनों प्राप्त होंगे। फलस्वरूप उनका नैतिक विकास होगा। वे अपने सुख के साथ दूसरों के सुख का भी ध्यान रखेंगे।

अन्त में यह कहना असंगत न होगा कि 'वैनयिकी कला' अर्थात् विनय एवं जीवन की शिक्षा–प्रदान करने के लिए संस्कृत नीति–ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। अतः ठोस कदम उठाने चाहिए जिससे समस्त विद्यार्थिवर्ग इन्हें पढ़कर विनयपूर्वक परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपना योगदान करने के लिए प्रेरित हों।

राष्ट्र की शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पाने से वंचित नहीं रहेगा, न उन पर कोई धार्मिक शिक्षा अनिवार्य रूप से लागू की जायेगी।

3. (अ) सभी अल्पसंख्यक, चाहे उनका आधार धर्म–सम्प्रदाय हो या भाषा, किसी भी इकाई में अपनी पसंद की शिक्षा संस्था स्थापित करने को स्वतन्त्र होंगे।

(ब) राज्य शिक्षासंस्थाओं को सहायता देते समय, अल्पसंख्यकों की धर्म सम्प्रदाय या भाषा पर आधारित शिक्षासंस्थाओं के प्रति भेदभाव नहीं रखेगा।

उसी समय महावीर त्यागी व मोहन लाल सक्सेना दोनों प्रतिनिधियों ने इस पर जोर दिया कि चूँकि देश के विभाजित होने की आशंका है, अतः इस प्रस्ताव पर अभी विचार न किया जाय। इस पर भीमराव अम्बेडकर ने सिफारिश की कि इस वाक्य खण्ड 18 को पारित करने में पाकिस्तान बनने या न बनने के निर्णय की प्रतीक्षा न की जाय। अधिक से अधिक उपखण्ड 18 (2) को छोड़कर, शेष पूरा वाक्यखण्ड अपने वर्तमान रूप में स्वीकार किया जाय। इस प्रकार केवल उपखण्ड 18(2) एडवायजरी कमेटी के पास संशोधन के लिये भेजा गया। समय हो जाने के कारण 1 मई, 1947 को बैठक समाप्त हुई।

बाद में कई संशोधन प्रस्तुत किये गये। सभी संशोधनों पर मत लिया गया जो स्वीकार हुआ। अन्ततः इस वाक्यखण्ड 18 (2) ने वर्तमान धारा 29 (2) का रूप लिया, जो शैक्षणिक संस्थाओं में भेदभाव न बरतने के सम्बन्ध में है–

धारा29 (2) '' राज्य द्वारा संचालित अथवा सहायता प्राप्त किसी भी शैक्षणिक संस्था में धर्म, प्रजाति, जाति भाषा के आधारों पर अथवा इनमें से किसी एक आधार पर किसी नागरिक को प्रवेश देने से इन्कार नहीं किया जायेगा।''

इसी भाँति वाक्य खण्ड 18 (3) ख ने संविधान की वर्तमान धारा 30 (i) तथा (ii) का रूप लिया।

धारा 30 (i) सभी अल्पसंख्यकों को चाहे उनका आधार धर्म हो या भाषा, अपनी पसंद की शिक्षा संस्था स्थापित करने एवं प्रशासन करने का अधिकार होगा। ''

(ii) राज्य शिक्षा संस्थाओं को सहायता देते समय इस आधार पर भेदभाव नहीं करेगा कि वह किसी अल्पसंख्यक की संस्था है। चाहे उसका आधार धर्म हो अथवा भाषा हो। ''

कुछ वर्षों पूर्व कलकत्ता के एक निर्णय के अनुसार ''श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य हिन्दू नहीं हैं, क्योंकि वे बाइबिल, कुरान व अन्य धर्मग्रन्थों को भी सत्य मानते हैं। परम्परागत रूप से उसे ही हिन्दू माना जाता है जो केवल वेदों के अतिरिक्त अन्य किसी दूसरे धर्मग्रन्थ पर विश्वास नहीं करता।'' यह दलीले देते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने, रामकृष्णमिशन द्वारा संचालित एक कॉलेज को धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा चलाया जाना घोषित कर दिया है, इसे संविधान की धारा 30 के अन्तर्गत किया गया। कोर्ट का यह निर्णय भारत के सर्वोच्चन्यायालय ने नहीं माना। इसी भाँति का एक अन्य वाद, इलाहाबाद हाईकोर्ट में दाखिल कर

आर्य समाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को अल्पसंख्यक कोटि का घोषित करने का निवेदन किया गया। इसे भी कोर्ट ने नहीं माना।

धर्म के आधार पर राज्य भेदभाव का निषेध –

भारत संविधान के निर्माण के समय चार आधारभूत मूल्य शामिल किये गये थे।

(i) सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय

(ii) विचार अभिव्यक्ति, श्रद्धा और उपासना का स्वातन्त्र्य

(iii) सामाजिक स्थिति व अवसर की समानता

(iv) सभी भारतीयों के प्रति बन्धुत्वभाव

धारा 15.1 द्वारा कहा गया कि ''केवल धर्म, जाति, प्रजाति, लिंग और जन्मस्थान के आधारों अथवा इनमें से किसी आधार पर राज्य, किसी नागरिक के विरुद्ध भेदभाव का व्यवहार नहीं करेगा।''

धारा 15.4 द्वारा संविधान ने पिछड़ी तथा अनुसूचित जातियों के लाभ के लिए विशेष सुविधाओं की व्यवस्था की है, ''सामाजिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गो के नागरिकों अथवा अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष विधानों के निर्माण में यह अनुच्छेद अथवा अनुच्छेद 29.2 निषेध नहीं करेगा।''

इस तरह धारा 15 के अनुसार राज्य द्वारा किसी धर्म, जातिविशेष आदि कारणों से न तो किसी को विशेष सुविधा दी जायेगी और न ही किसी को दबाया जायेगा। अनुच्छेद 15.1 में जो शब्द 'केवल' प्रयुक्त किया गया है, उसका तात्पर्य यही है कि किसी व्यक्ति की अन्य योग्यताओं के समान होने पर किसी व्यक्ति की जाति, धर्म आदि के कारणों पर योग्यता अथवा अयोग्यता नहीं निर्धारित की जा सकेगी। संविधान का 14वाँ अनुच्छेद नागरिकों को कानून के समक्ष समान रूप से कानून सुरक्षा प्रदान करता है, वहीं 15.1 द्वारा नागरिकों केा धर्म, जाति आदि के आधारों पर भेदभाव न बरते जाने की गारण्टी राज्य द्वारा प्राप्त होती है।

केन्द्रीय सरकार के योजनाबद्ध प्रयास –

सन् 1992 में संशोधित (प्रोग्राम ऑफ एक्शन) इसके अन्तर्गत केन्द्र सरकार ने सन् 1993–94 में निम्नलिखित दो योजनाएँ प्रारम्भ की–

(i) अल्पसंख्यकों में शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों के लिए क्षेत्रीय कार्यक्रम।

(ii) मदरसा शिक्षा के आधुनिकीकरण हेतु वित्तीय सहायता प्रथम योजना का उद्देश्य उन अल्पसंख्यकों के समुदायों को सहायता प्रदान करना है, जिनके पास प्राथमिक शिक्षा व माध्यमिक शिक्षा की पर्याप्त सुविधा नहीं है। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तीन प्रकार के कार्यों में शत–प्रतिशत वित्तीय सहायता दी जाती है।

(अ) नये प्राथमिक विद्यालय और अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र खोलने हेतु।

(ब) प्राथमिक विद्यालयों में अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान करना।

(स) लड़कियों के लिए आवासीय माध्यमिक विद्यालय खोलना।

द्वितीय योजना के अन्तर्गत मदरसा और मकतब की शिक्षा के आधुनिकीकरण का प्रयास किया जाएगा। इन पारस्परिक मकतबों व मदरसों में विज्ञान, गणित, सामाजिक अध्ययन, हिन्दी और अंग्रेजी को पढ़ाया जाय। इन विषयों को पाठ्यक्रम में शामिल किया जाए और इनको पढ़ाने के लिए नये अध्यापक नियुक्त किये जायें, जिनपर होने वाले खर्च को शत–प्रतिशत आधार पर अर्थात् पूरा खर्च केन्द्रीय सरकार वहन करेगी। किन्तु अभी भी बहुत से मकतब व मदरसे इस योजना से लाभ उठाकर अपनी पुरानी पद्धति पर ही चल रहे हैं, जिनसे निकले हुए छात्र वर्तमान समाज के अनुरूप अपने को ढालने में असमर्थ पाते हैं।

काला पक्ष –

संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों को दिये गये सुविधाओं का एक अन्य सच भी है। संविधानों द्वारा दिये गये अधिकारों का दुरुपयोग भी हो सकता है। अल्पसंख्यकों को अपनी संस्था खोलने का अधिकार है। किन्तु प्रायः यह देखा जा सकता है कि ऐसी संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति, छात्रों के प्रवेश एवं शुल्कमुक्ति के अवसर पर पक्षपात एवं भेदभाव की घटनाएँ हो जाती हैं। इससे तो इस व्यवस्था पर ही प्रश्नचिह्न लग जायेगा। इन संस्थाओं के प्रबन्धतन्त्रों को सावधानीपूर्वक इस अवस्था का लाभ उठाना चाहिए जिससे कालान्तर में वे अल्पसंख्यकों की नीतियों, सिद्धान्तों एवं आदर्शो की रक्षा करते हुए भी भेदभाव व पक्षपात से उपर उठ सकें। तब उनकी संस्था व उनके कार्य देशहित व समाज हित में होंगे। ऐसी संस्थाओं से शिक्षा का स्तर भी ऊँचा उठेगा और बहुसंख्यक समाज के विश्वास को भी वे जीत सकेंगे।

वास्तविकता कुछ और ही –

अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यक वर्ग की भाँति अपने धर्म की रक्षा का अधिकार है। उनके इस अधिकार की रक्षा के लिए भारतीय संविधान में कुछ प्रावधान किये गये हैं। इन प्रावधानों का लाभ मुस्लिम, पारसी, ईसाई धर्म मानने वालों को मिलता है। इन लाभों के लालच में विगत कुछ वर्षो में बौद्ध, जैन मत को मानने वालों ने अपने को अहिन्दू घोषित कर दिया है। सिक्ख धर्म की स्थापना में हिन्दूधर्म की रक्षा का भाव निहित था। हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए सिक्ख गुरुजी ने बड़ा संघर्ष किया। अब वे भी अपने को हिन्दूधर्म से पृथक् मानते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों से कहा था कि तुम गर्व से कहो कि हम हिन्दू हैं। उन्हीं के द्वारा स्थापित रामकृष्णमिशन ने भी अपने को अल्पसंख्यक दर्जा देने की माँग की है। तब हिन्दू बहुसंख्यक कैसे रह जाएँगें। यह विचारणीय है।

मानवीय संवेदना के कुशल चित्रकार – कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर

डॉ0 चन्द्रकान्ता राय
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृतविभाग

19वीं सदी के मध्योत्तर काल में कोलकाता के धनाढ्य ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले रवीन्द्र नाथ ठाकुर मानवीय संवेदनाओं से जुड़े ऐसे महान्–कवि हुए हैं जिन्होंने अपने उपन्यास, कथाओं, निबन्धों और कविताओं में मार्मिक प्रसंगों को अपनी लेखनी से उकेरते हुए मानव के समक्ष औचित्य के निर्धारण की चुनौती खड़ी कर दी। शिक्षा, समाज एवं न्याय–व्यवस्था को लोकहित की दृष्टि से परिष्कृत करने की आवश्यकता को सम्मुख रखते हुए उन्होंने नियतिकृत संकेतों पर भी संवेदना के प्रश्न खड़े कर दिये। पाठ्यक्रम और पाठ्यशैली के नियमों में बँधी प्राथमिक विद्यालयों की शिक्षा–पद्धति को नकारते हुए उन्होंने विद्यार्थियों में नैसर्गिक प्रतिभा के विकास तथा नवजागरण के बीजारोपण के लिए खुले वातावरण में शिक्षण को महत्त्व दिया जिसमें स्वतन्त्रता एवं स्वाभाविक अभिरुचि के अनुसार शिक्षा–प्राप्ति के लिए अवसर सम्भव था। इस दृष्टि से शान्तिनिकेतन में इन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना की जो आज विश्वभारती विश्वविद्यालय के नाम से प्रख्यात है। मनुष्य को संवेदना से जोड़ने के लिए उन्होंने साहित्य, संगीत, नृत्य, अभिनय, चित्रकला इत्यादि विषयों के प्रशिक्षण पर बल दिया। पब्लिक स्कूलों में शिक्षण की व्यवस्था से वे सन्तुष्ट नहीं थे। अतएव मनुष्य की शैक्षिक, मौलिक अपेक्षा के अनुरूप उन्होंने सुधार की रूपरेखा प्रस्तुत की। उनके शब्दों में –

The Schools were no better than prisons.

स्कूल–शिक्षा में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रुचि नहीं थी। स्कूल का अत्यन्त अल्पकाल का उनका अनुभव 'Like panel servitude in the Andaman Islands' शब्दों में व्यक्त हुआ है। तनाव और दबाव की स्थिति से विद्यालयों को मुक्त करने के लिए कवीन्द्र के संवेदनापूर्ण निर्णय ने उन्हें शिक्षा के क्षेत्र में एक सफल प्रयोगधर्मी के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की। उनकी रचनाओं में स्त्री–पुरुष–समस्त मानववर्ग को शिक्षा द्वारा समर्थ बनाते हुए एक ऐसे समाज की संरचना का संकल्प मुखर होता है जो संकीर्णता और स्वार्थपरता की परिधि को तोड़कर राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना से ओत–प्रोत हो जाय। गीतांजलि से उनकी पंक्तियाँ उद्धृत हैं–

Where the mind is without fear
and the head is held high
Where knowledge is free
Where the world has not been broken up
into fragments of narrow domestic walls
My father ! let my country awake.

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में संवेदना के स्वर मूर्तरूप लेकर उभरे हैं। 'नष्टनीड़' (लघु उपन्यास) की नायिका चारुलता अपने पति–भूपति की कार्यव्यस्तता और अपनी सहज उत्कण्ठा की तटस्थ उपेक्षा से व्यग्र होकर उसके फुफेरे भाई अमल के साथ हास–परिहास करने लगती है। देवर अमल में साहित्य–रचना की रुचि जगाकर वह इस आकस्मिक मनोविनोद के अवसर की इतनी अभ्यस्त हो जाती है कि अमल पर अपना एकाधिकार समझने लगती है। अमल की रचनाओं को पढ़ते–समझते हुए स्वयं भी लेखरचना करने लगती है जिसका प्रयोजन आत्मतोष से अधिक अमल को प्रसन्न कर स्वयं सन्तुष्ट होना होता है। आगे चलकर अमल की तटस्थता से उसकी अपेक्षा आहत होती है और उसका साहित्य–नीड़ नष्ट हो जाता है। समयक्रम में विपरीत परिस्थिति से आहत होकर भूपति जब सर्वात्मना समर्पणभाव से उसकी शरण में आता है तो इस अनुभूति से बेचैन हो जाता है कि चारुलता की उसमें रुचि नहीं और वह अध्ययन के लिए विदेश गये अमल के लिए विक्षिप्त–सी होकर दाम्पत्य मर्यादाओं का उल्लंघन कर रही है। अन्ततः अलगाव की संवेदना को रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस प्रकार चित्र दिया है।

भूपति ने कहा – ''तुम्हें यदि सूना–सूना लगे तो मुझे लिखना, मैं चला आऊँगा''। विदा लेकर भूपति द्वार के पास पहुँचा तब सहसा दौड़कर चारु ने उसका हाथ पकड़ लिया। कहा ''मुझे संग ले चलो, मुझे छोड़कर मत जाओ।"

भूपति जाते–जाते सहसा रुककर चारु के मुख की ओर देखता रहा। मुट्ठी शिथिल पड़ने के कारण चारु के हाथ से भूपति का हाथ छूट गया। भूपति चारु के पास से हटकर बरामदे में खड़ा हो गया।

भूपति समझ गया कि अमल के वियोग की ज्वाला जिस घर को जला रही है, चारु दावानलग्रस्त हिरणी की तरह उस घर को छोड़कर भागना चाहती है। पर मेरी स्थिति उसने एक बार भी नहीं सोचकर देखी। मैं कहाँ भागूँ ? .....

भूपति ने आकर चारु से कहा, ''नहीं, यह मैं नहीं कर सकूँगा।"

कुछ ही देर में चारु के मुख का रंग सारा खून उतर जाने के कारण कागज की तरह सफेद हो गया। चारु ने चारपाई को मुट्ठी से कस कर पकड़ लिया। उसी समय भूपति बोला – ''चलो चारु, मेरे साथ चलो।"

''नहीं, रहने दो" चारु बोली।

और यहाँ यह लघु उपन्यास समाप्त होता है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर सम्पन्न आभिजात्य वर्ग में जन्म लिये थे। देखभाल के लिए भृत्यों–परिचारकों की व्यवस्था थी। हर वर्ग के बालकों के साथ उन्हें मिलने–जुलने और खेलने की स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त थी। खिड़की से बाहर स्वच्छन्द शैशव का जो दृश्य उन्होंने देखा, उसको अपनी जीवनी में पिरोया। उस स्वच्छन्द शैशव–संकुल में क्रीड़ा के सम्मोहन से वे मुक्त नहीं हो सके और ''बड़े होकर" ''डाकघर" के उस असाध्य रोग से पीड़ित, विवश अमल की उत्कण्ठा में मुखर हो उठे जो पालक पिता माधव के संरक्षण में चिकित्सकों के परामर्श से एक कक्ष में रह रहा है जिससे बाहर जाने की उसे अनुमति नहीं है।

दो अंको के इस नाटक में प्रथम अंक में वह खिड़की पर बैठा–बैठा बाहर की दुनिया को निहारता

है, स्वच्छन्द आकाश में पंछी की तरह उड़ना चाहता है। पहाड़ की चोटी पर चढ़ते चरवाहे को देखता है। सोचता है.... मैं भी बड़ा होकर पहाड़ की चोटी पर चढ़ूँगा। दही बेचने वाला गुजरता है तो पूछ बैठता है – तुम कहाँ से आते हो? ''पहाड़ी के नीचे नदी किनारे वाले गाँव से।" अमल के मन में लालसा उमड़ती है– मैं भी ठीक होकर 'बड़ा होकर' दही बेचने वाला बनूँगा। गाँव में पेड़–पौधे होंगे, चिड़िया होगी.... कितना मजा आएगा। दही वाला उसे दही देता है। अमल कहता है, उसके पास पैसे नहीं हैं, बड़ा होकर पैसे चुका देगा। वह गाने लगता है, दही–दही, मीठी दही। वह पूछता है–मैं दही बेचूँगा तो कैसे बेचूँगा, कैसे आवाज लगाऊँगा....। दृश्य आगे बढ़ता है। पिता माधव समझाता है–डाक्टरों की सलाह है, तुम आराम करो, बाहर के लोगों से बातें न करो। डाक्टर बड़ी–बड़ी किताबें पढ़ते हैं। अमल भी मोटी–मोटी किताबें पढ़ेगा और विद्वान् बनेगा। लेकिन अमल प्रतिवाद करता है– "I don't want to be learned ..... I love to talk to strangers."

दृश्यपटल पर लालटेन हाथ में लिए चौकीदार और फिर डाकिया आता है। अमल के पूछने पर बताता है कि तुम्हारी खिड़की के सामने राजा ने सुनहरे झंडे वाला बड़ा डाकघर खोल रखा है; बहुत सारे डाकिये हैं जो राजा की चिट्ठियाँ पहुँचाया करते हैं। अमल सोचता है– वह भी बड़ा होकर डाकिया बनेगा– I shall be the king's postman when I grow up" और फिर डाकिए से पूछता है –

क्या राजा उसे भी चिट्ठी लिखेंगे ? .....लेकिन उसे तो पढ़ना–लिखना आता नहीं.....अच्छा, आन्टी जो रामायण पढ़ा करती हैं, उसकी चिट्ठी पढ़कर सुना देंगी। पर डाकिया उसका घर भूल तो नहीं जाएगा? वह नगरप्रमुख से बात करना चाहता है ताकि उसे पता रहे कि माधव के घर खिड़की पर अमल बैठता है।

फूल बेचने वाली सुधा आती है। पायल की मधुर आवाज अमल को भाती है। सुधा उसे फूल देती है तो कहता है– ''घर लौटते समय प्रतिदिन उसे फूल देना भूल तो नहीं जाएगी–बड़ा हो जाऊँगा तो फूल के पैसे दे दूँगा।''

बाहर बच्चों को देखकर उन्हें अपने खिलौने देकर खिड़की के पास ही खेलने को कहता है।

दूसरे अंक में अमल और अधिक क्षीण होकर बिस्तर पर आ जाता है। खिड़की बन्द हो जाती है। जफर नाम का फकीर उसकी चारपायी के पास है। अमल को पता चलता है कि वह तोतों के दीप से आया है जहाँ हरियाली है, पंछी हैं। उसका मन उत्कंठित हो जाता है – "wish I were a squirrel !" फिर फकीर से पूछता है–

''क्या तुम राजा को जानते हो? राजा से कह दो कि वह अमल को डाकिया बना दे, वह घर पर बैठे रहना नहीं चाहता।" उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है। उसके दर्द का अहसास कम हो रहा है। चिकित्सक बताते हैं कि यह लक्षण ठीक नहीं। राजा का दूत आकर उसे सन्देश देता है कि राजा उसे देखने आएँगे। राजा का डाक्टर आकर खिड़की खुलवा देता है। खुले में अमल विश्राम का अनुभव करता है। माधव पूछता है–राजा आएँगे तो क्या माँगोगे? अमल का उत्तर है–''राजा से कहूँगा कि वे मुझे डाकिया बना दें"। धीरे–धीरे अमल सो रहा है, शान्त हो रहा है। सुधा फूल लेकर आयी है, वह जानना चाहती है–अमल कब जगेगा। चिकित्सक बताता है–जब राजा आकर पुकारेंगे, तभी जगेगा। सुधा डॉक्टर से

कहती है कि वह उसके कान में बोल दे– सुधा उसे भूली नहीं– "Tell him, Sudha has not forgotten him" और फूल देकर चली जाती है।

1992 में लिखे गये बंगला भाषा के इस नाटक **'डाकघर'** का 1914 में अंग्रेजी में रूपान्तरण किया देवव्रत मुखर्जी ने। किसी समालोचक ने टिप्पणी की थी–कालिदास और शेक्सपीयर जो नहीं कर सके, वह टैगोर ने अमल को रंगमंच पर लाकर कर दिया। वस्तुतः अमल की जिजीविषा में कवि ने संवेदना की उस गहराई को माप लिया है जिसके संकेतों और प्रतीकों से गहरा कोई मार्मिक प्रसंग नहीं रह जाता।

1919 में पंजाब में इसकी प्रस्तुति से पं0 मदन मोहन मालवीय, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी तथा एनी बेसेण्ट अत्यन्त अभिभूत हुए। 1968 में वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में प्रो0 अशोक चटर्जी शास्त्री के निर्देशन में इसके संस्कृत रूपान्तरण की रंगमंचीय प्रस्तुति हुई।

''कर्ण एण्ड कुन्ती" में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने ऐतिहासिक तथ्यों के संवेद्य पक्षों को उद्घाटित किया है तो 'द मदर्स प्रेयर' में गान्धारी का क्षोभ प्रचण्ड रूप में प्रकाशित हुआ है जब सत्यनिष्ठ पाण्डवों के निर्वासन के लिए दुर्योधन को अपराधी मानते हुए वह पति से दुर्योधन के परित्याग के लिए प्रार्थना करती है किन्तु धृतराष्ट्र जब उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर देता है तो वह अपने कुल के विनाश की भविष्यवाणी करती है।

''नन्दकिशोर कुछ दीवाना–सा था। उसको विज्ञान का नशा था। .....जर्मनी से, अमेरिका से वह इतने कीमती पुर्जे लाया करता था जो शायद ही भारत के बड़े–बड़े विश्वविद्यालयों में मिलते थे। इस ग्राही के मन में यही वेदना पीड़ा देती थी कि भारत कितना बदनसीब है। इस अभागे देश में ज्ञान के भोजन की जूठन, सस्ते खाने परोसे जाते हैं..... हमारे लड़के पाठ्यक्रम के सूखे पन्नों से जूठन बटोर ले जाते हैं..... ''हमारे दिमाग में काफी शक्ति है लेकिन जेब की शक्ति नहीं है।"

घायल कुत्ते की देखभाल करती मोहिनी का अध्यापक के प्रति मार्मिक व्यंग्य इस प्रकार व्यक्त हुआ है –

''देखिए प्रोफेसर साहब, ...इसे बचाये रखने में मेरा दिन गुजर जाता है, धर्म–कर्म करने के लिए तो मुझे बकरी के गले में रस्सी डालकर उसे काली के स्थान पर ले जाना नहीं पड़ता। तुम्हारे जीवविज्ञान के अंधे–लंगड़े खरगोश बच्चों के इलाज के लिए मैंने एक अस्पताल खोलने का इरादा किया है।"

लगभग 50 नाटकों, लघु उपन्यासों, निबन्धों, कथाओं और कविताओं में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सामान्य–सी दीखने वाली जनसामान्य की वेदना की नदी में उतर कर उसका तलस्पर्श किया है तथा जनमानस को उसकी अनुभूति करायी है। बंगसमाज ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष इस अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के साहित्यकार की सर्जना से गर्वोन्नत है।

रत्नाकरकृत 'हरविजय' महाकाव्य में भक्तिप्रवाह

विकास कुमार उपाध्याय
शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग

धर्मार्थकामोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति प्रीतिं कीर्तिं च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।[1]

आचार्य भामह के द्वारा उक्त काव्यप्रयोजन को ध्यान में रखते हुए राजानक रत्नाकर अपनी विदग्धता को प्रस्तुत करते हुए हरविजय महाकाव्य का प्रणयन करते हैं, जिसमें शिव के प्रति अपने भक्तिप्रवाह के असीमज्ञान का अवलम्बन करते हुए प्रवाहित करते हुए, प्रतीत होते हैं। अन्धकासुर पर शिव की विजय की लघुकथा का आलम्बन प्राप्तकर समस्त काव्यतत्त्व को आलोडित करते हुए, विचित्रमार्गी काव्य की परमसीमा का अवलोकन कराने वाले रत्नाकर अपने हृदय की कोमलता तथा ज्ञान की असीमता को प्रस्तुत करते हुए, परमशैव भक्त के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। रत्नाकर कश्मीर के मूल निवासी थे। अतः इनके काव्य में भी कश्मीरी शैव दर्शन एवं शैवशाक्ततन्त्रों का स्पष्ट छाप परिलक्षित होता है। रत्नाकर के द्वारा वेदों, पुराणों एवं विविधशास्त्रों का गहन अनुशीलन किया गया था, जिसकी छाया हरविजय में परिलक्षित होती है। ऋतुओं द्वारा शिव के स्तुति प्रसंग में 'तस्य वाचकः प्रणवः' इस श्रुतिवाक्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

श्रुतयः पदं परममामनन्ति यं बहुवक्त्रपादपि च योऽभिधीयते।
अधिगम्य यं पुनरुदेति नो जनः प्रणवस्तवैव भगवन्स वाचकः।। 2

जिस परमतत्त्व को शास्त्रों में सिद्धयोगियों द्वारा 'नेति नेति' कहकर बहुधा प्रतिपादित किया गया है, उसी परमतत्त्व को शिवरूप में प्रतिपादित करते हुए रत्नाकर कहते है–

प्रथिताः परापरदृशः पुराविदः कथयन्ति विश्वनुत! नेति नेति यत्।
सकलैर्विनाकृतमुपाधिसाधनैः परमं तदैव तव तत्त्वमद्भुतम्।।[3]

ईशावास्योपनिषद् के मंत्र

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैतद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।[4]

के भावों को अपने शब्दों में अभिव्यक्त करते हुए, शिवस्वरूप के लालित्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि हे शिव! एक रूपता को धारण करते हुए भी बहुरूप वाले हो, स्थिर धर्मता को प्राप्त होकर भी गतिशील हो, सम्पूर्ण आकाश में स्थित होते हुए भी अत्यन्त अल्पस्थान में रहने वाले हो तथा पास होते हुए भी अत्यधिक दूरस्थता को प्राप्त होते हो।

बहुरूप एव दधदेकरूपतां स्थिरधर्मतामुपगतोऽपि गत्वरः।

नभसि स्थितोऽप्यनतिवृत्तभूमिकः, सविधास्पदोऽपि भजसे विदूरताम्।। [5]

ईश्वर के परस्पर विरूद्धधर्मिता को स्पष्ट करने वाली श्रुति–

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।। [6]

का साक्षात् निदर्शन कराते हुए कहते हैं–

न गतिस्तवास्ति सुरनाथ नागतिर्न बहिर्न चान्तरवभाससे क्वचित्।

द्रव्यवभासशून्यतथतावलम्बनः प्रतिभासि नाननुगृहीतचेतसाम्।। [7]

भगवान् शंकर के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए रत्नाकर सभी शास्त्रों के प्रतिपाद्य के रूप में शिव को ही प्रतिष्ठित करते हुए प्रतीत होते हैं। सांख्य दर्शन के पुरुष को शिवरूप में स्वीकार करते हुए कहते है–

प्रकृतेः पृथग्विकृतिशून्यतां गतः

प्रतिषिद्धवस्तुगतधर्मनिष्क्रियः।

पुरुषस्त्वमेव किल पंचविंशकः।

स्फुटचूलिकार्थवचनैर्निगद्यसे।। [8]

योगशास्त्रप्रतिपादित **''क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः''** [9] को भी शिव के रूप में ही अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–

दधतीह कर्मफलभोगवर्जिते सकलार्थतत्त्वविदि पुंविशेषताम्।

त्वयि शब्दमीश्वर इति व्यवस्थितं कथयन्त्यनन्यविषयं मनीषिणः।। [10]

इसी प्रकार वैयाकरणों के शब्दब्रह्म, योगियों के परासम्पत्, जीवों के प्राणधारक वायु, नैयायिको एवं वैशेषिकों के अनुमेयपदार्थ तथा वेदान्तियों के सच्चिदानन्दमय एक ब्रह्म के रूप में शिव को ही प्रतिष्ठित किया गया है। जैन, बौद्ध चार्वाकादि नास्तिक अथवा आस्तिक सभी जिस परमतत्त्व को प्रतिपादित करते हैं, उस परमतत्त्व को शिव के रूप में प्रतिष्ठत किया गया है।

हरविजय महाकाव्य में विद्यमान भक्तिप्रवाह पूर्णतः प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धान्तों से निर्मितपथ पर प्रशस्थ होता हुआ प्रतीत होता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन में पति, पशु तथा पाश इन तीन तत्त्वों पर ही सम्पूर्ण सिद्धान्त आश्रित है। इसलिए इसे त्रिकदर्शन भी कहते हैं। सच्चिदानन्द ब्रह्म ही पति है, जब वह अपने इच्छा, ज्ञान एवं क्रियाशक्ति के द्वारा स्वयं को संकुचित करता है तब वही पशु, अणु, जीव या पुरूष कहलाता है। यह पति या ब्रह्म जिन तीन मलों आणव, कर्म व मायीय से स्वयं को आच्छन्नकर माया से आवृत संसारी जीव या अणु कहलाता है, उसे ही पाश कहते हैं। प्रत्यभिज्ञा के प्रत्येक सिद्धान्तों को रत्नाकर ने अपने शब्दों में व्याख्यायित किया है। उदाहरणस्वरूप कहते हैं– ''हे सुरनाथ! प्रकृति, पुमान्, तथा प्रणव ये तीनों कूप, घट एवं रज्जु की तरह स्थित हैं। करणप्रपंच से रहित, ऊपर स्थित तुम दृढ़ अद्भुत अणु को ऊपर खींचते हो।''

प्रकृति : पुमान् प्रणव इत्यमी त्रयः, सुरनाथ! कूपघटरज्जुवत् स्थिताः।
अपकर्षसि त्वमुपरि स्थितो दृढं, करणप्रपंचरहितोऽणुमद्भुतम्।। [11]

यद्यपि रत्नाकर परमशैव भक्त थे परन्तु अन्य किसी भी मत या सम्प्रदाय का अनादर नहीं करते थे। शास्त्रों में वर्णित हरि एवं हर के अभेद को पूर्णतः स्वीकार करते हुए शिव के स्तुतिवर्णन क्रम में विष्णु को कभी नहीं विस्मृत करते है। ग्रन्थ के आरम्भ में हर के स्तवन के अनन्तर हरि का स्मरण करते हुए उनके नृसिंहस्वरूप को प्रस्तुत करते है।

जृम्भाविकासितमुखं नखकर्षणान्तराविष्कृतप्रतिमुखं गुरुरोषगर्भम्।
रूपं पुनातु जनितारिचमूविमर्शमुद्वृत्तदैत्यवधनिर्वहणं हरेर्वः।। [12]

इसीप्रकार यथास्थान पर हरि के मोहनी, वराह, कूर्म आदि अवतारों का निदर्शन किया गया है।

ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्।
उभयोरन्तरं यो वै जानाति न मतो मम।। [13]

इस आशय को परिपुष्ट करने वाले अनेक स्थल दिखाई पड़ते हैं। जैसे बारहवे सर्ग में अट्हास कहता है कि ''सृष्टि के आरम्भ में विष्णु के रूप में विद्यमान इस शंकर के ही नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई –

मुरद्विषो नाभिसरोजकर्णिकाविटंकपीठः समभूच्चतुर्मुखः।।[14]

रत्नाकर ने शिव एवं शक्ति के स्वरूप में ऐक्य स्थापित करते हुए शैवशाक्त तन्त्र के सिद्धान्तों को ही पुष्ट किया है। यदि शिव महादेव है तो शक्ति महादेवी है। जिस प्रकार जननी एवं जनक के बिना सन्तति की उत्पत्ति नहीं होती उसी प्रकार शक्ति एवं शक्तिमत् शिव के बिना जगत् की उत्पत्ति सम्भव नहीं है।

शक्ति के बिना शिव शव समान होता है। कहा भी गया है–

यथा शिवस्तथा देवी यथा देवी तथा शिवः।
नानयोरन्तरं विद्याच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव।।
एवं परस्पराक्षेपा शक्तिशक्तिमतोः स्थिता।
न शिवेन विना शक्तिर्न शक्त्या च विना शिवः।। [15]

हरविजय के 47वें सर्ग में चण्डीस्तुति के प्रसंग में सम्पूर्ण शैवशाक्तंत्र के सिद्धान्तों के द्वारा पाण्डित्य का परिचय देते हुए विगलिताश्रुप्रवाहों के कारण हृदय की कोमलता को अनभिव्यक्त करने में विफल महाकवि रत्नाकर काव्यशास्त्रीय तत्त्वों का पूर्ण परिपाक प्रस्तुत करते हुए काव्यजगत् को महिमामण्डित करते हुए प्रतीत होते हैं। कहते हैं– हे देवि! जो तत्त्व अभिन्न होते हुए भी भिन्न प्रतीत होता है, जो हृदय में रहते हुए भी आनन्द रूप अमृत के समान प्रतीत होता है, वह तत्त्व तुम ही हो। जो तत्त्व दिवाकर या अग्नि के द्वारा मलिन नहीं किया जा सकता, जिसके प्रकाश से सभी प्रकाशित होते हैं, जिसे लोग पराप्रकृति के नाम से जानते हैं जिसे वैयाकरण स्फोट कहते हैं, नैयायिक प्रमाणादि षोडश पदार्थ के रूप में प्रतिपादित करते हैं, जिससे इस जगत् की उत्पत्ति होती है, जिससे वागीश्वरी प्रगट होती है, जिसके

मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, कटि प्रदेश से अन्तरिक्ष उत्पन्न होता है, वह तत्त्व तुम ही हो।[16] लोहित शुक्लवर्ण वाली प्रकृति तुम ही हो–

ब्रह्माप्रजापतिरवक्षदृगादिवर्त्म,
यद्वह्विवाततरणीः किल यज्ञसिद्धयै।
तस्मिन्नुशन्ति भवतीं भुवनस्यहेतु–
मेकामजां जननि! लोहितकृष्णशुक्लाम्।। [17]

इस प्रकार शक्ति के विविधस्वरूपों का विविधभावों से वर्णन करते हुए शिवशक्ति के ऐक्य को प्रतिपादित करते हैं।

संक्षेपतः कह सकते हैं कि रत्नाकर परमशैवभक्त होते हुए भी अन्य सभी मतों को स्वीकार करते हैं तथा प्रत्येक सिद्धान्तों द्वारा प्रतिपादित परमतत्त्व के रूप में शिव को उपस्थापित करते हैं। द्वैत तथा अद्वैत दोनों के सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए भक्तिपथ में द्वैत की लालिमा को अत्यधिक रुचिकर रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनके भक्ति में न केवल ज्ञान की दुरूहता है बल्की हृदयपक्ष की सरसता का भी मंजुलसामंजस्य परिलक्षित होता है।

सन्दर्भग्रन्थ

1. काव्यालंकार 1/2
2. हरविजय 6/24
3. हरविजय 6/
4. ईशावास्योपनिषद् 4
5. हरविजय 6/48
6. ईशावास्योपनिषद् 5
7. हरविजय 6/52
8. हरविजय 6/18
9. पातंजलयोगसूत्र, समाधिपाद 24
10. हरविजय 6/21
11. हरविजय 6/138
12. हरविजय 1/2
13. शिवदृष्टि 9/55
14. हरविजय 12/65
15. शिवपुराण, वायवीय संहिता उ0 4/9,12
16. हरविजय 47/79–92
17. हरविजय 47/103

श्रीमद्भागवतमहापुराण में वर्णित गुण–दोषव्यवस्था का रहस्य

अंशिका पाण्डेय
शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग

सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थ तथा प्रत्येक प्राणी गुण–दोष की सीमा में बद्ध होते हैं। प्रत्येक पदार्थ के प्रति हान, उपादान अथवा उपेक्षा की दृष्टि होती है, जो गुणदोष का आकलन करके ही निर्धारित की जाती है। गुण–दोष का निर्धारण भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण तथा पृष्ठभूमि के आधार पर किया जाता है।

किसी वस्तु की उत्कृष्टता वस्तु का गुण है तथा अपकर्ष/निकृष्टता दोष है। दोषपूर्ण वस्तु किसी को भी प्रिय नहीं होती है। प्रत्येक प्राणी में गुणवान् पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा तथा दोषपूर्ण पदार्थों से विरक्ति ही दोषमुक्ति तथा गुणाधान में सहायक होती है। अर्थात् जब व्यक्ति दोषयुक्त पदार्थ को दूर करने तथा गुणप्रद तत्त्व को अपनाने का आकांक्षी होता है, तभी वह दोषों का निराकरण तथा गुणों का संवर्द्धन करता है।

शास्त्रकारों ने गुण–दोष पर अपनी–अपनी प्रतिभा के आधार पर सम्यक् चिन्तन किया है। गुण–दोष का मानदण्ड देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी, सामर्थ्य, बुद्धि तथा वैभव को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है। 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' के एकादश स्कन्ध के अध्याय 21 में भगवान् ने गुणदोष के रहस्य का वर्णन उद्धव के समक्ष किया है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि गुण–दोष की प्रयोजनीयता क्या है अर्थात् किसी पदार्थ का गुणदोष क्यों ध्यान में रखा जाता है ? भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका उचित समाधान भागवतपुराण में बताया है–

देशकालादिभावानां वस्तूनां मम सत्तम।
गुणदोषौ विधीयेते नियमार्थं हि कर्मणाम्।।

(11/21/7)

अर्थात् देश, काल, फल, निमित्त, अधिकारी और धान्य आदि वस्तुओं के गुणदोषों का विधान भी मेरे (श्रीकृष्ण) द्वारा इसीलिए किया गया है कि कर्मों में लोगों की उच्छृंखल प्रवृत्ति न हो, मर्यादा का भंग न होने पाये। सर्वप्रथम देशविषयक दोष का उल्लेख किया गया है–

अकृष्णसारो देशानामब्रह्मण्योऽशुचिर्भवेत्।
कृष्णसारोऽप्यसौवीरकीकटासंस्कृतेरिणम्।।

(11/21/8)

अर्थात् देशों में वह देश अपवित्र है जहां कृष्णसार मृग न हो और जिसके निवासी ब्राह्मण भक्त न

हों। पुराकाल में यज्ञादि धार्मिक कार्यों को सर्वप्रमुख माना जाता था और यज्ञ कार्य में आसन हेतु अत्यन्त पवित्र कृष्णसार मृग के चर्म का प्रयोग किया जाता था, जो पवित्र होता था। अतः जहाँ कृष्णसार मृग निवास करते थे, वह भूमि पवित्र तथा धार्मिक कार्यों के लिए उपयुक्त मानी जाती थी। इसी तरह ब्राह्मण ही यज्ञ, अध्यापन आदि आध्यात्मिक कार्य करते हैं, अतः उनकी भक्ति को प्रमुखता प्रदान की गयी है। किन्तु ये दोनों वस्तु होने पर भी कीकट देश, ऊसर और संस्काररहित स्थान अपवित्र होता है। कीकट शब्द के अनेक अर्थ हैं। कीकट का अर्थ घोड़ा, दरिद्रप्रदेश, अनार्य लोगों का देश, अथवा कृपण देश है। यहां कीकट का अर्थ दरिद्र कहना अधिक तर्कसंगत है क्योंकि दरिद्रता अथवा राजा की कृपणता धार्मिक कार्य में बाधक होती है। समय की शुद्धता का रहस्य बताते हुए कहते हैं–

कर्मण्यो गुणवान् कालो द्रव्यतः स्वत एव वा।
यतो निवर्तते कर्म स दोषोऽकर्मकः स्मृतः।।

(11/21/9)

अर्थात् जिसमें कर्म करने योग्य सामग्री मिल सके तथा कर्म भी हो सके, वही समय गुणवान् है। स्वाभाविक या आगन्तुक दोष के कारण जिसमें कर्म न हो सके, वह समय अशुद्ध है। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि यह अकर्मण्यता की वृद्धि करता है।

पदार्थों के गुणप्रद और दोषयुक्त होने का निर्धारण भी 'भागवतपुराण' में बताया गया है–

द्रव्यस्य शुद्धचशुद्धी च द्रव्येण वचनेन च।
संस्कारेणाथ कालेन महत्त्वाल्पतयाथवा।।

(11/21/10)

द्रव्य के दोष–गुण में विद्यमान गुणवत्ता का निर्धारण उसके संसर्ग पर निर्भर करता है। किसी पात्र में यदि जल आदि पदार्थ हैं तो वह शुद्ध है और अगर उसमें मूत्रादि पदार्थ हो तो वह अशुद्ध होता है। किसी वस्तु की शुद्धि–अशुद्धि में शंका का निराकरण ब्राह्मण के वचनों से होता है। पुष्प आदि वस्तुएँ जल छिड़कने से शुद्ध तथा सूंघने से अशुद्ध होती हैं। बासी भोजन अशुद्ध होता है एवं तत्काल पकाया भोजन शुद्ध होता है। पदार्थों के गुण–दोष महत्त्व और अल्पत्व पर भी निर्भर करते हैं, जैसे छोटे गड्ढे के जल अशुद्ध होते हैं तथा बड़े जलाशय, नदी इत्यादि के जल शुद्ध होते हैं।

इस प्रकार यह कह सकते हैं कि पदार्थों का गुणदोष द्रव्य, वचन, संस्कार, समय तथा महत्त्व और अल्पत्व से निर्धारित होता है।

पुनः शक्ति, अशक्ति, बुद्धि तथा वैभव के अनुसार भी गुण्दोष की व्यवस्था होती है–

शक्त्याशक्त्याथवा बुद्धया समृद्धया च यदात्मने।
अघं कुर्वन्ति हि यथा देशावस्थानुसारतः।।

(11/21/11)

अभिप्राय यह है कि धनवान् का सामर्थ्य निर्धन से बढ़कर होता है, अतः उसके दान आदि कर्म तदनुरूप होने चाहिए। निर्धन की शक्ति मुट्ठी भर अन्न तक ही सीमित है, अतः उसका उतना ही दान कोटि

पदार्थों के दान के बराबर है। शारीरिक रूप से बलवान व्यक्ति में शारीरिक एवं मानसिक कार्य की क्षमता अधिक होती है, अतः एक निर्बल की अपेक्षा उसे शारीरिक श्रम अधिक करना गुण होगा, निर्बल की बराबरी में करना दोषपूर्ण होगा। बुद्धिमान् व्यक्ति कोई भी अनुचित कार्य करेगा तो उसकी निंदा होगी किन्तु मूर्ख के ऐसा करने पर उसकी उतनी निन्दा नहीं होगी। कोई तरुण व्यक्ति अमर्यादित कार्य करता है तो उसे सुधार का एक अवसर दिया जा सकता है, क्योंकि उसका विवेक एवं ज्ञान परिपक्व नहीं होता किन्तु अगर कोई वयोवृद्ध ऐसा करता है तो वह घृणा का पात्र बनता है। अतः एक ही कार्य भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में कम या अधिक गुण या दोष से युक्त होता है।

पदार्थों की शुद्धता के विषय में भी विस्तृत विवेचन 'भागवतमहापुराण' में किया गया है।

धान्यदार्वस्थितन्तूनां रसतैजसचर्मणाम्।
कालवाय्वग्निमृत्तोयैः पार्थिवानां युतायुतैः।।

(11/21/12)

अन्न, लकड़ी, हाथी दाँत, सूत्र, मधु, लवण आदि हवा लगने से समय पर अपने आप शुद्ध हो जाते हैं। इसी तरह तेल, घी, आदि रस, स्वर्ण, पारा आदि तैजस पदार्थ आग में जलाने या सूर्य के प्रकाश से दोषमुक्त हो जाते हैं। चर्म का पदार्थ जल में धोने से तथा मिट्टी से बने पदार्थ घर की दीवारें, घड़ा इत्यादि मिट्टी के लेपन से दोषमुक्त हो जाते हैं। किसी वस्तु में अशुद्ध पदार्थ लग जाये तो अगर सम्भव हो तो उस वस्तु को छील देना चाहिए अथवा मिट्टी आदि भी मल देने पर जब उस वस्तु में गन्ध या लेप न रहे और वह वस्तु अपने पूर्वरूप में आ जाये तो वह शुद्ध समझी जानी चाहिए।

पुनः भगवान् ने चित्त की, मंत्र और कर्म की शुद्धि के प्रसंग में उपदेश किया है–स्नान, दान, तप, वय, सामर्थ्य, संस्कार, कर्म और मेरे स्मरण से चित्त की शुद्धि होती है–

स्नानदानतपोऽवस्थावीर्यसंस्कारकर्मभिः।
मत्स्मृत्या चात्मनः शौचं शुद्धः कर्माचरेद् द्विजः।।

(11/21/14)

स्नान के पश्चात् चित्त प्रसादगुणयुक्त स्वच्छ तथा निर्मल हो जाता है, यह अनुभवसिद्ध है। इसीलिए गंगा के स्नान आदि को प्रमुखता दी गयी है।

दानवृत्ति मनुष्य के चित्त को उदार एवं त्यागी, परोपकारी बनाती है, जो चित्त को सुख, शान्ति तथा प्रसादगुण से युक्त रखती है, यही चित्त की शुद्धि है।

तपस्या द्वारा भी मनुष्य शरीर, इन्द्रिय तथा मन को संयमित करता है। अवस्थाविशेष भी चित्तशुद्धि करती है। उत्तम आचरण और अभ्यास अच्छे संस्कार को जन्म देते हैं। इसी तरह स्वकर्त्तव्य को सम्यक् रूप से करने वाला व्यक्ति भी अपने चित्त को शुद्ध करता है। भगवान् श्रीहरि का स्मरण भी चित्त की मलिनता दूर करके उसकी शुद्धि करता है। इन सभी प्रकारों को अपनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को अपने निर्धारित कर्मों को करना चाहिए। भागवतपुराण में श्रीकृष्ण ने मंत्र तथा कर्म की शुद्धि का हेतु बताते हुये कहा है–

मन्त्रस्य च परिज्ञानं कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्।
धर्मः सम्पद्यते षड्भिरधर्मस्तु विपर्ययः।।

(11/21/15)

गुरुमुख से उच्चरित मंत्र यदि शिष्य हृदयंगम कर ले तो वह मंत्र शुद्ध हो जाता है। सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को आराध्य को समर्पित कर देने पर प्रत्येक कार्य उनका हो जाने से शुद्ध हो जाता है, उसमें दोषाभाव हो जाता है, क्योंकि परमात्मा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव है।

साररूप में यह कहा गया है कि काल, पदार्थ, कर्त्ता, मंत्र और कर्म इन छः के शुद्ध होने से धर्म तथा अशुद्ध होने से अधर्म होता है।

दोष और गुण स्थिर तथा सदैव एकसमान नहीं होते हैं अपितु व्यक्ति, स्थिति, समय तथा आवश्यकता के अनुरूप ये परिवर्तित होते रहते हैं, ऐसा भी भागवतकार ने कहा है–

क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्यात् दोषोऽपि विधिना गुणः।
गुणदोषार्थनियमस्तद्विदामेव बाधते।।

(11/21/16)

इस तरह से गुणदोष का विधान एक ही वस्तु के विषय में किसी के लिए गुण और किसी के लिए दोष होने से गुण–दोष की वास्तविकता का खण्डन कर देता है, जिससे स्पष्ट होता है कि गुण–दोष का विधान यथार्थ न होकर कल्पित है। जो लोग पतित कहे जाते हैं वे अगर पतितों सा आचरण करेंगे तो उन्हें पाप नहीं लगेगा किन्तु श्रेष्ठ पुरुषों के लिए पापकृत्य सर्वथा त्याज्य होता है, जैसे कि गृहस्थों के लिए पत्नी का संग पाप नहीं है किन्तु संन्यासियों के लिए घोर पाप है।

गुणदोषों के निरूपण के पश्चात् भगवान साररूप में यह बताते हैं कि गुणदोषों से ऊपर उठकर ही कल्याणप्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है–

यतो यतो निवर्तेत विमुच्यते ततस्ततः।
एष धर्मो नृणां क्षेमः शोकमोहभयापहः।।

(11/21/18)

अर्थात् निवृत्तिरूप धर्म ही कल्याण का परम साधन है क्योंकि गुणदोषों से निवृत्ति वाला व्यक्ति शोक, मोह और भय से छुटकारा पा जाता है तथा पूर्ण अनासक्ति उसके परमतत्त्व प्राप्ति का द्वार खोल देती है।

आर्षकाव्य महाभारत में निरूपित भक्ति–भाव

अंकिता तिवारी
शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग

माता–पिता, गुरु तथा इष्टदेव के प्रति जो अखण्ड श्रद्धा तथा विश्वास है, उसी का नाम भक्ति है। यह भक्ति का भाव प्रायः जनसामान्य में दुर्लभ होता है। सन्त, महात्मा, महापुरुषों में ही इस भक्ति के दर्शन होते हैं अर्थात् जिस व्यक्ति में यह भक्ति अपने सर्वांगीण रूप में होगी, वह सामान्य पुरुष नहीं हो सकता। भक्ति का स्वरूप है, आत्मसमर्पण, श्रद्धेय के प्रति पूर्ण समर्पण। यह समर्पण का भाव तभी सिद्ध होगा जब श्रद्धेय के प्रति अखण्ड विश्वास होगा। यह अखण्ड विश्वास तब तक नहीं हो सकता जब तक हृदय में सांसारिकभोगों की लालसा विद्यमान है। राग–द्वेष से रहित और ज्ञान–जल से निर्मल हृदय में ही विश्वास का अंकुर फूटता है। सतत् अभ्यास के द्वारा जब यह विश्वास का अंकुर महावृक्ष का रूप धारण कर लेता है तब वही भक्ति के नाम से अभिहित होता है। सम्पूर्ण गुणों की सीमा ही भक्ति है। भक्त के हृदय में कभी किसी दुर्गुण का प्रवेश हो ही नहीं सकता, क्योंकि आराध्य के प्रति प्रेम–सागर से भक्त का हृदय इतना आप्लावित होता है कि किसी भी अनैतिक तत्त्व के प्रवेश की वहाँ सम्भावना ही नहीं होती। ज्ञान ही भक्ति का जनक है। ज्ञान से उत्पन्न हुई भक्ति ही हृदय में स्थायी रूप से निवास करती है। किन्तु यह भक्ति सम्पूर्ण शास्त्र–ज्ञान का निचोड़ भी है। भक्ति सम्पूर्ण ज्ञान का फल है। जिस ज्ञान में करूणा, दया, श्रद्धा, प्रेम का निवास नहीं है, वह ज्ञान नहीं अज्ञान है। ऐसे ज्ञान से मनुष्य का कल्याण नहीं हो सकता।

महाभारत में आदिपर्व के प्रारम्भ में ही महर्षि धौम्य के तीन शिष्य आरुणि, उपमन्यु और वेद की गुरुभक्ति का अत्यन्त सुन्दर प्रसंग आया है। आचार्य धौम्य ने प्रिय शिष्य उपमन्यु को गौओं को चराने के लिए नियुक्त किया था। आचार्य की आज्ञा से उपमन्यु दिन भर गौओं की रक्षा करते और सायंकाल गुरुगृह आकर उन्हें प्रणाम करते। गुरु ने देखा कि उपमन्यु इस समय खूब स्वस्थ हो गया है तो उन्होंने उससे उसकी जीविका के विषय में पूछा। उपमन्यु ने बताया कि वह भिक्षा के द्वारा अपनी जीविका चलाता है। यह सुनकर उपाध्याय ने कहा– वत्स! मुझे अर्पण किये बिना तुम्हें भिक्षा का अन्न अपने उपयोग में नहीं लाना चाहिए। उपमन्यु ने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। वह भिक्षा लाकर उपाध्याय को अर्पित करने लगा। कुछ समय पश्चात् पुनः उपमन्यु को यथावत् देखकर गुरु ने वही प्रश्न किया तो उपमन्यु ने बताया कि पहले लायी गयी भिक्षा आपको अर्पित करके पुनः दूसरी भिक्षा माँग लाता हूँ। गुरु ने उपमन्यु के इस कार्य को गृहस्थ तथा दूसरे भिक्षाजीवी लोगों की जीविका में बाधक बताकर उसपर प्रतिबन्ध लगा दिया। गुरु की आज्ञा मानकर उपमन्यु गौओं के दुग्धपान द्वारा जीविका निर्वाह करने लगा। किन्तु उपाध्याय ने बछड़ों की जीविका में बाधक कहकर इस प्रकार जीविका–निर्वाह का भी निषेध कर दिया। गुरु द्वारा सभी प्रकार से

जीविका बन्द कर दिये जाने पर उपमन्यु भूख से आकुल हो गया और आक के पत्ते चबा लिए। अत्यन्त तीक्ष्ण पत्तों के भक्षण से उपमन्यु के पेट में आग की ज्वाला उत्पन्न हो गयी और उसके आँखों की ज्योति नष्ट हो गयी। भटकते हुए वह कुएँ में गिर पड़ा। यद्यपि कालान्तर में गुरु की कृपा और अश्विनी कुमारों की स्तुति से उपमन्यु पुनः स्वस्थ एवं विभिन्न शास्त्रों का ज्ञाता हो गया किन्तु गुरु के प्रति उसकी यह अद्भुत भक्ति स्वयं में एक आदर्श रूप है।

वन्दनीय ब्रह्मर्षि गुरु शुक्राचार्य से संजीवनी विद्या प्राप्त कर बृहस्पति पुत्र तपस्वी कच ने गुरु के प्रति जो उद्गार प्रकट किया वह उनकी गुरु–भक्ति का चूड़ान्त निदर्शन है– ''मैं विद्यारहित था, ऐसी दशा में मेरे इन पूजनीय आचार्य ने जिस प्रकार मेरे दोनों कानों में मृत संजीवनी विद्यारूप अमृत की धार डाली है, इस प्रकार जो कोई दूसरे ज्ञानी महात्मा मेरे कानों में ज्ञानरूप अमृत का अभिषेक करेंगे उन्हें भी मैं उसी प्रकार अपना माता–पिता मानूँगा, जैसे गुरु शुक्राचार्य को मैं अपना माता–पिता मानता हूँ। गुरु के द्वारा किए गये उपकार को स्मरण कर शिष्य को चाहिए कि वह उनके प्रति कभी द्रोह न करे।''[1] इस संसार में जो मनुष्य सम्पूर्ण वेद के सर्वोत्तम ज्ञान को देने वाले, समस्त ज्ञान की निधि, पूज्य गुरू का; उनसे विद्या प्राप्त करके भी आदर नहीं करते, वे प्रतिष्ठाहीन होकर नरक में निवास करते हैं, कभी कल्याण के भागी नहीं होते।

तं मन्येऽहं पितरं मातरं च, तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन्।।

(आदि0 76/63)

ऋतस्य दातारमनुत्तमस्य निधिं निधीनामपि लब्धविद्याः।
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयं, पापां लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः।।

(आदि0 76/64)

धृष्टद्युम्न द्वारा आचार्य द्रोण का वध किये जाने पर अर्जुन ने जो विलाप किया, वह उनकी गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति को प्रकट करता है– ''आचार्य की प्राणरक्षा के लिए मैं बारम्बार पुकारता ही रह गया, किन्तु धृष्टद्युम्न ने धर्म को लात मारकर गुरु का वध कर ही डाला। क्या धृष्टद्युम्न ने उनसे अस्त्रविद्या ग्रहण नहीं की थी ? कृतघ्नता की भी कोई सीमा होती है। हमारे ऊपर जो सदैव पितृतुल्य स्नेह रखते थे, गुरु होने के नाते जो हमारे धर्मपिता ही थे, इस क्षणस्थायी राज्य के लिए हमने उन्हें अनाथ की तरह मार डाला।''

महाभारत में पाण्डुपुत्रों का धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती और गान्धारी के प्रति जो भाव रहा है, वह उनकी उत्कृष्ट भक्ति का परिचायक है। युधिष्ठिर ने सदैव पितृतुल्य अपने ताऊ धृतराष्ट्र की आज्ञा को स्वीकार किया है, भले ही वह आज्ञा उचित हो या अनुचित और उस आज्ञा के कारण उन्हें कितना भी कष्ट उठाना पड़ा हो। द्रौपदी के चीरहरण के पश्चात् जब धृतराष्ट्र ने पुनः पाण्डवों का राज्य लौटा दिया तो महाराज पाण्डुनन्दन उनकी आज्ञा प्राप्त कर इन्द्रप्रस्थ लौट गये और पुनः उनकी आज्ञा प्राप्त कर बीच मार्ग से ही हस्तिनापुर लौट आये तथा पुनः जुए के लिए सन्नद्ध हो गये, यह जानते हुए भी कि इसमें उनकी

अवनति निश्चित है। उनका एक ही कथन था– ''मेरे ताऊ पितृ–तुल्य पूज्य हैं, उनकी आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता।''[3] महाभारत में स्थान–स्थान पर पाण्डवों की विदुर, भीष्म और कुन्ती के प्रति भक्ति प्रकट हुई है।

जब युद्ध में भीष्मपितामह अपने भयंकर बाणों से पाण्डव सेना के भयंकर विनाश में तत्पर थे और दूसरी ओर अर्जुन उन पर प्रहार करने में शिथिलता बरत रहे थे, उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन की भर्त्सना की थी। तब पार्थ ने वासुदेव से कहा– ''देवकीनन्दन! कुरुकुल के पितामह, गुरुतुल्य पूजनीय, विशुद्ध–हृदय गंगा नन्दन भीष्म पर मैं कैसे प्रहार करूँ? माधव! बाल्यकाल में मैं उनकी गोंद में खेलता हुआ उनके वस्त्रों को धूल से मैला कर देता था। उन्हें तात्! पुकारता था।''

भगवान् श्रीकृष्ण पर पाण्डवों की असीम श्रद्धा और अखण्ड विश्वास था। श्रीकृष्ण के शांति प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने के पहले महाराज पाण्डुनन्दन ने उनसे कहा था– ''जनार्दन! आप ही हमारे भ्राता, सखा और प्राण हैं। आप ही हमारे सर्वस्व हैं। प्रभो! आप दोनों पक्षों की भलाई और हित को ध्यान में रखकर ऐसा प्रयत्न करें जिससे कि कुरुवंश का विनाश न हो। वासुदेव! आप हमें और कौरवों को भी अच्छी तरह जानते हैं। अतएव आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे यह युद्ध टल जाय।'' महाराज युद्धिष्ठिर के हृदय में भगवान् कृष्ण के लिए कितनी अगाध श्रद्धा थी, इसका निदर्शन हमें उनके इस वाक्य से मिलता है कि– ''उन्हें (युधिष्ठिर को) संसार की सम्पूर्ण सम्पत्ति, सब प्रकार का सुख, देवत्व और देवताओं का सम्पूर्ण ऐश्वर्य भी प्रसन्न नहीं कर सकेगा यदि कुरुराज की सभा में देवकीनन्दन का किसी भी प्रकार अपमान हो।''[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाभारत में अनेक स्थलों पर भक्ति–भाव का अनेक रूपों में प्रस्तुतीकरण किया गया है। यद्यपि महाभारत राजनैतिक परिदृश्यों का प्रमुखतया प्रस्तोता है, तथापि भारतीय जीवन के नैतिकमूल्यों का लेशमात्र भी अभाव इसमें दिखाई नहीं देता। सदाचार, सौहार्द्र, त्याग, भक्ति, श्रद्धा, सहिष्णुता आदि का मंजुल सामंजस्य इसमें दिखाई देता है।

अक्षद्यूते समाह्वनं नियोगात् स्थविरस्य च।
जानन्नपिक्षयकरं नातिक्रमितुमुत्सहे।।

(महाभारत/सभापर्व 76/4)

नहि नः प्रीणयेद् द्रव्यं न देवत्वं कुतः सुखम्।
न च सर्वामरैश्वर्यं तव द्रोहेण माधव।।

(महा0/उद्योगपर्व 72/84)

संस्कृतसाहित्य में धार्मिक एकता

शिवजी यादव
शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग

संस्कृतभाषा व उसका साहित्य अतिप्राचीन है। वेदों से लेकर अद्यावधि ग्रन्थों की एक विस्तृत श्रृंखला प्राप्त होती है, जिसमें यथास्थान धार्मिक एकता का वर्णन किया गया है। संस्कृतसाहित्य में धार्मिक एकता का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। धार्मिक एकता से ही समाज में शान्ति तथा सद्भाव की स्थापना होती है। धर्माचरण के बिना मनुष्यजीवन सुखमय नहीं हो सकता है। धार्मिक एकता की महत्ता का गुणगान सभी ग्रन्थों में समान रूप से किया गया है। 'धर्म' शब्द 'धृञ् धारणे' धातु के आगे मन् प्रत्यय लगाने से बनता है। इसकी व्युत्पत्ति तीन प्रकार से होती है–

1. ध्रियते लोकः अनेन इति धर्मः (जिससे लोक धारण किया जाय, वह धर्म है।)
2. धरति धारयति वा लोकम् इति धर्मः (जो लोक को धारण करे, वह धर्म है।)
3. ध्रियते यः स धर्मः (जो दूसरों को धारण किया जाय, वह धर्म है।)

महाभारत धर्म एवं संस्कृति का विशाल भण्डार है। इसके अनुसार धर्म का लक्षण–

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः।
यत् स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।[1]

धारण करने से लोग इसे धर्म कहते हैं। धर्म प्रजा को धारण करता है। जो धारण के साथ रहे, वह धर्म है, यह निश्चय है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'धर्म' बहुत व्यापक शब्द है।

'निरुक्त' में धर्म शब्द का अर्थ नियम बताया गया है। धर्म की यह परिभाषा जानने के पश्चात् जिज्ञासा होती है कि किन नियमों के अनुसार चलने से सुख की प्राप्ति होती है। लोक में भी कहते हैं– 'धनाद्धर्मं ततः सुखम्' (धन से धर्म होता है और धर्म से सुख होता है।) इहलौकिक व परलौकिक सुखों की प्राप्ति ही धर्म है। संसार में सभी लोग सुख के लिए ही प्रयत्न करते हैं और उसका साधन धर्म को ही बताया गया है। अतएव वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने धर्म का लक्षण करते हुये कहा है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।[2]

जिससे इस लोक में उन्नति और परलोक में कल्याण या मोक्ष की प्राप्ति हो, वह धर्म है। इस धर्म का मूल वेद है, मनु ने कहा है– **वेदोऽखिलो धर्ममूलम्।**[3] समस्त वेद अर्थात् ऋक्, यजुः, साम और अथर्व धर्म का मूल है। श्रीमद्भागवत में भी स्पष्ट रूप से कहा गया है –

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।[4]

वेद में कहा हुआ धर्म है और उससे विपरीत अधर्म है। वेदों में जिसकी प्रेरणा दी गयी है वह पदार्थ धर्म है–

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।[5]

अर्थात् वेदों के अनुसार कर्म करना धर्म है और निषिद्ध कर्म का न करना ही धर्म है। इसके अतिरिक्त धर्म को परिभाषित करते हुये मनुस्मृति में कहा गया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।[6]

उपर्युक्त पंक्ति में वेद, स्मृति या धर्मशास्त्र, सदाचार या सत्पुरुषों का आचरण और अपनी आत्मा की प्रसन्नता – ये चार धर्म के लक्षण बताये गये हैं। श्रुति और स्मृति में वर्णित सदाचार परमधर्म है। इसलिए अपने आत्मा को जानने वाला द्विज सदा सदाचार से युक्त रहे। सदाचार के द्वारा जीवन जीने की कला ज्ञात होती है। आचार–विचार धर्म के मूल तत्त्व हैं। मनुस्मृति में कहा गया है–

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन् सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः।।[7]

वेद में धर्म के तीन स्कन्ध भी बताये गये हैं–

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन् सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति।[8]

वेदों के अनुसार धर्म के तीन स्कन्ध या विभाग अथवा आधारस्तम्भ होते हैं। यज्ञ, अध्ययन व दान यह पहला स्कन्ध है। तप ही दूसरा स्कन्ध है। आचार्य कुल में रहने वाला ब्रह्मचारी, जो आचार्य कुल में अपने शरीर को अत्यन्त क्षीण कर लेता है, यह तीसरा स्कन्ध है। ये सभी पुण्यलोक के भागी होते हैं। ब्रह्म में सम्यक् प्रकार से स्थित अमृतत्व को प्राप्त होता है।

'धर्म' शब्द का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसके अन्दर अनेक अर्थ समाहित हैं। धर्म शब्द के पूर्व उपसर्गादि जोड़ देने से इसका रहस्य स्वतः प्रकट हो जाता है। यथा– धर्म शब्द में 'स्व' उपसर्ग जोड़ देने से नया शब्द स्वधर्म बनता है जिसका अर्थ अपना वर्णाश्रमादि धर्म है। उसी के पूर्व यदि 'पर' उपसर्ग जोड़ दिया जाये तो नया शब्द परधर्म बनता है। जिसका अर्थ अपने वर्णाश्रमादि धर्म को छोड़कर दूसरे पुरुष के वर्णाश्रम धर्म से है। पुनः धर्म शब्द के पूर्व में 'वि' उपसर्ग लगा दिया जाये तो नया शब्द विधर्म बनता है, जिसका अर्थ 'विगतः धर्मेण विधर्मः' अर्थात् जो अपने धर्म से च्युत हो जाये, वह विधर्म है। इसी प्रकार जब धर्म के पूर्व में 'कु' उपसर्ग लगाते हैं तो नया शब्द कुधर्म बनता है, जिसका अर्थ 'कुत्सितः धर्मः कुधर्मः' अर्थात् जो धर्म निन्दा के योग्य हो, वह कुधर्म है। जो धर्म दूसरे धर्म को बाधा दे, वह धर्म नहीं हैं अपितु कुधर्म है। जो धर्म समस्त धर्मों का अविरोधी है, वही यथार्थ धर्म है। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है–

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।[9]

अर्थात् स्वधर्म में मरना श्रेष्ठ है, परधर्म भयकारी है। समस्त प्राणियों का वही परमधर्म है, जिससे

ईश्वर में निष्काम, अटल और अचल भक्ति हो और जिसको करने से आत्मा प्रसन्न होती है।

धर्म से मनुष्य को बन्धन नहीं अपितु मोक्ष प्राप्त होता है। धर्मरूप नियम के द्वारा सृष्टिक्रिया संचालित होती है। इस सृष्टि के तीन गुण हैं– सत्त्व, रज और तम। ये तीनों गुण सृष्टि की समस्त वस्तुओं में विद्यमान हैं। इनमें रजोगुण से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, सत्त्वगुण से स्थिति और तमोगुण से संहार या प्रलय होता है। यह समस्त जगत् इन तीन अवस्थाओं के वशीभूत है। मनुष्य भी इनसे आबद्ध है। जीव जन्म लेता है, बढ़ता है और मरता है। इसी अवस्थाभेद से जीव की सृष्टि, स्थिति और मुक्ति भी स्पष्ट है। अतः धर्म वही है, जो इस क्रिया के स्वाभाविक नियमों के पालन में सहायता प्रदान करे तथा अधर्म वह है जो इस नियम में बाधा करे। जिस कर्म से तमोगुण तथा रजोगुण की निवृत्ति हो और सत्त्वगुण की वृद्धि हो, वही धार्मिक कर्म है और जिस कर्म से सत्त्वगुण की हानि और रजोगुण तथा तमोगुण की वृद्धि हो, यह अधार्मिक कर्म होगा। इन तीनो गुणों के लक्षण श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट किये गये हैं–

सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।।[10]

श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं– हे भरतवंशी अर्जुन! सत्त्वगुण सुख में आसक्त करता है, रजोगुण कर्म में प्रवृत्त करता है और तमोगुण ज्ञान को ढँककर प्रमाद, आलस्य और निद्रा में लगाता है। इस प्रकार सत्त्वगुण के विकास से मनुष्य का कल्याण स्वतः सिद्ध है। अतः सभी प्रकार के कर्मों को करने से पूर्व उसकी प्रकृति का ज्ञान अवश्य कर लेना चाहिये। सत्त्वगुण प्रधान कर्म ही धर्म है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी अधर्म है।

अतः धर्माचरण मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। धर्मज्ञान से ही मनुष्य को श्रेय तथा प्रेय का भेदज्ञान होता है। इसके फलस्वरूप मानव में स्व का अहं समाप्त होकर सर्वस्व कल्याण की भावना जागृत होती है। धर्म ही वह तत्त्व है, जो बिना किसी भेदभाव के सबका मंगल करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

सन्दर्भग्रन्थ

1. महाभारत, कर्णपर्व 69/58
2. वैशेषिकसूत्र 1/1/2
3. मनुस्मृति 2/6
4. श्रीमद्भागवत 6/1/44
5. जैमिनसूत्र 1/1/2
6. मनुस्मृति 2/12
7. मनुस्मृति 1/108
8. छान्दोग्योपनिषद् 2/23/1
9. गीता 3/35
10. गीता 14/19

ऋग्वेद में आयुर्वेद

प्रियंका
शोधच्छात्रा, संस्कृतविभाग

सभी लोगों की यह प्रबल इच्छा होती है कि वे प्रसन्नचित्त एवम् आनन्दपूर्वक रहें। कोई भी व्यक्ति आनन्दपूर्वक तभी रह सकता है जब उसका स्वास्थ्य उत्तम हो। प्राचीनकाल से ही मनुष्य आहार एवं निद्रा के साथ–साथ स्वास्थ्य के प्रति चिन्तनशील दिखायी देता है। अतः स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले रोगों और उसके निवारणार्थ औषधियों, चिकित्सा आदि की खोज में मनुष्य सदैव से प्रवृत्त रहा है। किसी भी समाज के प्रगतिशील होने में सबसे बड़ी विशेषता है कि उस समाज में रहने वाले लोग स्वस्थ हों, क्योंकि जब व्यक्ति स्वस्थ हेाता है तभी वह ज्ञान–विज्ञान, अपने नये–नये विचारों का आदान–प्रदान करता है और अपने समाज के बारे में सोचता है। यही कारण है कि विश्व के प्रचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में भी आयुर्वेद का उल्लेख प्राप्त होता है, जो आधुनिक आयुर्वेद का प्राचीनतम स्रोत है। भारत में प्राचीनकाल से ही आयुर्वेद को अत्यन्त महत्त्व दिया जाता रहा है। भारतीय ऋषि–मनीषियों का आयुर्वेदसम्बन्धी ज्ञान उच्चकोटि का था और वे अपने इस ज्ञान में निरन्तर वृद्धि करते गये। बाद में चरक, जीवक, सुश्रुत आदि महत्त्वपूर्ण आयुर्वेदाचार्य हुए, जिन्होंने आयुर्वेद पर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की है। उनमें रोगों के प्रकार, दुर्लभ औषधियों, जड़ी–बूटियों एवं उनके प्रयोग तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों का वर्तमान में भी विशिष्ट महत्त्व है।

ऐसा माना जाता है कि मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही रोगों की उत्पत्ति हो गयी थी किन्तु कुछ चिकित्साशास्त्रियों तथा आयुर्वेदाचार्यों का यह मानना है कि आयुर्वेद की उत्पत्ति मनुष्य की उत्पत्ति के पूर्व हो गयी थी। इससे आयुर्वेद की महत्ता एवं उपयोगिता सुनिश्चित होती है –

आयुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत्ततो विश्वानि भूतानि।

(काश्यपसंहिता)

आयुर्वेद –

चेतना, जीवितानुबन्ध आदि आयु के पर्याय हैं। शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इन चारों के संयोग को आयु कहते हैं। अतः इनमें से शरीर या मन आदि किसी एक के ज्ञान को आयुर्वेद नहीं कहा जा सकता है, अपितु सम्मिलित रूप से इन चारों के ज्ञान को आयुर्वेद कहा जाता है–

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वायुर्विन्दतीत्यायुर्वेदः।

अर्थात् जिसके द्वारा इस आयु के लिये हित–अहित, सुख–दुःख का ज्ञान तथा आयु का मान हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं। इसी प्रकार चरकसंहिता में भी कहा गया है–

हिताहितं सुखं दुःखम् आयुस्तस्य हिताहितम्।
मानं च तत्त्वं यत्रोक्तं आयुर्वेदः स उच्यते।।

(चरकसंहिता, सूत्राध्याय, 1.41)

चरकसंहिता में चरक ऋषि ने कहा है कि आयुर्वेदशास्त्र के दो उद्देश्य हैं– प्रथम, जो व्यक्ति रोग से पीड़ित है, उसे रोगों से मुक्त करना तथा जो स्वस्थ है, उसके स्वास्थ्य की रक्षा करना –

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्।
आतुरस्य विकारप्रशमनं च।।

(चरकसूत्र, अध्याय 30.2.6)

ऋग्वेद में अथर्व आदि संहिताओं तथा आयुर्वेदग्रन्थों के समान आयुर्वेद और चिकित्सासम्बन्धी विस्तृत जानकारी नहीं प्राप्त होती है, किन्तु ऋग्वेद का अध्ययन करने पर तत्कालीन समाज में प्रचलित आयुर्वेद और औषधियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में महत्त्वपूर्ण जड़ी–बूटियों, औषधीय पौधों एवं कुछ रोगों के विषय में बताया गया है।

ऋग्वेदकालीन संस्कृति में युद्ध बहुत प्रचलित था। जब आर्य मध्यएशिया से उत्तर–पश्चिम भारत की तरफ बढ़ते हैं तो वहाँ रहने वाले लोगों, जिन्हें अनार्य कहा जाता था, उनसे उनका युद्ध होता है। आर्य वैदिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग थे। ऋग्वेद में पदों को लेकर भी युद्ध होता था। दाशराज्ञ युद्ध ऋग्वेद का एक प्रसिद्ध युद्ध है जो विश्वामित्र एवं ऋषि वशिष्ठ के बीच पुरोहित पद को लेकर हुआ था। युद्ध किसी भी प्रकार का हो, उसमें जनक्षति होती है और लोग घायल होते हैं। अतः ऐसे वातावरण में वैद्य, औषधियों और आयुर्वेद का महत्त्व बढ़ जाता है। इसी कारण ऋग्वेद में आवश्यकतानुसार एक ही परिवार के सदस्य भिन्न–भिन्न व्यवसाय करते थे। ऋग्वेद के नवम मण्डल के ग्यारहवें सूक्त में ऋषि अपने पिता को भिषक् तथा अपनी माता को चक्की पीसने वाली बताता है–

कारुरहं ततो भिषगुपलप्रक्षिणि ननाः।

(ऋग्वेद, 9/112/23)

ऋग्वेद में जड़ी–बूटियों की सहायता से विभिन्न रोगों को दूर करने का ज्ञान रखने वाले को भिषक् कहा जाता था। ऋग्वेद में अश्विन् को भिषक् कहा गया है। रुद्र को 'भिषजां भिषक्तम' कहा गया है।[5] (2/23/40)। ऋग्वेद में वैद्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वैद्य हमेशा रोगी की खोज में रहता है। (ऋ0, 9/112/1)[6]

ऋग्वेद में उत्तम वैद्य का लक्षण बताते हुए कहा गया है कि उसके पाास सम्पूर्ण औषधियों का समुचित संग्रह होना चाहिये, अपने शास्त्र का उसे **साङ्गोपाङ्ग** ज्ञान होना चाहिये, रोगनिवारण की योजना का ज्ञान होना चाहिये तथा राक्षसों का नाश करने एवं रोगों का समूलोन्मूलन करने का सामर्थ्य होना चाहिये –

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समितावि व।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः।।

(ऋ, 10/97 /6)

चरक, सुश्रुत आदि के ग्रन्थों में भी इसी प्रकार से उत्तम वैद्य का लक्षण बताया गया है –

श्रुतेः पर्यवदातत्वं बहुशो दृष्टिकर्मता।
दाक्ष्यं शौचमिति ज्ञेयं वैद्ये गुणचतुष्टयम्।।

(चरक, सूत्राध्याय, 9.6)

ऋग्वेद में औषधियाँ वैद्य के आय का प्रमुख साधन हुआ करती थीं। इन औषधियों के सम्यक् उपयोग से वैद्य अपना जीवनयापन करता था–

उच्छुष्मा औषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।

(ऋ0, 10/97/8)

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 97वें सूक्त में भिषक् अपने पौधों और उसकी उपशामक शक्तियों की प्रशंसा करता है। ऋग्वेद में कहा गया है कि श्रेष्ठ वैद्य वे होते हैं, जो रोगी को औषधि दें –

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा।।

(ऋ0, 10/97/11)

अर्थात् जैसे राजा लोग समिति में एकत्र होते हैं, वैसे ही जिनके पास औषधियाँ हैं अथवा जो उन औषधियों का प्रयोग करना जानते हैं, उन्हीं बुद्धिमान् वैद्यों को चिकित्सक कहा जाता है, वे रोगों के विनाशकर्ता होते हैं।

ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 97वें सूक्त, औषधिसूक्त में वनस्पतियों की उत्पत्ति, कार्य और चिकित्सा में उनके उपयोग के विषय में वर्णन किया गया है–

इष्कृतिर्नाम वो माताऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ।।

(ऋ0, 10/97/9)

अर्थात् औषधियों, तुम्हारी माता का नाम इष्कृति (नीरोग करने वाली) है तुम लोग भी रोगों को दूर करने वाली हो, जो कुछ शरीर को पीड़ा देता है, तुम लोग उसे समाप्त कर दो। तुम रोगी को नीरोग करती हो।

औषधियाँ मनुष्य को सभी रोगों से निवृत्त कर देती हैं –

औषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः।।

(ऋ0, 10/97/3)

ऋषि औषधियों से प्रार्थना करते हैं कि औषधियों! मैं तुम्हें खोदकर निकालता हूँ, इसलिये मुझे नष्ट नहीं करना। जिसके लिये खोदता हूँ, वह भी नष्ट नहीं हो। हमारी जो द्विपद और चतुष्पद आदि सन्ततियाँ हैं, वे नीरोग रहें। ऋग्वेद के इस मन्त्र से औषधियों के क्षमता की जानकारी प्राप्त होती है –

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम्।।

(ऋग्वेद, 10/97/20)

ऋग्वेद में अश्विन् देवों को एक महत्त्वपूर्ण वैद्य माना गया है। ऋग्वेद में उनके द्वारा किये गये रोगों में औषधियों के प्रयोग और शल्यचिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है।

अंगप्रत्यारोपण –

अश्विन् देवों को शल्यचिकित्सा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त था। वे अस्थियों को जोड़ने की विद्या जानते थे तथा अस्थियों के टूट जाने पर उनके स्थान पर आधुनिक चिकित्सा के समान लोहे का प्रयोग करते थे। उनके द्वारा अस्थियों को जोड़ दिये जाने पर लोग तत्काल कार्यनिष्पादन करने योग्य हो जाते थे –

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।।

(ऋ0, 1/116/15)

ऋग्वेद में अश्विन् के कई ऐसे महान् कार्यों का वर्णन है, जो आज के चिकित्साक्षेत्र में भी शोध के विषय बने हुए हैं। अश्विन् अपने औषधियों के माध्यम से लोगों को नित्य तरुण एवं दीर्घायुष्य जीवन प्रदान करते थे। ऋग्वेद में इनके विषय में कहा गया है कि जिस प्रकार लोग शरीर से कवच उतार दिया करते हैं, उसी प्रकार इन्होंने वृद्धावस्था से अशक्त च्यवन ऋषि को वृद्धावस्था से मुक्त करके दीर्घायुष्य प्रदान किया –

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामईमतं द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम्।।

(ऋ0, 1/116/10)

वर्तमान में भारत–सरकार भी भारतीय आयुर्वेदिक ज्ञान को विकसित करने के लिये निरन्तर प्रयास कर रही है जिससे आयुर्वेद के प्रति लोकप्रियता बढ़ी है। 21वीं सदीं में जो एलोपैथिक औषधियाँ प्रयोग की जा रही हैं, अधिकांशतः वे सभी भारतीय परिवेश से बाहर बनायी गयी हैं जो हमारी जलवायु के अनुकूल न होने के कारण हानिकारक भी हो सकती हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि जो लोग आयुर्वेदिक परम्परा से जुड़े हैं वे वैदिक संहिताओं, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थों में वर्णित औषधियों, चिकित्सापद्धति आदि का अध्ययन कर भारतीय आयुर्वेदिक परम्परा को विकसित करें तथा समस्त जनमानस तक इन औषधियों की पहुँच सुनिश्चित कराकर इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करें। ऐसा करने पर ये औषधियाँ भारतीय जलवायु और भौगोलिक क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण यहाँ के लोगों के स्वास्थ्य के अनुकूल होंगी और भारतीय चिकित्साज्ञान भी समृद्ध होगा।

संगीतराग

दानिया आलम
बी0ए0 द्वितीय वर्ष,
संगीतवादन

आसमान के इस प्रांगण में
जैसे टिम–टिम तारे हैं
वैसे ही संगीत जगत् में
सप्तक के स्वर सारे हैं।
इन सात स्वरों के मेल से
बनते कई हैं थाट
थाटों से निर्मित होते हैं
कई प्रकार के राग
प्रत्येक राग का भिन्न–भिन्न
अपना है एक स्वरूप
जैसे जग में मानव का है
अपना–अपना रूप
रागों का निश्चित होता है,
भाव, समय और काल
जिसके अन्तर्गत होता
रागों का विस्तार।

मध्यकालीन समाज और मीरा का काव्य

रुचि खरवार
शोधच्छात्रा, हिन्दीविभाग

हिन्दी साहित्य में सन् 1375–1900 तक के समय को मध्यकाल के नाम से जाना जाता है। इसके अन्तर्गत पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल एवं उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल कहा जाता है।

भक्तिकाल में निर्गुण भक्तिशाखा के अन्तर्गत आने वाले कवियों में कबीर, रैदास, दादू दयाल, जायसी इत्यादि हैं। सगुण भक्त कवियों में तुलसी, सूर, मीरा प्रमुख हैं।

मध्यकाल में भक्तिकाल के समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ प्रचलित थीं। उनमें छुआछूत, जातिभेद, रूढ़ियाँ प्रमुख थीं। इस काल का समाज सामंतवादी विचारों से ग्रसित था। सामंतवादी विचारधारा वाले इस समाज में स्त्री को सिर्फ वस्तु समझा जाता था। रीतिकालीन कवियों के यहाँ तो सिर्फ स्त्रियों का नख–शिख वर्णन ही मिलता है। रीतिकालीन प्रमुख कवियों के अन्तर्गत बिहारी, केशव और घनानन्द आते हैं।

भक्तिकालीन कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को एक नई दिशा प्रदान कर रहे थे। जैसे–कबीर सभी धर्मों का सम्मान करने की बात करते हैं एवं सभी धर्मों में प्रचलित बाह्याडम्बरों की आलोचना करते हैं। रैदास ने 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' अपने इस कथन से संसार को अपने हृदय को पवित्र करने की, मन की शुद्धता की बात करते हैं। दूसरी तरफ तुलसी, सूर और मीरा आदि भक्त कवियों ने ईश्वर के साकार रूप की उपासना की। इन कवियों ने भी प्रेम द्वारा, भक्ति के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त करने की बात की। मीरा और अक्क महादेवी, झीमा चारिनी इत्यादि भारत की सुप्रसिद्ध स्त्री संत हैं। इन सबका संबंध भक्ति–आन्दोलन से है। इन सभी की रचनाएँ अपने–अपने समाज में स्त्री पराधीनता और उससे उनकी टकराहट का परिणाम है। इस टकराहट ने जिस नवीन मानवतावादी विश्व दृष्टि और भावबोध को जन्म दिया उसे आज भक्ति आन्दोलन की विचारधारा के नाम से जाना जाता है। मीरा संत रैदास की शिष्या हैं। इनकी तुलना तमिल साधिका आंडाल से की गयी है। आंडाल सगुण रूप में ही उलझी रहती है जबकि मीरा के यहाँ आध्यात्मिक में निराकार रूप व्याप्त है, दूसरी ओर वह कृष्ण के रूप की आराधना करती है। मीरा की प्रमुख रचनाओं में नरसी जी का मायरा, गीतगोविन्द टीका, रागगोविन्द एवं रागसोरठा के पदों का नाम लिया जाता है।

मीरा का काव्य उनके विलक्षण जीवन का प्रतिबिम्ब है। वह अपने काव्य में जीवन के अनुभवों को स्थान देती हैं। इस तरह उनका निजी अनुभव ही अभिव्यक्ति का माध्यम बना। मीरा कहती हैं–

असुवाँ जल सींच–सींच प्रेम बेल बूयाँ

इस पुरुष प्रधान समाज में आज भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का ही स्थान दिया जाता है। सदियों से चली आ रही परम्परा है, जिसकी जड़ें अतीत में गहराई से जकड़ी हुई हैं।

मीरा उस सामंतवादी समाज का अंग थी, जो अपनी जाति और वर्ण को लेकर बहुत ही संवेदनशील थे। वहाँ पर सतीप्रथा प्रचलित थी। यदि लड़ाई में उस समाज के किसी स्त्री का पति मृत्यु को प्राप्त हो जाता था तब उस स्थिति में उसकी पत्नी को सती होना पड़ता था। ऐसी मान्यता थी कि यदि वह सती होती है, तो उसके पति के आत्मा को शान्ति मिलती है। मीराबाई अपने पति भोजराज की मृत्यु के पश्चात् सती होने से इन्कार कर देती हैं। यह कार्य सामन्ती व्यवस्था के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में थी। वह विधवा स्त्री होकर विद्रोह करती हैं। ऐसी अवधारणा है कि स्त्री को विवाह से पूर्व अपने पिता के संरक्षण में, विवाह के बाद पति एवं पुत्र के संरक्षण में रहना चाहिए। ऐसा इसलिए होता था क्योंकि स्त्री को अबला समझा जाता था।

मीरा को राणा इतना क्यों प्रताड़ित करता है क्योंकि वह उसके द्वारा बनाये गये नियमों का उल्लंघन करती हैं, राजकुल की मर्यादा भंग करती हैं। वह साधु संत के समाज में जाती हैं। यदि मीरा राजमहल के अन्दर कृष्ण की भक्ति करतीं तो शायद राणा को कोई आपत्ति नहीं होती, आपत्ति तो बस इस बात से है कि वह घर की दहलीज लाँघ देती हैं। वह स्वतंत्रता चाहती हैं और अपने द्वारा बनाये गये नियमों के अनुसार चलना चाहती हैं। भक्तिकालीन कविता की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि जब कोई भक्त अपने ईश्वर से, परमात्मा से प्रेम करता है, उस स्थिति में वह जाति और वर्ण इन सभी संकीर्णताओं से ऊपर उठ जाता है। वह अपना सर्वस्व अपने आराध्य को समर्पित कर देता है, जैसे– कबीर, रैदास एवं मीरा इन सभी भक्त कवियों ने स्वयं को अपने आराध्य को समर्पित कर दिया। मीराबाई एक नारी है और जब एक नारी भक्त होती है तब वह वर्णों को तोड़ती है और लिंग–भेदभाव से मुक्त हो जाती हैं। इस दशा में उसे बहुत सारी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

उनके काव्य में जो निर्भीकता है, वह न तो तुलसी के यहाँ है और ही कबीर में। मीरा अपने समकालीन शासकों का नाम लेकर आलोचना करती हैं जो कि उनकी निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है–

मूरख जन सिंहासन बैठा राणा

इस प्रकार बेबाक अभिव्यक्ति जितनी मीरा के काव्य में मिलती है, उतना अन्य कवियों के यहाँ नहीं। इस दृष्टिकोण से यदि हम मीरा को देखें तो वह कबीर आदि अन्य मध्यकालीन कवियों से कई मील आगे खड़ी दीखती हैं।

वास्तव में मीरा का सम्पूर्ण काव्य वेदना और दुःख की अभिव्यक्ति का काव्य है। किसी भी समाज का जो भी पक्ष पराधीन होगा, सताया हुआ होगा उसकी भावना और विचारों में वेदना या दुःख का होना अनिवार्य तत्त्व है।

वह कृष्ण से प्रेम करती हैं। उन्होंने कृष्ण के प्रति प्रेम का जो चित्रण किया है, वह एक ऐसी स्त्री का चित्रण है, जिसके प्रेम में समाज पग–पग पर बाधा डालता है। वह मीरा को बरजता है, रोक–टोक करता है

और जब मीरा नहीं मानती हैं तो उन्हें 'भटकी' या 'बिगड़ी' घोषित कर देता है–

थारो रूप देख्या अटकी

कुल कुटुम्ब सजण सलक बार–बार हटकी।

म्हारो मण–मगण स्याम लोक कह्या भटकी।

मीरा गिरधर हाथ बिकाणी, लोग कह्या बिगड़ी।

यदि कोई स्त्री किसी काल्पनिक पुरुष से प्रेम करती है तो क्या यह संभव है कि कल्पना रूप वाले पुरुष को जीवन भर प्रेम करती रहे। शायद यह संभव नहीं है क्योंकि प्रेम के लिए मिलना या किसी अन्य माध्यम से प्रिय के सान्निध्य को पाना आवश्यक होता है। फिर मीरा भी तो एक स्त्री हैं, वह जिस कृष्ण से प्रेम करती हैं, उससे तो कभी नहीं मिल पाती हैं, न कभी दर्शन पाती हैं तो इस काल्पनिक पुरुष से जो प्रेम मीरा के काव्य के माध्यम से मिलता है, यह कहाँ तक सच है। यह भी तो हो सकता है कि वह अपने समाज के किसी पुरुष से प्रेम करती रही हों। समाज के डर से या उनकी कोई विवशता रही हो जिसके कारण उसके नाम को समाज के सामने लाना न चाहती हों। वास्तविक प्रेम के बिना कोई स्त्री कैसे प्रेम के अनुभवों का इतना सटीक वर्णन कर पायेगी।

जिस समाज की स्त्री को अपने प्रेम की अभिव्यक्ति करने के लिए अनुमति नहीं थी। ऐसे समाज में भी मीरा अपने प्रेम की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती हैं– मैं अपने घर में खड़ी थी, मोहन आ निकले। उनका चंद्रमुख प्रकाशित था, मंद–मंद मुस्कुरा रहे थे। सभी कुटुम्ब ने बरजा बनाकर बोला। चंचल नैनो ने अटक नहीं माना, वे पराये हाथ बिक गये। किसी ने भला कहा, किसी ने बुरा। सब सीस पर चढ़ा लिया–

म्ह ठाढ़ी घर आपणे मोहन निकल्या आय।

बदन चंद परगासतां, मंद मंद मुसकाय।

सकल कुटुंब बरजसतां, बोल्या बोल बणाय।

णेणा चंचल अटक णा माण्या, हाथ गयां बिकाय।

भलो कह्यां काई कह्यां बुरेरी जब कया सीस चढ़ाय।

मीरा अपने कविताओं में बाधक स्थितियों को पार करके अपने प्रिय से मिलने की बात करती हैं। घर की चहारदीवारी और सभी प्रकार के बंधनों को तोड़कर बाहर आती भी हैं।

हेली म्हासूँ हरि बिनि रह्यो न जाय।

सासू लड़े मेरी ननद खिजावै, राणा रह्या रिसाय।

पहरो भी राख्यो, चौकी बिठाइयो ताला दियो जहाय।

जिस प्रकार से कबीर अपने परमात्मा को नैनों में बसाने की बात करते हैं, उसी तरह मीरा भी अपने श्रीकृष्ण को अपने नैनों में बसाना चाहती हैं, वह कहती हैं–

बस्यां म्हारे णेझण मां नंदलाल

मीरा भी अन्य भक्त कवियों की तरह अपने प्रिय के आने की प्रतीक्षा करती हैं। निम्न पंक्तियों में मीरा का अपने प्रिय की प्रतीक्षा का वर्णन है–

कब री ठाड़ी पंथ निहारां, अपने भवण खड़ी।

तथा

निस दिन जोता बाट मुरारी, कबरो दरसण पावां।

मीरा ने अपने प्रिय के नख–शिख सौन्दर्य को रोम रोम से देखा। वह हमेशा अपने प्रिय से मिलने के लिए उत्सुक रहती हैं। यदि बाहर निकलकर उससे मिल सकतीं तो प्रिय से मिलन की तीव्रता इतनी सघन न होती। इसलिए उनके काव्य में इस प्रकार का वर्णन दिखायी देता है–

मोर मुगट मकराकृत कुण्डल, अरुण तिलक सोहां भाल।
मोहन मूरत सांवर सूरत, णेणा वण्या विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजा, उर बैजन्ती माल।

मीरा कहती हैं जिस व्यक्ति ने प्रेम किया है, वही मेरे दर्द को समझ सकता है और कोई नहीं।

हेरी म्हा तो दरद दिवाणां म्हारा दरद न जाण्यां कोय,
घायल री गत घायल जाण्यो हिवड़ो अगम से जोय।

मीरा का संसार में कोई नहीं है, वह केवल गिरधर गोपाल को अपना मानती हैं। अन्य सभी ने तो उनका साथ छोड़ दिया है। वह भक्तों को देखकर प्रसन्न होती हैं और जगत् को देखकर रोती हैं–

म्यारां री गिरधर गोपाल दुसरा णां कूयां।
भगत देख्यां राजी हुयां जगत देख्यां रूयां।

जब समाज के लोग मीरा की निन्दा करते हैं और तरह–तरह की बाते करते हैं तब वह कहती हैं–

राणा जी म्हाने या बदनामी लगे मीठी,
कोई निंदो कोई बिंदो मैं चलूगी चाल अपूठी।

मीरा के यश का आधार उनके रचित पद हैं। इन पदों की असाधारण लोकप्रियता के पीछे उनका प्रेम–विरह वर्णन के साथ उनकी भाषा भी है। मीरा की भाषा और कबीर की भाषा में एक सीमा तक साम्यता मिलती है। मीरा और कबीर दोनों में ही विभिन्न भाषाओं का मिश्रण मिलता है। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि इनकी जो रचनाएँ हम तक पहुँची हैं, उनका आधार कदाचित् लोकपरम्परा रही हो। इसलिए हो सकता है, उत्तर भारत की विभिन्न भाषाओं के लोग एवं गायकों ने कबीर और मीरा के छन्दों को अपनी–अपनी भाषा मिश्रित करके गाया और आगे बढ़ाया।

मीराबाई के पद पंजाबी, गुजराती और खड़ीबोली में भी हैं। वास्तव में मीरा के जीवन का उनकी भाषा पर गहरा प्रभाव पड़ा। वह आरम्भ में राजस्थान, फिर वृन्दावन और अन्त में द्वारका रहीं। राजस्थान से राजस्थानी, वृन्दावन से ब्रजभाषा और द्वारका से गुजराती का सीधा संबंध है। राजस्थानी भाषा तो मीरा की

मातृभाषा थी, फिर राजस्थानी में रचना करना स्वाभाविक है।

मीरा के पदों में प्रयुक्त विभिन्न भाषाओं के उदाहरण निम्न है–

राजस्थानी– थेतो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नारि कबकी खड़ी।

ब्रजभाषा– यह विधि महि कैसे होय
मन को मैल हियते न छूटी, दियो तिलकर सिर धाये।

पंजाबी– हो कौनो किन गूँथी जुल्फी कारियाँ।

गुजराती– प्रेम नी प्रेम नी रे प्रेम नी लागी कटारी प्रेम नी।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि शैली के अनुसार हमारे मधुरतम गीत वे होते हैं जो परम दुःख की अभिव्यक्ति करते हैं। यदि कवि शैली के इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो मीरा की कविता को उच्चकोटि की कविता में स्थान दिया जायेगा।

मीरा के काव्य में कविता और संगीत का अद्‌भुत साम्य है। उनका काव्य जिस उच्चतम बिन्दु को स्पर्श करता है, वह अनुपम है। उनकी कविता में लोक में प्रचलित बिम्ब प्रतीक और रूपक भी मिलते हैं–

थै तो राणा म्हाने ईसरा लागौ ज्यों वृक्षन में केर।

केर वृक्ष की विशेषता है कि इसमें काँटे बहुत होते हैं। एक किलो केर चुनने में औरतों के हाथ में पचास बार काँटे लग जाते हैं। खून निकल जाता है। फिर भी राजस्थान की औरतें अपनी जीविका के निर्वाह के लिए केर के फल को तोड़कर बाजार में बेचती है। मीरा कहती हैं कि यदि सामंतवादी समाज रोटी देता है तो वह बदले में खून ले लेता है। इस प्रकार का बिम्ब मध्यकाल के किसी कवि के यहाँ नहीं मिलता है।

मीरा कहती हैं मैं तो सावले रंग वाले श्रीकृष्ण के प्रेम में लीन हूँ। वह पैरो में घुँघरु बाँधकर नाचने की बात करती हैं।

माई सावरे रंग राची
साज सिंगार बांध पग घुँघर लोकलाज तज नाची।

पैर में घुँघरू बाँधकर नाचना एक तरह से स्त्री स्वतंत्रता का प्रतीक है। सावरे रंग के पुरुष से प्रेम सामंतवादी समाज के प्रति विद्रोह का प्रतीक है। मीरा कहती हैं–

थारे देसां में राणा साध नही छै,
लोग बसै सब कूड़ौ।

यहाँ मीरा राणा के सम्बोधन से राणा को ही नहीं, बल्कि सामंतवादी शासकों से भी कहती हैं कि तुम्हारे देश में तो सिर्फ बुरे लोग ही बसै हैं साधु लोग तो हैं ही नहीं। यह पुरुषवादी विचारधारा है कि लोक–लाज ही स्त्री का आभूषण है, लेकिन मीराबाई आलोचना करती हैं और कहती हैं–

लोक लाज कुलकानि जगत की दई बहाय

जस पानी, अपने घरका परदा कर लो मैं अबला बौरानी।

मीरा कहती हैं मैं तो पागल हो गयी हूँ। यदि तुम्हें इतनी ही लोक–लज्जा की चिन्ता है, तुमसे देखा नहीं देखा जाता तो मेरे ऊपर परदा डालने के बजाय अपने घर पर परदा करो।

मीरा की कविताओं में लोकशब्द भी मिलते हैं जैसे– सास–ननद, पहरा, ताला, चौकी इत्यादि। मीरा के यहाँ सबसे अधिक सरल वाक्यों का ही प्रयोग हुआ है जैसे–

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ

तनक हरि चितवाँ म्हारी ओर

रमैया बिन नीद न आवे,

हरि बिन कूण गति मेरी।

आज के युग में जिस स्त्रीविमर्श की बात की जाती है। इसका प्रारम्भ तो मध्यकाल में मीरा ने ही कर दिया था। मध्यकालीन समाज में सतीप्रथा थी और राजा अनेक रानियाँ रखते थे। इसके अतिरिक्त निम्न कुल की स्त्रियों से भी सम्बन्ध रखते थे। ऐसा लगता था जैसे स्त्री उनके लिए मनोरंजन का साधन थी। मीरा सामंती समाज में राजकुल घराने की बहू होने पर भी भक्ति को माध्यम बनाकर विद्रोह करती हैं। वह समाज के सभी बन्धनों को अस्वीकार करती हैं और एक स्वतंत्र स्त्री के रूप में उभरकर आती हैं।

संदर्भग्रंथ

1. मीरा का काव्य, विश्वनाथ त्रिपाठी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, वैभव लक्ष्मी प्रकाशन, वाराणसी
3. अनभै साँचा, मैनेजर पाण्डेय, पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. कथा, संपादक–अनुज, अंक 16, मई 2012

ग्रामीण जीवन का यथार्थ और शिवमूर्ति

रामानन्द कुमार
शोधच्छात्र, हिन्दीविभाग

शिवमूर्ति कथा–साहित्य में एक ऐसा नाम है, जिसकी अपनी अलग पहचान ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के गंभीर सरोकारों और संवेदनाओं की एक विशिष्ट निर्मिति भी है । उनका अनुभव संसार सघन और वर्तमान समय एवं समाज से जुड़ा है । उन्होंने अपनी कहानियों एवं उपन्यासों में उस हाशिए के समाज का चित्रण किया जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की मुख्य कड़ी है, परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी उस वर्ग को विकास की मुख्य धारा से अलग रखा गया है । आज जहाँ सम्पूर्ण विश्व 21वीं सदी की दहलीज पर विकास की धारा में अग्रसर है, वहीं भारतीय ग्रामीण समाज की स्थिति में नाम मात्र परिवर्तन ही देखने को मिलता है । आज भी दलित, किसान एवं स्त्री को तिरस्कार, अभाव, अपमान, शोषण आदि अनेक यातनाएँ झेलनी पड़ रही हैं, जबकि विकास के लिए सर्वाधिक योजनाएँ उस वर्ग के लिए ही नामित होती हैं, जो पिछड़ा है, शोषित है, जिसे वास्तव में इनकी आवश्यकता है । किन्तु विकास परियोजनाओं का बहुत कम अंश इनके पास पहुँच पाता है । सिद्धान्त और व्यवहार में विरोधाभास है । शिवमूर्ति का कथा–साहित्य बड़ी सूक्ष्मता से इनका विवरण प्रस्तुत करता है ।

शिवमूर्ति ने 1990 के बाद दलित उभार, साम्प्रदायिकता और कृषि के बाजारीकरण एवं किसानों की स्थिति को लेकर तीन उपन्यासों की रचना की है–'तर्पण', 'त्रिशूल' और 'आखिरी छलांग' ।

इनमें 'तर्पण' दलित जीवन पर केन्द्रित उपन्यास है । इस उपन्यास में दलित लड़की 'रजपतिया' के साथ धनी किसान के बेटे चंदर द्वारा छेड़छाड़ की घटना के माध्यम से दलित जीवन और राजनीति के अंतर्विरोधों को सूक्ष्मता से पहचानने की कोशिश की गई है । रजपतिया के साथ जो असामान्य व्यवहार होता है, उसके विरुद्ध गाँव का पूरा दलित समुदाय संगठित होता है और सामूहिक रूप से दोषियों (सवर्णों) के खिलाफ संघर्ष करता है । इस प्रक्रिया में वह उन समस्त छल–छद्मों को अपनाते हैं, जिनको आधार बनाकर उनका शोषण किया जाता है । रजपतिया का बलात्कार नहीं हुआ, किन्तु स्ट्रेटजी के सहारे रिपोर्ट बलात्कार की दर्ज कराई जाती है । भाई जी जो एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं वे दलितों को एकजुट करते हैं और सवर्णों के खिलाफ केस दर्ज करवाते हैं । यहाँ दलित हक एवं बराबरी की माँग करते हैं तथा सामाजिक एवं आर्थिक दोनों मुद्दों पर एक जुट होते हैं। दलित समुदाय वर्ग संघर्ष और वर्ण संघर्ष की बातें करते हुए कहते हैं कि 'वह वर्ग संघर्ष था रोटी के लिए और यह वर्ण संघर्ष है इज्जत के लिए, इज्जत की लड़ाई रोटी की लड़ाई से ज्यादा ज़रूरी है ।' इस उपन्यास की स्त्रियाँ भी काफी वाचाल, साहसी और निर्णायक हैं, वे आँसू नहीं बहातीं, हस्तक्षेप करतीं हैं । वकील द्वारा पियारे को जुर्म कबूल करने से रोकने पर उसकी पत्नी रोकती नहीं बल्कि कहती है कि इसमें ही इनकी मुक्ति है । यह कथन दलित स्त्री की विकाससमान चेतना को दर्ज कराता है ।

तर्पण की तरह शिवमूर्ति ने 'त्रिशूल', 'कसाईबाड़ा', तिरिया चरित्तर', 'अकालदंड' आदि रचनाओं में भी दलित के शोषण, दमन और प्रतिरोध को भिन्न–भिन्न स्थितियों में चित्रित किया है । 'त्रिशूल' उपन्यास में जहाँ धर्म के नाम पर सांप्रदायिक आंदोलन में दलितों के शोषण अत्याचार एवं दमन का विरोध किया गया है, वहीं कहानियों में दलित स्त्रियों को केन्द्र में रखकर दलितों के साथ किये जाने वाले अमानवीय व्यवहारों का भंडाफोड़ किया गया है । 'तिरिया चरित्तर' की विमली का सरपंच के यहाँ काम करने से इंकार करना, दलितों के प्रतिरोध एवं समाज में उनकी स्थिति दोनों को उजागर करता है ।

'तिरिया चरित्तर' शिवमूर्ति की प्रसिद्ध कहानी है । इस कहानी पर कई नाट्य मंचन हुए हैं और फिल्म भी बनाई गई है । यह कहानी एक लड़की विमली की है। जो बेटी–बेटा के भेद को भूलकर माँ–बाप के लिए मेहनत मजदूरी करती है । नौ–दस साल के उम्र में उसने भट्ठे पर काम करना शुरू किया । जिसका विरोध गाँव के लोगों ने किया । विमली की माँ ने लोगों की एक न सुनी और अपनी बेटी को काम करने दिया । यह एक प्रोग्रेसिव सोच है । बस गांव वाले इसलिए विरोध करते हैं कि वह एक लड़की है । 'तिरिया चरित्तर' असल में उस पुरुष समाज का 'चरित्तर' उघाड़ती है जो हर संभव स्त्री को 'येन केन प्रकारेण' भोग लेना चाहता है।

'कसाईबाड़ा' शिवमूर्ति की चर्चित कहानी है । कहानी के नाम से ही स्पष्ट है कि जिस तरह कसाई अपने स्वाद के लिए, बेजुबान जानवारों को मार देता है, ठीक उसी तरह गाँव के प्रधान ने आदर्श विवाह के नाम पर सामूहिक इंटरकास्ट मैरिज करवाई है, जिसमें हर एक कन्या पक्ष दलित है । इस सामूहिक विवाह करवाने के पीछे प्रधान की बहुत बड़ी चाल है । एक तरह से भोले–भाले गाँव वालों के सामने संत बने रहना और अपनी प्रधानी का परचम लहराना, जबकि इसका दूसरा पक्ष भी है जो काफी दर्दनाक है । जिन लड़कियों की शादी की जाती है, उन्हें शादी के नाम पर मिलता है देह–व्यापार । यह शोषण का नया हथियार है । इस झूठी शादी के कारण गरीब लड़कियों की इज्जत के साथ खिलवाड़ किया जाता है । क्या कोई सोच सकता है कि इस सामूहिक विवाह के पीछे इतनी दर्दनाक कहानी होगी ? इस पूँजीवाद और सामन्तवादी व्यवस्था में स्त्री उपभोग का सामान बन गई है । पूँजीवाद के युग में बाजार और सामन्तवादी ताकतें उसकी दो छवि गढ़ रही हैं। पहली तो वह भारतीय स्त्री की या फिर दूसरी उस आधुनिक स्त्री की जो शराब सिगरेट पीती हुई कम कपड़ों में दिखाई जाती है। एक मनुष्य से ज्यादा वह एक वस्तु के रूप में बार–बार पेश की जा रही है। इसमें कोई शक नहीं कि पूँजीवादी–सामंतवादी व्यवस्था में औरत की तस्वीर बनायी जाती है । बाजार का पूरा गणित उपभोक्तावादी नजरिया पैदा करना है और इसको पैदा करने में वह पूरी तरह से सफल हो रहा है ।

लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि पूरे गाँव में एक 'कसाईबाड़ा' चल रहा है । चाहे वो प्रधान हो, लीडर हो या दारोगा, तीनों ही कसाई हैं । छोटी सी घटना को आधार बनाकर लेखक ने बड़े रहस्य का उद्घाटन किया है । कहानी में और ऐसी बाते हैं जैसे दलितों के खिलाफ षडयंत्र, देह–व्यापार, उच्च पदों पर रहने वाले लोगों का आतंक, भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि । 'कसाईबाड़ा' पूरे देश में चल रहा है। वंचितों से उनके संसाधनों को हड़पा जा रहा है । दलितों का प्रयोग जानवरों की तरह किया जा रहा है। यहाँ दलित स्त्री का बहुस्तरीय शोषण हो रहा है ।

'अकालदण्ड' कहानी को पढ़ते हुए नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' कविता की याद आती है, लेकिन 'अकालदण्ड' अकाल के दौरान जीवन मूल्यों में आ रही गिरावट को दर्ज कराती है । अकाल

जैसे फसल, पानी का नहीं है बल्कि तथाकथित उच्च वर्गों की संवेदना का भी है । अकाल से हर कोई त्रस्त है, पस्त है.....चाहे इंसान हो या जानवर । अकाल और सूखे के कारण पूरा गाँव भूखों मर रहा है । हर तरफ पानी और खाने की समस्या है। अकाल के कारण यह कैसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई है कि इन्सानों से ज्यादा जानवरों को महत्त्व दिया जा रहा है । दबंगों के जानवर भी दलित जन से ऊपर हैं । अकाल का दण्ड भुगतान स्त्रियों को करना पड़ता है । जहाँ हर कोई भूख–प्यास से तड़प रहा है वहीं सेक्रेटरी को किसी का लाज शर्म नहीं है । सुरजी इसका विरोध करती है। ''सुरजी ने हंसिए से उसकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अंधेरे में गुम हो गई है ।'' सुरजी न केवल बलात्कारी को दण्ड देती है बल्कि उन तथाकथित बाबू साहबों को भी उनकी औकात बता देती है, जो समाज के चौधरी बने फिरते हैं । ये चौधरी अपनी बहू–बेटी की लुटती हुई इज्जत को किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो देखते हैं । किन्तु सुरजी विद्रोह और विरोध की एक नई संस्कृति का सृजन करती है ।

शिवमूर्ति का कथा–साहित्य काफी दृढ़ता से ग्रामीण जीवन और आधुनिक जीवन–मूल्यों के पक्ष में खड़ा नज़र आता है । उन्होंने शहरों में आधुनिकता के संकटों को देखने के स्थान पर गाँवों में आधुनिकता के अभाव को देखा । इसीतरह उन्होंने गाँवों को केवल खेतिहर किसान को पर्याप्त समझने के बजाय ग्रामीण संरचना में शामिल कई अन्य पक्षों जैसे स्त्री–जीवन, जातिवाद, सरकारी भ्रष्टाचार और आपसी ईर्ष्या आदि को कथानकों का आधार बनाया ।

संदर्भग्रन्थ

1. तर्पण (उपन्यास), शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2012
2. त्रिशूल (उपन्यास), शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2012
3. आखिरी छलांग (उपन्यास), शिवमूर्ति, नया ज्ञानोदय, जनवरी, 2008
4. केशर कस्तूरी (कहानी संग्रह), शिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2015
5. मंच, मयंक खरे (सं0), जनवरी–मार्च, 2011
6. लमही, सुशील सिद्धार्थ (सं0), अक्टूबर–दिसम्बर, 2012
7. नया ज्ञानोदय, रवीन्द्र कालिया (सं0), जनवरी, 2008
8. नया ज्ञानोदय, रवीन्द्र कालिया (सं0), अप्रैल, 2013
9. हंस, राजेन्द्र यादव (सं0)
10. तद्भव, अखिलेश (सं0), अक्टूबर, 2011
11. अभिनव कदम 26–27, जयप्रकाश धूमकेतु (सं0) (सहजानन्द सरस्वती : किसान विशेशांक)
12. संवेद, किशन कालजयी, फरवरी–अप्रैल, 2014

राष्ट्र के मुख्य अवयव : भू, जन एवं संस्कृति

जगदीश लाल
शोधच्छात्र, इतिहासविभाग

संसार में प्रत्येक मनुष्य अपना सक्रिय अस्तित्त्व बनाये रखने के लिये एक स्थायी अस्मिता की तलाश में रहता है। मैं कौन हूँ? किन अर्थों में मैं दूसरे में भिन्न हूँ। इस तरह के अनेक प्रश्न हमारे बचपन से लेकर आगे के जीवन में उपस्थित होते हैं। जिस समुदाय में हमारा जीवन पुष्पित पल्लवित होता है, वह हमें उस समुदाय के सांस्कृतिक मूल्यों को प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त इस जनसमुदाय से हमारी पहचान भी निर्धारित होती है। हमें इस पहचान से शेष विश्व को देखने–समझने की दृष्टि मिलती है। इस तरह एक व्यक्ति एक भौगोलिक क्षेत्रफल में एक सांस्कृतिक समुदाय का अंग बन जाता है। यही एक भौगोलिक क्षेत्रफल वाला खण्ड जिसमें व्यक्ति एक वृहद् समुदाय के भीतर भावनात्मक एवं संवेदनात्मक जुड़ाव रखता है। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में ही राष्ट्र एक आकार ग्रहण करता है।

भू

भूमि राष्ट्र का एक प्राथमिक अवयव है जिस पर निवास करने वाले समुदाय के लोगों का आपसी जुड़ाव राष्ट्र के रूप में सामने आता है। यह हमेशा से नहीं रहता, अपितु एक ऐतिहासिक प्रक्रिया का अंग है। भारतीय राष्ट्र के सन्दर्भ में भूमि को देखें जो भी यह धारणा प्रबल होती है, कि किसी भी राष्ट्र का निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है। जैसा कि एक श्लोक में कहा भी गया है–

उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्ष तद् नाम भारत, भारती यत्र संतन्ति।।

अर्थात् हिमालय के दक्षिण में, समुद्र के उत्तर में जो भू–भाग स्थित है, उसका नाम भारत है और उसमें निवास करने वाले लोग भारतीय कहलाते हैं। ध्यातव्य है कि इतिहास के कालक्रम में राजनैतिक कारणों से भौगोलिक सीमाओं में बदलाव होता है, किन्तु लोगों के बीच अपनी मूलभूमि के प्रति लगाव हमेशा बना रहता है। इस सन्दर्भ में फ्रांस का उदाहरण देना उचित होगा क्योंकि जर्मनी के एकीकरण की प्रक्रिया में फ्रांस के अल्सास एवं लॉरेन क्षेत्र जर्मनी में मिल गये थे, किन्तु फ्रांसीसियों के मन में इन क्षेत्रों के प्रति लगाव बना रहा। प्रथम महायुद्ध के बाद फ्रांस ने इस क्षेत्र को पुनः प्राप्त किया।

समुदाय या जन

राष्ट्र की पहचान 'स्व' में नहीं 'हम' में निहित होती है। 'हम क्या हैं' इस भाव को राष्ट्रीय भाव माना जाता है, न कि 'हम क्या बन गये हैं' लोगों के मन में पनपते इस भाव को। अतः इस सन्दर्भ में राष्ट्र एक विशाल जनसमुदाय होता है। इस समुदाय में अपनेपन का भाव होता है। यह अपनेपन का भाव साझा हितों, विरासत एवं मूल्यों पर आधारित होता है। यदि हम भारत के सन्दर्भ में देखें तो यही साझी सांस्कृतिक एवं आर्थिकविरासत लोगों को 'भारतीयता' में समेट लेती है। एक–दूसरे के अनुभव अपने अनुभव बनने लग

जाते हैं। इसी बिन्दु पर राष्ट्र रूपी संवेदनशीलता स्पष्ट होती है। यह 'भारतीयता' ही है कि दक्षिण भारतीय लोग भाषा, रंग आदि रूपों से भिन्न होने के बाद भी उत्तरभारत में आकर विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं के हिस्सा बन जाते हैं। इस प्रकार एक जन समुदाय का आपसी मेल–जोल ही सामुदायिक भावना को जन्म देता है, जो राष्ट्र का दूसरा मुख्य अवयव है।

संस्कृति

किन्हीं परिभाषाओं में राष्ट्र को एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति बताया गया है। एक निश्चित सांस्कृतिक आधार पर ही एक सुसंगठित राष्ट्र की बुनियाद रखी जाती है। जैसे–भाषा, जाति–प्रजाति, नस्ल, धर्म आदि। लेकिन भारत का राष्ट्र के रूप में अस्तित्त्व इस आधार पर नहीं है। यह आधार यूरोप से सम्बन्धित है। संस्कृति एक गतिशील प्रत्यय है जो कि इतिहास बनने की प्रक्रिया में कुछ नये मूल्य बोध धारण करती है। यह परिदृश्य प्रत्येक राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्यों में दिखलायी पड़ता है। मूलप्रकृति में नहीं जैसे–भारतीय वैदिकमूल्यों युद्ध, प्रवसन, साम्राज्य निर्माण आदि प्रक्रियाओं से अलग–अलग संस्कृति के लोग भिन्न संस्कृति वाले समुदाय के साथ रहने लगे। कुछ समुदायों ने तो स्वतः ही किसी क्षेत्र के बहुसंख्यक समुदाय में स्वयं को विलीन कर लिया। हूण, शक, कुषाण आदि आक्रमणकारी के रूप में भारत आये और यहाँ की संस्कृति में घुल–मिल गये। ध्यान देने योग्य है कि कई राज्यों (देश) ने राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सांस्कृतिक आत्मसातीकरण एवं एकीकरण की नीतियों को अपनाया है। आत्मसातीकरण की प्रक्रिया में सांस्कृतिक विभिन्नता को मिटाने की कोशिश की जाती है। लेकिन भारत का राष्ट्र के रूप में निर्माण इस रूप में नहीं हुआ है। अतीत में एवं वर्तमान में राष्ट्र निर्माण के कुछ यही तरीके अपनाये गये हैं। उदारण के लिये पश्चिमी पाकिस्तान एवं पूर्वी पाकिस्तान में बहुसंख्यक समुदाय के रूप में मुस्लिम स्थापित थे, किन्तु पूर्वी पाकिस्तान उर्दू को राष्ट्रभाषा के रूप स्वीकार न कर सका। बांग्लाभाषा की अस्मिता की रक्षा के लिये अलग हो गया, क्योंकि उसकी मूल सांस्कृतिक जड़ें बंगाल की संस्कृति में निहित थीं। सांस्कृतिक एकीकरण के अन्तर्गत सार्वजनिक एवं राजनीतिक कार्यक्षेत्रों से सांस्कृतिक, मूल्यों को अलग रखने का प्रयास किया जाता है, लेकिन, निजी क्षेत्र में इन्हें बनाये रखने की अनुमति होती है, अर्थात् इन दोनों प्रकार की नीतियों से एकल राष्ट्रीय पहचान स्थापित होती है। भारतीय संविधान द्वारा एकीकरण की प्रक्रिया से एकल राष्ट्रीय पहचान 'भारतीयता' को स्थापित किया है, जिसके मूल में कहीं न कहीं सनातन संस्कृति के मूल भी दिखलाई पड़ते हैं। जैसे–उदारवादीअवधारणा (वैयक्तिक हित पर सामाजिक हित महत्त्वपूर्ण)

उपसंहार

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राष्ट्र एक भौगोलिक क्षेत्रफल में जनसमुदाय के मध्य एक समुदाय होने के अहसास से सम्बन्धित है, जिसमें सांस्कृतिक मूल्यों की एक महती भूमिका है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. ब्रास, पॉल 1974लैंग्विज, रिलिजन, एंड पॉलिटिक्स इन नार्थ इण्डिया, विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
2. मिलर, डेविड 1995 ऑन नेशनेलिटी, क्लेरेडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड।
3. वीर सावरकर–भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम अध्याय
4. यू0एन0डी0पी0, मानव विकास रिपोर्ट 2004।

यह दृश्य बदलना चाहिए

मानवी सिंह
बी.कॉम., तृतीय वर्ष

सड़क के उस पार बंजारों की बस्ती में,
ईंट के चूल्हे पर चढ़ी है एक बड़ी सी हाण्डी,
और बरसाती में ढ़के बच्चे पड़े हैं पुआल पर;
वहीं, कुछ दूर बैठा चित्रकार उतारता है
तस्वीर कागज़ पर,
जो बिकती है–
सौ, हज़ार, लाख रुपए प्रति दर पर।

सड़क का वही दृश्य,
इस बार एक फिल्मकार बनाता है
स्लमडॉग मिलेनियर,
जिसके बदले में उसे मिलता है
ऑस्कर पुरस्कार।

सड़क का वही दृश्य जहाँ बाँटी जाती हैं रोटियाँ,
कम्बल और अलाव के लिये कुछ लकड़ियाँ,
दिए जातें हैं रोज़गार,
जिसके बदले में उन्हें मिलता है
सरकार से कुछ और धन।

सड़क के उसी दृश्य पर कोई कबीरा
अलख, छेड़ता है राग,
पर वही राग दब जाती है
भारी खरीदारी पर छूट की ऊँची आवाज़ में।

सड़क का फिर वही दृश्य,
जहाँ लिखी जाती हैं–
कहानियाँ, कविताएँ और उपन्यास;
जिनके बदले मिलता है
साहित्य अकादमी पुरस्कार,
और इस तरह बन जाता है,
किसी शहर का इतिहास।

एक बार फिर वही दृश्य,
जिसके बड़े होटलों, शाही व्यंजनों के साथ,
बन्द ए0सी0 कमरों में तय की जाती हैं
गरीबों के लिये गरीब योजनाएँ,
और बन जाता है बी0पी0एल0 कार्ड।

सुबह उसी सड़क पर होता है चुनावी भाषण,
मिटा दिए जाते हैं सारे बैर
खाकर एक रोटी गरीब की।

सड़क का यह दृश्य चलता है निरन्तर,
सवाल यह है कि,
क्यों नहीं आता कोई ऐसा
चित्रकार, फिल्मकार, साहित्यकार, राजनीतिज्ञ
जो बदल सके इस दृश्य को
आखिर यह दृश्य बदलना चाहिए !

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

कु0 अंकिता
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

महर्षि पतञ्जलि ने अपने **'पातञ्जलयोगदर्शन'** के समाधि पाद में योग की परिभाषा और उसके स्वरूप का विस्तृत वर्णन करते हुए कहा है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। अर्थात् चित्त की वक्ष्यमाण प्रमाणादि वृत्तियों का जो निरोध है, वह योग कहलाता है। योग शब्द 'युज' धातु से निष्पन्न हुआ है। धातु पाठ में 'युज्' धातु दो हैं– 1. **'युजिर योगे'**, 2. **'युज समाधौ'** इनमें 'युजिर योगे' सामान्य सम्बन्धवाचक होने से उसका यहाँ ग्रहण नहीं है किन्तु 'युज समाधौ' से जो योग निष्पन्न हुआ है जिसका विशेष अर्थ समाधि होता है और वही अर्थ यहाँ अभीष्ट भी है। इसी को स्पष्ट करते हुए व्यास जी कहते हैं–

योगः समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। अर्थात् चित्त की समस्त भूमियों में रहने वाले धर्म को समाधि या योग कहा जाता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने योग को इस प्रकार से कहा है– **समत्वं योग उच्यते।** समत्व (समभाव) को ही योग कहते हैं। अब प्रश्न उठता है कि चित्त क्या है? इसके भेद कितने हैं? और इसकी अवस्थाएँ कितनी हैं? इसका उत्तर इस प्रकार से है–

चित्त– चित्तमन्तःकरणं सामान्यम् अन्तःकरण सामान्य को ही चित्त कहते हैं। व्यास जी ने इस चित्त के तीन भेद या गुण बताये हैं–

चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्। अर्थात् चित्त सत्त्व, रज और तम इन गुणों से युक्त है। प्रख्याशील, प्रवृत्तिशील और स्थितिशील इसके तीन भेद हैं।

चित्त की भूमियाँ या अवस्थाएँ– चित्त की निम्न पाँच भूमियाँ या अवस्थाएँ हैं–

क्षिप्तामूढा च विक्षिप्ता एकाग्रा च निरुद्धिका।
सत्त्वेषु सहजावस्थाः पञ्चेमाश्चित्तभूमयः।।

1. क्षिप्त –

यह चित्त की रजोगुण प्रधान अवस्था है। इस समय सत्त्वगुण एवं तमोगुण अभिभूत रहते हैं। चित्त एक जगह नहीं टिकता। व्यास जी ने योगसूत्र भाष्य में क्षिप्त का लक्षण इस प्रकार से किया है–

प्रख्यारूपं हि चित्तसत्त्वं रजस्तमोभ्यां संसृष्टमैश्वर्यविषयप्रियं भवति।

2. मूढ –

यह वह अवस्था है, जिसमें तमोगुण की प्रधानता रहती है। **तमः समुद्रकान्निद्रादिवृत्तिमन्मूढम्।**

इसमें आलस्य, दीनता, भ्रम और निद्रा के कारण मनुष्य की बुद्धि किंकर्त्तव्यमूढ़ हो जाती है। व्यास जी ने इसका लक्षण इस प्रकार से दिया है–

तदेव तमसाऽनुविद्धमधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्योपगं भवति।

3. विक्षिप्त – विभिन्न अवस्था में रजोगुण प्रधान चित्त कभी–कभी सत्त्वगुण का उद्रेक होने पर किसी एक विषय में कुछ देर तक केन्द्रीभूत हो जाता है किन्तु इस अवस्था में भी चित्त स्वभावतः चञ्चल प्रवृत्ति का ही होता है। यह अवस्था ब्रह्मजिज्ञासुओं एवं सामान्य गृहस्थों में देखी जाती है।

तदेव प्रक्षीणमोहावरणं सर्वतः प्रद्योतमानमनुविद्धं रजोमात्रया धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपगं भवति।

उपर्युक्त तीनों अवस्थाएँ योग में उपयोगी नहीं हैं क्योंकि इसमें मनुष्यों का चित्त विषयों में आसक्त रहता है।

4. एकाग्र – एकाग्रता का अर्थ है– चित्त का किसी एक बिन्दु पर केन्द्रीभूत होना।

एकाग्रचित्त में सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है। इस अवस्था को योगकोटि में गिना जाता है– **तदेव रजोलेशमलापेतं स्वरूपप्रतिष्ठं सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रं धर्ममेघध्यानोपगं भवति। सम्यक् ज्ञायते साक्षात्क्रियते ध्येयमस्मिन् इति सम्प्रज्ञातः।** इस व्युत्पत्ति से इस योग का नाम सम्प्रज्ञात समाधि है।

5. निरुद्ध – चित्त का सर्वोत्कृष्ट स्तर निरुद्ध है। प्रथम चार अवस्थाओं में चित्त का ज्ञानात्मक परिणाम चलता है किन्तु यह ज्ञानशून्य अवस्था है। इस समय चित्त केवल संस्कार रूप में दिखता है। चित्त की एकाग्रावस्था में बोया गया सम्प्रज्ञात समाधि का बीज निरुद्ध भूमि में असम्प्रज्ञात योग के रूप में पल्लवित एवं पुष्पित होता है–

चितिशक्तिरपरिणामिन्यप्रतिसंक्रमा दर्शितविशया शुद्धा चानन्ता च सत्त्वगुणात्मिका चेयमतो विपरीता विवेकख्यातिरिति। अतस्तस्यां विरक्तं चित्तं तामपि ख्यातिं निरुणद्धि। तदवस्थं संस्कारोपगं भवति। स निर्बीजः समाधिः।

चित्त अर्थात् बुद्धि त्रिगुणात्मक होने से शान्त, घोर तथा मूढरूप है और जब शान्तादि वृत्ति सहित बुद्धि अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है तब पुरुष निर्विषय चैतन्यमात्र प्रकाशस्वरूप में अवस्थित हो जाता है तथा व्युत्थान काल में चेतन निजरूप से न भासकर बुद्धि के दिए हुए शान्तादि वृत्तिवाला होकर भासता है।

चित्त की वृत्तियाँ चित्तवृत्तियाँ चित्त के ज्ञान की भिन्न–भिन्न अवस्थाएँ हैं, अर्थात् वृत्तियाँ चित्त का ज्ञानात्मक परिणाम हैं। इनकी संख्या पाँच हैं– **प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः।** ये वृत्तियाँ क्लष्ट और अक्लिष्ट के भेद से दो प्रकार की होती हैं– **वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः।**

2. प्रमाणवृत्ति – प्रमा या यथार्थज्ञान की साधनीभूत वृत्तियों को प्रमाणवृत्ति कहा जाता है।

प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्। प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं– **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।**

i) प्रत्यक्ष प्रमाण – मन, बुद्धि और इन्द्रियादि के माध्यम से जिन पदार्थों का प्रत्यक्षतः अनुभव होता है, जिनके विषय में कोई सन्देह नहीं होता है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है।

ii) अनुमान प्रमाण – प्रत्यक्ष पर आधारित तर्क और तथ्यों द्वारा जिस प्रक्रिया से किसी वस्तु या पदार्थ के अस्तित्व का ज्ञान हो, उसे अनुमान कहते हैं।

ii) आगम प्रमाण – वेद–शास्त्रों और यथार्थ वक्ता पुरुषों के वचनों को आगम कहते हैं।

2. विपर्ययवृत्ति – विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।

मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। इसमें वस्तु के वास्तविक स्वरूप की अभिव्यक्ति न होने से वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता है अर्थात् जो पदार्थ यथार्थ (निजरूप) में स्थित न हो, शुक्ति में रजत् के सदृश मिथ्याज्ञान विपर्यय कहलाता है।

इस विपर्यय ज्ञान के भी पाँच प्रकार हैं, जिन्हें पाँच प्रकार के क्लेश भी कहते हैं–

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।

i) अविद्या – दुःख में सुख, अनात्मा में आत्मा का भाव होना ही अज्ञान (अविद्या) कहलाता है।

ii) अस्मिता – बुद्धि में आत्मबुद्धि का होना ही अस्मिता है।

iii) राग – सुखेच्छा की वृत्ति राग कहलाती है।

iii) द्वेष – सुख–साधनों में विघ्न उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों के प्रति घृणा करना द्वेष है।

ii) अभिनिवेश – मृत्यु से डरने की वृत्ति अभिनिवेश कहलाती है।

3. विकल्पवृत्ति – वस्तु की अविद्यमानता में शब्दज्ञान के प्रभाव से भी चित्त का एक प्रकार का परिणाम होता है, उस परिणाम को विकल्पवृत्ति कहा गया है– **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।**

अर्थात् शब्द के आधार पर जो ज्ञान उत्पन्न होता है और जिसका विषय वास्तव में नहीं है, वह विकल्पवृत्ति कहलाता है।

4. निद्रावृत्ति – जब हम गहरी नींद या सुषुप्ति में होते हैं उस समय तमोगुण, रज एवं सत्त्व को अनभिभूत करके प्रबल होता है। **अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।**

अर्थात् जाग्रत–स्वप्न पदार्थ विषयक वृत्तियों के कारण जो सत्त्वगुण एवं रजोगुण के आवरण तमोद्रव्य रूप अज्ञान है वही अज्ञानविषयक वृत्ति निद्रावृत्ति कहलाती है।

5.स्मृतिवृत्ति – अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः। अर्थात् अनुभव किए हुए विषयों का पुनः चित्त में आरोहपूर्वक जो अनुभव–मात्र विषयक चित्तवृत्ति विशेष है, वही स्मृतिवृत्ति है, **सर्वाः स्मृतयः प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतीनामनुभवात् प्रभवन्ति।**

अर्थात् स्मृतिवृत्ति प्रमाणादि वृत्तियों के अनुभवजन्य संस्कारों से उत्पन्न होती है, इसलिए स्मृतिवृत्ति का सबसे अन्त में वर्णन किया गया है।

पूर्वोक्त सभी चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य से होता है।

इस प्रकार से यह सभी प्रमाणादि वृत्तियाँ शान्त होंगी तभी हमें योग प्राप्ति होगी। इनके शान्त होने पर सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात द्विविध समाधि की प्राप्ति होगी।

समाधि – यह दो प्रकार की होती है– 1. सम्प्रज्ञात समाधि / सबीज , 2. असम्प्रज्ञात समाधि / निर्बीज।

1. सम्प्रज्ञात समाधि – सात्त्विक वृत्तिस्वरूप चित्त की एकाग्रावस्था ही सम्प्रज्ञात समाधि है– **सम्यक्ज्ञायते साक्षात्क्रियते ध्येयमस्मिन् इति।** अर्थात् जिसके द्वारा ध्येय का स्वरूप यथार्थ रूप से ज्ञात होता है, वह सम्प्रज्ञात समाधि कहा जाता है।

यह चार प्रकार का होता है– **वितर्कविचारानन्दाऽस्मितारूपानुगमात्सम्प्रज्ञातः।**

I) सवितर्क सम्प्रज्ञातसमाधि – पञ्चमहाभूतों तथा इन्द्रियों के भाव के आधार पर की गई समाधि सवितर्क सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। **वितर्कश्चित्तस्यालम्बने स्थूल आभोगः।**

ii) सविचार सम्प्रज्ञातसमाधि –

जब स्थूल पदार्थों का साक्षात् कर लिया जाता है तब सूक्ष्म पदार्थों में सूक्ष्म तन्मात्राओं (शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध) के भावनात्मक विचार के द्वारा जो समाधि की स्थिति बनती है, वह सविचार सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है।

iii) सानन्द सम्प्रज्ञातसमाधि –

इसमें विचार शून्यता की स्थिति आ जाती है, मात्र आनन्द ही शेष बचता है।

vi) सास्मित सम्प्रज्ञातसमाधि –

इसमें आनन्द समाप्त होकर साधक अपने आत्मस्वरूप की अनुभूति करते हुए 'अस्मि' (हूँ) में अवस्थित हो जाता है। इस 'अस्मि' के स्थिति के कारण ही इसे सास्मित समाधि कहते हैं।

2. असम्प्रज्ञात समाधि –

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः।

विराम और प्रत्यय का अभ्यास जिसकी पूर्व अवस्था है ऐसी स्थिति में सभी संस्कारों के निरुद्ध हो जाने पर जो समाधि प्राप्त होती है वह निर्बीज समाधि होती है। **तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।** असम्प्रज्ञात समाधि दो प्रकार से प्राप्त होती है–

i) भवप्रत्यय –

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम्। भव प्रत्यय विदेह और प्रकृतिलय योगियों की होती है।

साधक की यही अवस्था कैवल्य के नाम से भी जानी जाती है।

ii) उपायप्रत्यय –

उपायप्रत्ययो योगिनां भवति। यह समाधि शास्त्रोक्त श्रद्धा आदि पाँच उपायों के द्वारा योगियों को प्राप्त होती हैं और इसी से साधक का निर्बीज समाधि रूप योग सिद्ध होता है।

सीता–परित्याग में सन्निहित सन्देश

नेहरू पाण्डेय
एम. ए. पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

महर्षि बाल्मीकि–कृत रामायण संस्कृत साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि है। यह ऐसी गंगोत्री है जिससे निकली रामकाव्यगंगा सम्पूर्ण विश्व में प्रवाहित होकर सहृदयों के हृदय को आह्लादित कर रही है। बाल्मीकि की दृष्टि में चरित्र ही मानवता की कसौटी है। महाकवि भवभूति के 'उत्तररामचरित' में सीता एवं राम के चरित्र का जहाँ तक दिग्दर्शन है वह बाल्मीकि–रामायण के सम्पूर्ण अध्ययन के बाद ही पता चलता है क्योंकि सीता और राम के चरित्र की खोज ही रामायण और उत्तररामचरित दोनों का उद्देश्य है। सीता त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति हैं। ऐसे चरित्र की खोज बाल्मीकि और भवभूति के काव्य का प्रयोजन भी है। किसी भी महान् व्यक्ति के जीवन चरित के दो रूप दिखाई देते हैं – भोग और त्याग। यहाँ सीता के चरित में भोग का कोई स्थान नहीं है। इनका सम्पूर्ण जीवन त्याग और तपस्या पर आधारित है।

बाल्मीकि एवं भवभूति ने सीता के माध्यम से जहाँ पत्नी के आदर्शों को प्रकाशित किया है, वहीं श्रीराम के माध्यम से एक आदर्श पति के स्वरूप को भी रेखांकित किया है। राम ने आजीवन एकपत्नीव्रत का पालन किया। राम सीता के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते थे। राम वन में रहते हुए सीता की सेवा और प्रेम में बंध जाते हैं। मारीच को मारकर लौटते समय मार्ग में अपशकुनों के घटित होने पर सशंकित हो जाते हैं और सीता को अकेली छोड़कर आये हुए लक्ष्मण को देखकर उनकी निन्दा करते हैं– अयोध्या के सारे सुख को त्यागकर उनके साथ दण्डकारण्य में आने वाली वैदेही कहाँ हैं, यह जानने के लिए विह्वल हो जाते हैं–

प्रस्थितं दण्डकारण्यं या मामनुजगाम ह।
क्व सा लक्ष्मण वैदेही यां हित्वा त्वमिहागतः।।[1]

वह सीता के त्याग और सहयोग को याद करते हैं–

राजभ्रष्टस्य दीनस्य दण्डकान् परिधावतः।
क्व सा दुःखसहाया मे वैदेही तनुमध्यमा।।[2]

वे कहते हैं कि सीता के बिना दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता। वह मुझे प्राणों से भी प्रिय है–

यां विना नोत्सहे वीर मुहूर्तमति जीवितुम्।
क्व सा प्राणसहाया मे सीता सुरसुतोपमा।।[3]

राज्याभिषेक के स्थान पर भी अविचिलित रहने वाले राम सीता के अहित की आशंका से विचलित हो जाते हैं। आश्रम पहुँचकर सीता को न पाकर दुःख से विह्वल राम वन में लताओं से, वृक्षों से, नदी, पर्वत,

सरोवर आदि से सीता का पता पूछते हैं और स्वयं को कोसते हुए कहते हैं कि मेरे जैसा पाप–कर्म करने वाला मनुष्य इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। क्योंकि पहले तो राज्य से वंचित हुआ, फिर स्वजनों से वियोग हुआ तत्पश्चात् पिता का स्वर्गवास हुआ। परन्तु वन में आकर क्लेश का अनुभव करते हुए भी सीता के समीप रहने पर भी मेरा समस्त पाप–दुःख शान्त हो गया था। आज सीता के वियोग से पुनः उद्दीप्त हो उठा है–

राज्यप्रणाशः स्वजनैर्वियोगः पितुर्विनाशो जननीवियोगः।[4]
सर्वं तु दुःखं मम लक्ष्मणेदं शान्तं शरीरे वनमेत्य क्लेशम्।
सीतावियोगात् पुनरप्युदीर्णं काष्ठैरिवाग्निः सहसोपदीप्ताः।।[5]

दुःख से कातर राम कहते हैं कि सीता के बिना अयोध्या नहीं जाउँगा। जानकी के बिना स्वर्ग भी सूना जान पड़ेगा–

अथवा न गमिष्यामि पुरीं भरतपालिताम्।
स्वर्गोऽपि हि तया हीनः शून्य एव मतो मम।।[6]

उपर्युक्त उदाहरणों से पता चलता है कि राम सीता को अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम करते थे। इस स्थिति में उन्होंने सीता को वनवास कैसे दिया होगा? उत्तररामचरित में महाकवि भवभूति ने सीता के निर्वासन का कारण स्पष्ट करते हुए राम से स्वयं कहलवाया है–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।[7]

अर्थात् प्रजानुरञ्जन के लिए प्रेम को, दया को, सुख को, साथ ही साथ जनकतनया (सीता) को भी त्यागना हो तो मुझे पीड़ा नहीं है। राम की दृष्टि में प्रजापालन ही सर्वोपरि कर्तव्य है, इस कर्तव्य का पालन करने के लिए ही व अपना सर्वस्व त्यागने के लिए उद्यत हैं। राम ने सीता का वन में परित्याग कर, स्वयं को कष्ट में डालकर सीता के निर्मल व निष्कलंक चरित्र को संसार के सामने प्रस्तुत किया है। राम सीता के चरित्र को प्रमाणित करते हुए उनको तीर्थजल तथा अग्नि के तुल्य बताते हैं।[8] सीता का त्याग करते हुए स्वयं को पापी मानते हैं–

छद्मना परिददामि मृत्यवे।
सौनिके गृहशकुन्तिकामिव।।[9]

उन्होंने सीता को वन भेजकर स्वयं तपस्या करते हुए दूसरा परिणय नहीं किया तथा सुवर्णमयी सीता–प्रतिकृति को ही दक्षिणांक में बैठाकर अश्वमेध इत्यादि सम्पन्न किया।

राम के हृदय में सीता ही थी। सीता का वियोग राम के लिए असह्य हो गया था, तभी तो निर्जन स्थान में सीताजन्य अनुभूति से विह्वल व द्रवित होकर राम के विलाप से पत्थर भी रो पड़े–

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्यचरितैरपि
ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्।[10]

इस प्रकार प्रजानुरञ्जन को भवभूति ने सीतापरित्याग का कारण माना है। गम्भीरता के कारण अन्दर छुपी हुई घोर वेदना से युक्त राम का शोक पुटपाक तुल्य है।[11]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अप्रियवस्तु का त्याग तो सभी कर देते हैं किन्तु सर्वाधिक प्रिय के त्याग से ही त्याग शब्द का निहितार्थ सिद्ध होता है। सीता राम को प्राण से भी अधिक प्रिय हैं उस प्राणप्रिया सीता का परित्याग करके राम ने समाजहित के लिए स्वार्थत्याग का प्रतिमान स्थापित किया है। इससे प्रजापालन हेतु प्रशासक को प्रिय से प्रिय व्यक्ति अथवा वस्तु के परित्याग में संकोच नहीं करना चाहिए, यह सन्देश प्राप्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 रामायण, अरण्यकाण्ड, 58/2
2 रामायण, अरण्यकाण्ड, 58/3
3 रामायण, अरण्यकाण्ड, 58/4
4 रामायण, अरण्यकाण्ड, 63/5
5 रामायण, अरण्यकाण्ड, 63/6
6 रामायण, अरण्यकाण्ड, 62/14
7 उत्तररामचरित, 1/12
8 उत्तररामचरित, 1/13
9 उत्तररामचरित, 1/45
10 उत्तररामचरित, 1/28
11 उत्तररामचरित, 3/1

मेघदूत में प्रकृतिसौन्दर्य

आरती यादव
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

माँ गौरी की साधना के सफल साधक सुविख्यात साहित्यकार महाकवि कालिदास अपने युग के स्वर्णाधार थे। इन्होंने संस्कृतसाहित्य में जिस नवीन शैली को जन्म दिया उसका अनुसरण उनके बहुत से समकालीन श्रेष्ठ साहित्यकारों ने किया। इन्होंने हमारे संस्कृतसाहित्य को रेगिस्तान की मरूभूमि से लाकर ऐसे समतल उपजाऊ भूमि पर खड़ा कर दिया, जहाँ हमारा संस्कृतसाहित्य सदैव अपने–आपको हरा–भरा पाता है।

महाकवि कालिदास भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के स्वनामधन्य श्रेष्ठ महाकवि और उत्तम नाटककारों में परिगणित हैं।

इनको 'उपमा कालिदासस्य', 'दीपशिखा' और 'कविकुलगुरू' आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। इनकी सात रचनाएँ हैं, जिनमें से 'मेघदूतम्' नामक खण्डकाव्य में प्रकृति की मनोरम मूर्ति को प्रतिफलित करने में और अपने प्रबन्धों के पात्रों के चरित्रों का असाधारण चित्रण करने में महाकवि कालिदास अद्वितीय हैं।

महाकवि कालिदास संस्कृतसाहित्य में प्रकृति के नानारूपों के नयनाभिराम दृश्य खींचने के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रकृति मानव की चिरसहचरी, उपकारी आलम्बन एवं उद्दीपन रूपों में चित्रित हुई है।

पूर्वमेघ में बाह्य प्रकृति का वर्णन है, फिर भी उसमें मानवीय भावनायें संजोयी हुई हैं। यद्यपि उत्तरमेघ में मानव हृदय का चित्र है तथापि वह चित्र प्राकृतिक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। यह इतनी सूक्ष्मता से कहा गया है कि यह कहना कठिन है कि इन दोनों में कौन–सा भाग श्रेष्ठ है।

उपर्युक्त कथन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि महाकवि कालिदास के द्वारा चित्रित अन्तः एवं बाह्य प्रकृति मानवीय भावनाओं से ओत–प्रोत है। महाकवि ने मेघदूतम् में प्रकृति को मुख्यतः आलम्बन, उद्दीपन, उपकारिक एवं अलंकारिक इन चार रूपों में प्रस्तुत किया है।

आलम्बन रूप –

इसमें कवि प्रकृति को आलम्बन बनाता है तथा उसके प्राकृतिक दृश्यों को भावमयी दृष्टि से देखता है। प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य को देखकर कवि का भावुक हृदय उमड़ता है तथा उसकी भावनायें काव्य का रूप ले लेती हैं। यक्ष मेघ से कह रहा है कि मन्द एवं अनुकूल पवन बह रहा है। बलाकायें पंक्तिबद्ध

होकर आकाश में विचरण कर रही हैं–

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमाला
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः।।[1]

इसके आगे यक्ष पुनः कहता है कि देवगिरि पर्वत पर वायु पृथ्वी की गन्ध से रमणीय बन गया है। हस्ती उसका पान कर रहे हैं, तथा वह वायु कानन के गुलरों को पका रहा है–

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्।।[2]

उद्दीपन रूप–

इस रूप में प्रकृति के दृश्यों को देखकर उद्दीपन होता है और उसी के अनुकूल कवि अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। यक्ष ने ज्यों ही पर्वत शिखर से टकराते हुए मेघ को देखा, उसका धैर्य टूट गया तथा वह प्रिया के कण्ठालिंगन के लिए अधीर हो उठा–

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो–
रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे।।[3]

इस प्रकार प्रकृति के दृश्य यक्ष को अत्यधिक ही व्याकुल बना डालते हैं।

उपकारिका के रूप–

इस प्रकार के प्रकृति के चित्रण में महाकवि कालिदास सिद्धहस्त हैं। मेघदूत में यह चित्रण अपने चरमोत्कर्ष पर है। जहाँ पर उसने मेघ के लिए विचारों का आदान–प्रदान करते हुए मार्ग का निर्देश किया है, वहाँ कवि ने प्रकृति का मानवीकरण प्रस्तुत किया है तथा प्रकृति भी मानव के समान सुख–दुःख का अनुभव करती है।

यक्ष ने मेघ को यद्यपि धूम्र, प्रकाश, वायु एवं जल का सम्मिश्रण कहा है, तथापि वह कामार्त होने के कारण कृपण है। यक्ष कहता है कि आप सन्तप्त लोगों के शरण हैं। अतः मेरा भी सन्देश मेरी प्रिया तक पहुँचा दो–

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद! प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या।।[4]

यक्ष मेघ के उन्नत वंश की ओर संकेत करता हुआ कहता है–

जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानाम्,
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपम् मघोनः।।[5]

आलंकारिक रूप–

कवि इस विधा में प्रकृति का आलंकारिक वर्णन प्रस्तुत करता है। उसकी रागात्मक भावनायें प्रकृति को विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत करती हैं–

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता–
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुष्खण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः।।[6]

इसी प्रकार मेघदूत में कवि ने और भी बिम्बग्राही एवं संलिष्ट चित्र प्रस्तुत किए हैं। मेघदूतम् में प्रकृति का उद्दीपन, श्रृंगारिक एवं भक्ति इन तीन रूपों में चित्रण हुआ है। अन्त में इन सबका समन्वय कवि ने प्रदर्शित किया है।

पूर्वमेघ में आदि से अन्त तक प्रकृति की ही मनोहर झाँकी है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूतम्' का प्रकृति सौन्दर्य अद्वितीय है।

संदर्भग्रन्थ

1. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–9
2. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–46
3. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–03
4. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–07
5. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–06
6. मेघदूतम् – पूर्वमेघ–15

हिरण्यगर्भसूक्त में सर्वेश्वर परमात्मा का स्वरूप

श्रद्धा तिवारी
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

ऋग्वेद में सृष्टिसम्बन्धी दार्शनिक चिन्तन में ''हिरण्यगर्भ'' सूक्त का विशिष्ट स्थान है। इस सूक्त में 10 मन्त्र हैं। 9 मन्त्रों की समाप्ति ''कस्मै देवाय हविषा विधेम'' से हुई है। इन मन्त्रों में सर्वोच्च देवता के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की गई है। अन्तिम दसवें मन्त्र में प्रजापति को सर्वोच्च देवता के रूप में अधिष्ठित करके जिज्ञासा का समाधान किया गया है।

विद्वानों ने **''कस्मै''** शब्द की व्याख्या अनेक प्रकार से की है।

कस्मै – 'किसके' के लिए।
कस्मै – कामयते इति कः, तस्मै।
कस्मै – अनिर्वचनीयस्वरूप के लिए।
कस्मै – 'क' = आनन्दस्वरूप के लिए।

पुरुष में जो **''विराट्''** उत्पन्न होता है, वही हिरण्यगर्भ है तथा हिरण्यगर्भ को ही प्रजापति भी कहा गया है। जगत् के कारणस्वरूप परमात्मा का ही नाम **''हिरण्यगर्भ''** है। आचार्य सायण के मतानुसार सुवर्ण के अण्डे में गर्भ के रूप में स्थित प्रजापति का ही नाम हिरण्यगर्भ है अथवा हिरण्यगर्भ उस सूत्रात्मा को कहा गया है, जिसमें सुवर्णमय अण्डा गर्भरूप में स्थित था।

सृष्टि के आरम्भ में केवल जल ही जल था, तब परम् तेजोमय परब्रह्म ने अपने अंश का जल में निक्षेप किया, उस अण्ड से एक पुरुष की उत्पत्ति हुई, जो प्रजापति हिरण्यगर्भ नाम से अभिहित हुआ।

कया नश्चित्र आ भुवद्धिरण्यगर्भः समवर्तताग्र इति।

(आश्व0 श्रौ0 2.17)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

हिरण्यगर्भ (प्रजापति) सर्वप्रथम उत्पन्न हुआ और उत्पन्न होते ही वह समस्त भूतवर्ग (प्राणियों) का अद्वितीय स्वामी हो गया। उसने पृथिवी, आकाश और द्युलोक को धारण किया। ऐसे उस सर्वश्रेष्ठ देव को छोड़कर किस देवता का हम हवि से अर्चन करें? अथवा उस 'क' नाम वाले आनन्दस्वरूप हिरण्यगर्भ (प्रजापति) का हम अर्चन करते हैं।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व
उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

जो प्राण अर्थात् आत्मशक्ति प्रदान करने वाला है, जो बलप्रदाता है, जिसके बल की समस्त चराचर जगत् उपासना करता है, जिसके आदेश का पालन समस्त देवता भी करते हैं, अमृत और मृत्यु जिसकी छाया हैं अर्थात् जो जीवन और मृत्यु का स्वामी है, ऐसे उस सर्वोच्च देव प्रजापति की स्तुति का विधान किया गया है।

यः प्राणतो निमिषतो महि–
त्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

जो अपनी महत्ता से श्वास लेने तथा पलक झपकाने वाले अर्थात् इस संसार में जो श्वसनशील, शयनशील, कर्मशील तथा कर्मविरत, स्थिर (स्थावर–जङ्गम) जितने भी पदार्थ हैं, उन सबका एकमात्र स्वामी है, जो इस संसार में रहने वाले दो पैर वाले (मनुष्यों) व चार पैर वाले (पशुओं) पर शासन करता है। ऐसे उस महान् देवता को छोड़कर किस देवता का हम लोग हवि से पूजन करें?

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा
यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

जिसकी महिमा से ये हिम से आच्छादित पर्वत विद्यमान हैं। ये नदियाँ, समुद्र तथा ये समस्त दिशाएँ जिसकी व्यापकता का गान करती हैं अर्थात् जिसकी भुजाएँ मात्र ये समस्त दिशाएँ हैं, ऐसे देव जिसकी अचरों में भी महिमा है, उस विराट् देव के यजन का विधान किया गया है।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा
येन स्वः स्तभितं येन नाकः।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

जिस हिरण्यगर्भ के द्वारा उन्नत द्युलोक को ऊपर उठाया गया तथा पृथिवीलोक को स्थिर किया गया, स्वर्ग तथा नाकलोक को दृढ़ किया गया, जो अन्तरिक्ष में लोकों को नापने वाले हैं, ऐसे यह देव इतने विस्तृत हैं।

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमाय –
न्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

प्रारम्भ में हिरण्यगर्भ को जलों ने गर्भ के रूप में धारण किया तथा अग्नि आदि पञ्च प्राणभूतों को उत्पन्न करते हुए उस विशाल जलराशि ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर लिया, तब उसी से देवताओं का एकमात्र प्राणभूत प्रजापति उत्पन्न हुआ। ऐसे उस सुखस्वरूप प्रजापति के अर्चन का विधान किया गया है।

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्–
दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्–
कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

जिसने अपनी महिमा से दक्ष (प्रजापति) को धारण करने वाले तथा सृष्टि–उत्पत्ति रूप यज्ञ को उत्पन्न करने वाले महान् जलराशि को देखा, जो देवताओं के मध्य में अद्वितीय देव हैं। ऐसे महान् देव का हिरण्यगर्भ सूक्त में स्तवन किया गया है।

वह प्रजापति, जिसने पृथिवी को उत्पन्न किया है, जो सत्य नियमों को धारण किए हुए है, जिसने आकाशलोक को उत्पन्न किया, जिसने आह्लादकारी महान् जलों को उत्पन्न किया, ऐसे सुखस्वरूप प्रजापति से दुःखनिवारण हेतु अभ्यर्थना की गयी है–

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो
विश्वा जातानि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु
वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।

प्रजापति की महिमा तथा ऐश्वर्य अनन्त है। उनके अतिरिक्त अन्य कोई इन वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों को व्याप्त नहीं कर सकता है। जिस फल की कामना से यजमान हवि प्रदान करते हैं, वह उन्हें प्राप्त होता है और विविध प्रकार के ऐश्वर्य के स्वामी बन जाते हैं। ऐसे सर्वशक्ति–सम्पन्न जगदात्मा परमेश्वर ऋग्वेद के दशम मण्डल के 121वें सूक्त में हिरण्यगर्भ प्रजापति संज्ञा से स्तूयमान हुए हैं।

ऋग्वेद में इन्द्र का स्वरूप

कु0 संगीता
एम0ए0 पूर्वार्द्ध, संस्कृतविभाग

ऋग्वेदीय देवकुल में इन्द्र सर्वाधिक प्रमुख देवता हैं। ऋग्वेद के चतुर्थांश 250 सूक्तों में इनका स्तवन किया गया है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बसन्त को इन्द्र की ऋतु कहा गया है और बसन्त में सूर्य की शक्ति का वितन्वन होता है। महाव्रत और अतिरात्र नामक सोमयागों से इन्द्र का गहरा सम्बन्ध है। ये दोनों सोमयाग सूर्य–संक्रान्ति के पर्व हैं। इन्द्र ने अहि को मारा तथा जल का भेदन किया तथा पर्वतों को काटकर नदियों को बहाया–

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं
यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द
प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्।।

भारतीय विद्वानों ने इन्द्र शब्द की अनेक व्युत्पत्तियाँ प्रस्तुत की हैं –

इदम् (उपपद) + दृश्, इदं पश्यति इति इन्द्रः– इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को देखने वाला।

1. इदम् + कृञ्, इदम् करोति इति इन्द्रः– इस जगत् का स्रष्टा।
2. इरा + दृ (विदारना, विदीर्ण करना), इरां दृणातीति।
3. इरा + दा (देना), इरां ददाति, सायण–इरामन्नम् वृष्टिनिष्पादनेन ददाति।
4. इरा + धा (धारण करना, पोषण करना) इरां दधाति ।

इन्द्र मध्यस्थान के देवों में सर्वश्रेष्ठ है। निघण्टु में इनकी गणना अन्तरिक्षस्थानीय देवों में की गयी है और इन्हें अग्नि, वायु तथा सूर्य के त्रिवर्ग में वायु का प्रतिनिधि माना गया है। सोम से भर जाने पर इन्द्र के अन्दर की तुलना झील से की गई है। इन्द्र को सुशिप्र (सुन्दर अधरों वाला अथवा सुन्दर जबड़ों वाला) कहा गया है–

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य
यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः
सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः।।

इन्द्र के केश और दाढ़ी हरितवर्ण के हैं। इन्द्र स्वेच्छा से रूप परिवर्तन करने में समर्थ हैं। अपने गुणों के कारण इन्द्र आर्यों के जातीयदेवता बन गये। ऋग्वेद की ऋचाओं के अनुसार इन्द्र के तीन गुण कहे गये हैं– महान् कार्यो को करने की शक्ति, अतुल पराक्रम और असुरों को युद्ध में जीतना। इन्द्र के पिता द्यौस् हैं। इन्होंने जन्म लेते ही समस्त देवों को अपने पराक्रम से परास्त कर दिया। इन्द्र के पौरुष की महिमा से रोदसी सिहर उठी। इनके जन्म लेने पर पर्वत, आकाश और पृथ्वी भय से काँप गये–

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।

इनका शस्त्र वज्र है। इस वज्र का निर्माण इनके लिए त्वष्टा ने किया था–

त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष

इनका वज्र चतुष्कोणीय, शतकोणीय तथा सहस्त्र नोकों वाला है। वज्रधारक होने से वज्रभृत्, वज्रबाहु और वज्रहस्त विशेषणों से युक्त इन्द्र सुशोभित होते हैं। इन्द्र कभी–कभी धनुष और बाण भी धारण करते हैं। इनके बाण स्वर्णिम, शतनोकों वाले तथा हजारों पंखों से समन्वित हैं। इन्द्र रथ पर आरुढ़ होते हैं। इन्द्र सोमपान में अत्यन्त दक्ष है। वृत्र वध के समय इन्द्र ने तीन सोमसरोवरों को पीकर सुखा दिया था। एक बार इन्होंने सोम के तीस सरोवरों का पान कर लिया था।

इन्द्र को शचीपति कहा गया है। एक सूक्त में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी कही गयी हैं। इन्द्र के यमज भ्राता अग्नि कहे गये हैं। पूषा को भी इनका भाई बतलाया गया है। इन्द्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य वृत्र को मारना था। वृत्र ने जल को आवृत कर रखा था। मरुतों की सहायता से इन्द्र ने उसका वध किया। जल को बहने के लिये मुक्त कर दिया है–

यो अपो ववृवासं वृत्रं जघान।

वृत्र वध करने के अनन्तर इन्द्र ने रंभाती हुई धेनुओं की भाँति जल धाराओं को समुद्र की ओर जाने के लिये उन्मुक्त कर दिया। वृत्र को अहि कहा गया है। वृत्र के अन्य मित्रों में शम्बर, बल आदि का उल्लेख मिलता है। इन्द्र ने चालीसवें वर्ष में दानु के सोते हुए पुत्र को मारा डाला–

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं
चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान
दानुं शयानं स जनास इन्द्रः।।

अहि के मरते ही सातों नदियाँ बहने लगीं। इस बलवान् ने आकाश की ओर बढ़ते हुए रौहिण को

काट डाला।

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्

यो गा उदाजदपधा बलस्य।

इन्द्र ने बल के बाड़े से समस्त गायों को मुक्त कर दिया। इस बलवान् ने सात धाराओं को बहने के लिये मुक्त कर दिया तथा द्युलोक पर आरूढ़ होकर रोहिण सुत (राहु) को मार डाला–

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान–

वासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।

यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहु

द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः।।

वृत्रवध आदि अनेक वीरकर्म करने के साथ–साथ इन्द्र ने चञ्चल पृथिवी को स्थिर कर दिया। चञ्चल पर्वतों को भी अचल कर दिया। सम्भवतः पर्वतों के अचलीकरण के कारण ही आगे चलकर पौराणिकयुग में इन्द्र को पक्षधर पर्वतों का पंख काटने वाला कहा गया है। विस्तृत अन्तरिक्ष को नापने के अनन्तर इन्द्र ने द्युलोक को स्थिर कर दिया।

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्

यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो

यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः।।

उन्होंने दासों (असुरों) को नीचा कर दिया। शत्रुओं का धन जीतकर अपने अराधकों को दिया। मंत्रों के गायक और सोमाभिषवण करने वालों को वे प्रेरित करते हैं, सहायता देते हैं।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।

श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः

पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।

युद्ध में स्थित सेनायें इन्द्र को सहायता के लिए जब पुकारती हैं, तब वह सबको समेट लेते हैं। उनके अनुशासन में सब गायें, गाँव, रथ और घोड़ें हैं। वह सूर्य और उषा को जन्म देने वाले हैं और जलों के प्रेरक हैं।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो

यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।

यः सूर्यं य उषसं जजान

यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।।

उनकी सहायता के बिना लोग युद्ध में विजय नहीं प्राप्त कर पाते हैं, अतएव उन्हें पुकारते हैं, वे पापी तथा अपूजकों को अपने शरु (वज्र) से मार डालते हैं। दृप्त मनुष्यों के दर्प को वह सहन करने में असमर्थ हैं।

यः शश्वतो मह्येनो दधाना–

नमन्यमानाञ्छर्वा जघान।

यः शर्धते नानुददाति शृध्यां

यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः।।

अनेक कर्मों एवं प्रजाओं का स्वामी होने के कारण इन्द्र शतक्रतु हैं। शत्रुओं का धन छीनकर वह अपने पूजकों को देते हैं और स्वयं ऐश्वर्य के अधीश हैं। अतएव मधवन् विरुद से वह अनुभूषित है। वृत्र आदि के अनेक पुरों को नष्ट करने के कारण इन्द्र को पुरभिद् कहा जाता है। उनके भूरे रंग के घोड़े हैं। उन्हें शक्र एवं शचीपति कहा गया है। इन्द्र देवता की स्तुति ऋग्वेद में सर्वाधिक सूक्तों में की गयी है। इन्द्र को ऋग्वेद में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। अग्नि और उषा को इनका भ्राता बताया गया है। इन्द्र अत्यन्त पराक्रमी हैं। इन्द्र को मधवा, वज्रबाहु, वज्रहस्त इत्यादि विशेषण दिये गयें हैं।

माँ

श्वेता मिश्रा
एम.ए., पूर्वार्द्ध,प्राचीन भारतीय
इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्वविभाग

माँ के सिवा ना कोई प्यारा होता,
माँ के सिवा ना कोई हमारा होता।
माँ ही ज़िन्दगी की आस होती है,
माँ ही हर सुख–दुःख मे हमारे साथ होती है।
माँ के बिना कोई नहीं अरमान पूरा कर पायेगा,
माँ के सिवा कोई ना अपना बन पायेगा।
तू अद्भुत और धन्य है माँ,
तुझ–सा इस जहाँ में कोई न अन्य है माँ।
तू साक्षात् गंगा की तरह पवित्र है,
सीता की तरह तेरा पावन चरित्र है।
तेरे बिना माँ दुनिया में धोखा है,
हमारी किसी गलती पे किसी ने ना टोका है।
माँ के सिवा ना कोई प्यारा होता,
माँ के सिवा ना कोई हमारा होता।
काश! तू दुनिया की बुरी नजर से बचा लेती,
कोई अनहोनी होने से पहले,
अपने आँचल मे छुपा लेती।
धन्य है तू महान् आत्मा,
मेरे लिए है तू साक्षात् परमात्मा।

•••

डिजिटल इंडिया : सशक्त भारत

पूनम कुमारी
एम. ए. उत्तरार्द्ध, इतिहासविभाग

भारत को डिजिटल रूप से सशक्त बनाने के लिए केन्द्र सरकार ने करीब एक लाख करोड़ रूपये मूल्य की एक योजना लागू की जो डिजिटल इंडिया योजना के नाम से जानी जाती है। यह सरकारी विभागों और प्रमुख कम्पनियों के एकीकरण के द्वारा डिजिटल रूप से सशक्त भारतीय समाज के लिए एक योजनागत पहल है। यह एक प्रभावशाली ऑनलाइन मंच है जो '' चर्चा, कार्य करना और वितरण'' जैसे विभिन्न दृष्टिकोण के द्वारा शासनप्रणाली में लोगो को शामिल कर सकता है। डिजिटल इंडिया एक व्यापक कार्यक्रम है जो अनेक सरकारी मंत्रालयों और विभागों से सम्बद्ध होता है। यह तरह–तरह के विचारों को एकल एवं व्यापक दृष्टिकोण में समाहित करता है।

केन्द्रीय संचार, सूचना, प्रौद्योगिकी और विधि व न्यायमंत्री श्री रविशंकर प्रसाद ने 26 अगस्त 2014 को राज्यों, केन्द्रशासित प्रदेशों के सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रियों और आई.टी. सचिवों के सम्मेलन की अध्यक्षता की। इसमें डिजिटल इंडिया कार्यक्रम पर चर्चा की गयी। दस राज्यों जैसे आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गोवा, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, मध्य प्रदेश, मेघालय, ओडिसा, तेलंगाना और उत्तर प्रदेश के आई.टी. मंत्रियों ने इस सम्मेलन में शिरकत की। तत्पश्चात् भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इस कार्यक्रम की औपचारिक शुरूआत 1 जुलाई 2015 को नई दिल्ली में की। यह योजना 2018 तक चरणबद्ध तरीके से क्रियान्वित की जायेगी।

डिजिटल इंडिया मिशन कम्प्यूटर, मोबाइल, इंटरनेट, नेटवर्किंग डिवाइस, हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर का एक ऐसा संयुक्त डिजिटल प्लेटफार्म है जो एक आम आदमी को सरकारी सेवाओं से सीधा जोड़ता है। इस योजना का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बिना कागज के इस्तेमाल के सरकारी सेवा इलेक्ट्रॉनिक रूप से जनता तक पहुँच सके, साथ ही ग्रामीण इलाकों को हाईस्पीड इंटरनेट के माध्यम से जोड़ना भी है। यह एक अंतर–मंत्रालयी पहल होगी जहां सभी मंत्रालय तथा विभाग अपनी सेवाएँ जनता तक पहुँचाएगें, चयनित रूप से पब्लिक, प्राइवेट, पार्टनरशिप (पी0पी0पी0) मॉडल को अपनाया जायेगा।

डिजिटल इंडिया के स्वरूप को देखा जाय तो इसके तहत कम से कम दस महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों में मुख्य सूचना अधिकारी का पद होगा ताकि विभिन्न ई–गवर्नेंस परियोजनाएँ विकसित और तेजी से क्रियान्वित की जा सकें। प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली समिति इस कार्यक्रम की निगरानी करेगी। एक डिजिटल इंडिया परामर्श समूह का गठन होगा जिसकी अध्यक्षता संचार व आई.टी. मंत्री करेंगे।

डिजिटल इंडिया के तीन मुख्य दृष्टिगत क्षेत्र हैं पहला, भारतीय लोगों के लिए एक जनोपयोगी सेवा की तरह पूरे देश में डिजिटल सरंचना हो जिससे कि यह तेज गति की इंटरनेट उपलब्ध करायेगी साथ ही सभी सरकारी सेवाओं तक आसान और तेज पहुँच हो जायेगी। ये किसी भी आनॅलाइन सेवा जैसे बैंक खाता चालान, वित्त प्रबन्धन, सुरक्षित और सुनिश्चित साईबर स्पेस, दूरस्थ शिक्षा आदि के लिये बेहद कारगर साबित होगा। दूसरा, डिजिटल इंडिया का क्षेत्र यह है कि यह सुशासन की अत्यधिक मांग और ऑनलाइन सेवा डिजिटाईजेशन के द्वारा वास्तविक समय में सभी सेवाओं को उपलब्ध करायेगा। डिजिटल रूप से बदली हुई सेवा भी वित्तीय लेन–देन को आसान बनायेगी तथा इलेक्ट्रॉनिक और बिना नकद के ऑनलाईन व्यापार के लिये लोगों को बढ़ावा देगी।

तीसरा, डिजिटल इंडिया का क्षेत्र यह भी है कि भारतीय लोगों का डिजिटल सशक्तीकरण डिजिटल संसाधनों की वैश्विक पहुँच के द्वारा डिजिटल साक्षरता को वास्तव में मुमकिन बनाएगी। ऑनलाइन प्रमाण पत्र या जरूरी दस्तावेजों को जमा करने के लिये ये लोगों को सक्षम बनायेगी।

अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपनी ऐतिहासिक भारत यात्रा के दौरान भारत और अमेरिका के रिश्तों में आशा और भरोसे की नींव रखी और कहा कि डिजिटल इंडिया भारत के हर नागरिक के जीवन की गुणवत्ता में एक वास्तविक सुधार वितरित करेगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि ***मै विश्वास करता हूँ कि इस रिश्ते से अन्य क्षेत्रों के अलावा आई.सी.टी. और डिजिटल कनेक्टिविटी के क्षेत्र में अपार क्षमता विकसित होगी।*** भारत पहले से ही आईटी निर्यात का साठ प्रतिशत लगभग पचास अरब डॉलर का कारोबार अमेरिकी बाजार से पूरा करता है।

डिजिटल इंडिया के माध्यम से इस तकनीक को देश के कोने–कोने में रह रहे लोगों तक पहुँचाने के लिए इसके प्रमुख उद्देश्य हैं –

डिजिटल इंडिया का पहला उद्देश्य ब्राडबैंड हाइवेज है जिसका मतलब दूरसंचार है जिससे सूचना के संचार के लिए आवृत्तियों के व्यापक बैंड उपलब्ध होते हैं।

दूसरा उद्देश्य, डिजिटल इण्डिया का ई–गवर्नेंस प्रौद्योगिकी के जरिए सरकार को सुधारना है।

तीसरा उद्देश्य, डिजिटल इंडिया ई–क्रान्ति सेवाओं की इलेक्ट्रॉनिक डिलीवरी है जिसमें ई–एजुकेशन के तहत सभी स्कूलों को ब्राडबैंड से जोड़ना , सभी स्कूलों को मुक्त वाई–फाई की सुविधा मुहैया कराना है।

चौथा उद्देश्य ,सूचना और दस्तावेजों तक ऑनलाइन पहुँच कायम की जाएगी इसके लिए ओपन डाटा प्लेटफॉर्म मुहैया कराया जायेगा ।

पांचवा उद्देश्य, इलेक्ट्रॉनिक्स क्षेत्र में आत्मनिर्भरता बनाना है, ताकि 2020 तक यह स्थिति हासिल की जा सके। मोबाइल कनेक्टिविटी सबको सुगम सुलभ कराना है । देश में ग्रामीण इलाकों में डिजिटल इंडिया के माध्यम से ग्रामीण उपभोक्ताओं के लिए इंटरनेट और मोबाइल बैकिंग के इस्तेमाल में आसानी होगी और अगले तीन साल में भारत के ढ़ाई लाख ग्राम पंचायतों को उच्च गति की ऑप्टिक

फाइबर के माध्यम से 70000 किमी से भी अधिक दूरी के क्षेत्रों को जोड़ना है।

डिजिटल इंडिया मे अनेक परियोजनाएँ लागू की गई हैं जो निम्न हैं–

पहली परियोजना, डिजिटल लॉकर प्रणाली शुरू की गई है जिससे पंजीकृत संग्राहकों के जरिए महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों को ई–दस्तावेजों में सुरक्षित रखना।

दूसरी परियोजना, 'डिस्कस 'डू' डिसिमिनेट' अप्रोच के जरिए प्रशासन में आम लोगों की भागीदारी के लिए mygov.in एक प्लेटफार्म के रूप में लागू की गई है।

तीसरी परियोजना, स्वच्छ भारत मिशन मोबाइल एप का उपयोग स्वच्छ भारत मिशन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए जनता और सरकारी संगठनों द्वारा किया जा सकेगा।

चौथी परियोजना, आधार प्रमाणिकता का उपयोग करते हुए ऑनलाइन दस्तावेजों पर ई–हस्ताक्षर डिजिटल रूप से किये जा सकेगें।

पांचवी परियोजना, नए शुरू किये गए ई–हॉस्पिटल एप्लीकेशन के अधीन ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन सिस्टम शुरू किया गया है तथा लाक्षणिक जाँच शुरू की गई है।

छठीं परियोजना, नेशनल स्कॉलरशिप पोर्टल से छात्रों के आवेदन पत्र जमा करने, सत्यापन, स्वीकृति और लाभार्थियों को भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही छात्रवृत्तियों के वितरण तक की प्रक्रिया का एक मुश्त समाधान हो सकेगा।

आठवीं परियोजना, नागरिकों तक सेवाएँ इलेक्ट्रॉनिक रूप से उपलब्ध कराने के लिए ब्राडबैंड हाईवेज को डिजिटल इंडिया के एक मुख्य स्तम्भ के रूप में शामिल किया गया है।

नौवी परियोजना, फ्लेक्सिबल इलैक्ट्रानिक्स के उभरते हुए क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहित करने के लिए फ्लेक्सिबल इलेक्ट्रानिक्स के लिए राष्ट्रीय केन्द्र स्थापित किया गया है। साथ ही इंटरनेट ऑन थिंग्स के लिए उत्कृश्टता केन्द्र इलेक्ट्रानिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग, व नैस्कॉम की संयुक्त पहल के रूप में स्थापित किया गया है।

डिजिटल इंडिया को अपने लक्ष्य तक पहुंचने की राह में कुछ चुनौतियाँ व बाधाएँ हैं इसमें मानव संसाधन अर्थात् कर्मचारियों की कमी का मसला सबसे अहम हो सकता है। देश में सूचनाओं को प्रेषित करने वाली संस्था नेशनल इंफोर्मेटिक्स सेंटर के पास इस टास्क को पूरा करने की क्षमता नहीं है। इसके अलावा वित्तिय संसाधन भी एक मसला है। नैस्कॉम के मुखिया का कहना है कि देश के सभी ढ़ाई लाख पंचायतों को ब्राडबैड से जोड़ने के लिए 20,000 करोड़ से ज्यादा खर्च आ सकता है जिससे देश की अर्थव्यवस्था व्यापक रूप से प्रभावित हो सकती है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि डिजिटल इंडिया कार्यक्रम केन्द्र सरकार के इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा विभिन्न केन्द्रीय कार्यालयों व राज्य सरकारों के सहयोग से तैयार और समन्वित किया गया कार्यक्रम है। यह योजना वास्तव में तेज गति की इंटरनेट सेवा के साथ

दूर–दराज के गाँवों और ग्रामीण क्षेत्रों के द्वारा ग्रामीण इलाकों में वृद्धि और विकास को सुनिश्चित करेगी। इंटरनेट की उपलब्धता से डिजिटल इंडिया के नागरिक अपने कौशल स्तर और ज्ञान में सुधार कर सकते हैं। डिजिटल इंडिया से सरकारी कार्यो में पारदर्शिता आने से भ्रष्टाचार में कमी आएगी। डिजिटल इंडिया योजना तो अच्छी है लेकिन क्या सरकार यह योजना जन–जन तक पहुंचा पायेगी ? क्या आम आदमी को इसका लाभ मिल पायेगा? तो यह आने वाला भविष्य ही बतायेगा। हम आशा करते हैं कि यह योजना वास्तविक रूप से सफल हो, आम आदमी डिजिटल साक्षर बन जायें। मेरा यह मानना है कि सभी के लिए ब्राडबैंड ऑफिस, कृषि उत्पादों जैसे क्षेत्रों में ग्रामीण भारतीयों के लिए आर्थिक अवसरों की एक नई दुनिया खुल जाएगी।

साम्प्रदायिक राजनीति

दुर्गा कुमारी
एम0 ए0 उत्तरार्द्ध, इतिहासविभाग

भारतवर्ष एक विशाल देश है । भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का इतिहास, बहुत लम्बा और उत्थान–पतन की घटनाओं से भरा है। भारत विविधताओं में एकता का देश है । इसके अन्दर भौतिक विषमताओं के साथ–साथ भाषा, धर्म, वर्ण, रूप–रंग, खान–पान और आचारों–विचारों में भी विषमता पाई जाती है, किन्तु फिर भी भारत एक सुसंगठित राष्ट्र होते हुए भी साम्प्रदायिकता जैसी अत्यन्त जटिल समस्या से जूझ रहा है ।

साम्प्रदायिकता भारतीय समाज की चिर–परिचित समस्याओं में से प्रमुख विचारणीय समस्या रही है । वर्तमान युग में तो इस समस्या का राजनीतिकरण हो जाने के कारण यह अत्यधिक जटिल एवं चिन्तनीय हो गयी है । साम्प्रदायिक विद्वेष, दंगे, उग्रवाद, आतंकवाद और अल्पसंख्यकवाद तथा बहुसंख्यकवाद की राजनीति ये समस्या के जाने–पहचाने चेहरे हैं, जो समय–समय पर राष्ट्रीय परिदृश्य में दृष्टिगोचर होते रहते हैं । कभी आक्रामक रूप में तो कभी सामान्य रूप में ये सामाजिक, शान्ति, प्रगति और स्थायित्व के राष्ट्रीय तन्त्र को प्रभावित करते हैं ।

साम्प्रदायिकता एक समुदाय विशेष लोगों के लिए इस विश्वास पर आधारित अवधारणा है कि ''किसी खास धर्म को मानने वाले लोगों के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हित भी समान होते हैं । यह वही धारणा है, जो भारत में हिन्दू, मुसलमान, ईसाइयों और सिखों को अलग–अलग समुदाय मानती है, जिनका निर्माण एक–दूसरे से अलग–थलग और बिल्कुल स्वतन्त्र रूप से हुआ है।'' धर्मों के उन्माद फैलाकर सत्ता हासिल करने की हर कोशिश साम्प्रदायिकता को बढ़ाती है, चाहे वह कोशिश किसी भी व्यक्ति, समूह या दल के द्वारा क्यों न होती हो ।

प्राचीनकाल में तो लोग साम्प्रदायिक हितों व उनके लाभ से बिल्कुल अपरिचित थे तथा भारत में प्राचीनकाल से चले आ रहे धर्मों द्वारा स्थापित की गयी शान्ति–सद्भावना के संदेश ने भारतीय एकता एवं अखण्डता की गरिमा को बनाए रखा लेकिन मध्यकाल में मुस्लिमों के आक्रमणों के साथ ही एक नवीन धर्म इस्लाम ने भारत में प्रवेश कर एक विशेष समुदाय जैसी प्रवृत्ति को विकसित किया जिसके परिणामस्वरूप भारत की सर्वधर्मपरम्परा पर सबसे बड़ा आघात इस भूमि पर हुए बाहरी आक्रमण और उनका शासन रहा । मुगलकाल में सत्ता के कारण समाज प्रभावित हुआ । मुस्लिम शासन के दौरान कुछ आततायी शासकों ने हिन्दू मंदिरों को तोड़ा और गोहत्या को भी मौन स्वीकृति दी जिससे समाज पूरी तरह प्रभावित हुआ और समाज में शासन का दखल बहुत बढ़ गया ।

अयोध्या का बाबरीमस्जिद विवाद आज भी कायम है, जो समय–समय पर संघर्ष का कारण बनता रहता है। मुगलों के काल से चली आ रही इस राजनीति का और भी वीभत्स रूप ब्रिटिश काल में समाज के सामने आता है । अंग्रेजों ने हिन्दू–मुस्लिम एकता पर वैमनस्य उत्पन्न करने की चेष्टा की । अपनी सत्ता को बनाए रखने के लिए 'फूट डालो और राज करो' (Divide and Rule) के इस अपने परम्परागत सिद्धान्त का आश्रय लेते हुए हिन्दुओं के विरुद्ध मुसलमानों को राजनीतिक रियायत देने के उद्देश्य से 1909 में साम्प्रदायिकता को हथियार बनाकर तथा पृथक् निर्वाचन प्रणाली देकर हिन्दू विरोधी भावना को इतना बढ़ावा दिया कि जिन्ना और इकबाल की कट्टर धर्मान्धता ने उनमें राजसत्ता की लालसा उत्पन्न कर दी जिसके कारण मुस्लिम लीग ने 1940 में एक पृथक् राष्ट्र 'पाकिस्तान' की माँग रख दी ।

साम्प्रदायिकता भारतीय राजनीति का अभिशाप रही है जिसके कारण राष्ट्रीय हितों पर घातक प्रहार पड़ा है। यह साम्प्रदायिकता उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में अपने भीषण रूप में आयी । आगे चलकर यह भावना इतनी शक्तिशाली हो गयी कि 1947 में देश का विभाजन हो गया ।

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के रूप में घोषित किया गया है, लेकिन विभाजन के लिए जिम्मेदार साम्प्रदायिक तत्त्व समाप्त नहीं हुए हैं। साम्प्रदायिक राजनीति आज के युग में राजनेताओं का हथियार है जिसका समय–समय पर हर कोई उपयोग करता है । प्रारम्भिक दौर में साम्प्रदायिकता अंग्रेजों द्वारा मुस्लिम राजनीति के लिए प्रयोग में लाई गयी थी किन्तु किसी को क्या पता था कि साम्प्रदायिक राजनीति स्वतन्त्र भारत की ही नहीं अपितु विश्व राजनीति के लिए एक जटिल समस्या बन जाएगी ।

राजनीतिक दल भी साम्प्रदायिकता को वोट बैंक का मुख्य साधन मानते हैं, जो सिर्फ सत्ता की लालसा को प्रदर्शित करता है। आजादी के पश्चात् इस प्रकार की राजनीति का सबसे वीभत्सरूप सन् 1884 ई0 में सिख दंगों में करीब 5000 सिखों का कत्लेआम किए जाने की घटना सामने आती है ।

इसी प्रकार से गुजरात के गोधरा में भी साम्प्रदायिक दंगे हुए थे । यह घटना फरवरी 2002 की थी, जिसमें हिन्दू–मुस्लिम एक–दूसरे पर आक्षेप लगाकर साम्प्रदायिकता जैसी घटनाओं को अंजाम दे रहे थे । इसके अलावा 2005 में अयोध्या में 'रामजन्मभूमि पर होने वाला हमला, 2006 में वाराणसी बम विस्फोट, 2006 में 'जामा–मस्जिद विस्फोट, मुम्बई बम धमाका 26/11 की घटना, राष्ट्र एवं समाज को क्षतिग्रस्त करती रही है। साम्प्रदायिकता जैसी जटिल समस्या का ही एक परिणाम था जो कि लाखों हत्याएँ और देश का विभाजन होने के बाद भी कश्मीर की नयी समस्या विकसित कर दी गयी । कश्मीर मामले का अन्तर्राष्ट्रीयकरण कर दिया गया । इससे समस्या का समाधान तो नहीं हुआ, लेकिन भारत को और टुकड़ों में विभाजित करने की रणनीति अवश्य बनने लगी ।

इसी प्रकार से राजनीतिक दलों की ओर से चाहे जैसे दावे क्यों न किए जाएँ, सच यह है कि जो कदम अंग्रेजों ने उठाया था, वही कदम पिछले कुछ दशकों से सत्ता हासिल करने के लिए राजनीतिक दल साम्प्रदायिक और जातीय बिखराव फैलाने की कोशिश में उठाने लगे हैं । आगामी विधानसभा चुनाव वाले राज्यों में भी उनकी ओर से ऐसी घिनौनी कोशिश की जा रही है।

कैराना और अलीगढ़ से हिन्दुओं के पलायन की खबरें अभी हाल तक सुर्खियों में थीं। ये सभी यही जाहिर करते हैं कि सकारात्मक राजनीति नहीं की जा रही हैं । इस तरह की घटनाओं के पीछे जो एक चीज साफ दिखती है वह यह है कि कुछ अवांछित तत्त्व सदियों से एक सूत्र में बँधे समाज को बाँटने की साजिश कर रहे हैं । दुर्भाग्य से इन तत्त्वों के पीछे राजनीतिक दलों या उनके सहयोगी संगठनों का हाथ रहता है। वे जनता में वैमनस्य पैदा करके और फूट डाल कर अपना वोट बैंक सुरक्षित रखना चाहते हैं । जातीय और साम्प्रदायिक राजनीति पहले भी होती थी, लेकिन आज हम उसका भयानक चेहरा देख रहे हैं। चुनावी राजनीति ने सारी मर्यादाएँ ताक पर रख दी हैं ।

यदि वास्तव में भारत में सर्वधर्म समभाव की भावना को कायम रखना है तो हमें साम्प्रदायिकता जैसी समस्याओं से निपटना होगा । तभी भारत माँ के आँचल में भारत के सभी समुदायों एवं धर्मों के लोग एक ही शरीर के विभिन्न अंगों की तरह एक साथ रह पाएँगे, अन्यथा यह देवभूमि सुरक्षित नहीं रह पाएगी।

इसी परिप्रेक्ष्य में महान् संत स्वामी दादूदयाल की ये पंक्तियाँ चरितार्थ हो पाएँगी–

दोनों भाई हाथ–पग, दोनों भाई कान ।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू–मुसलमान ।।

यह कहा जा सकता है कि हम भारतीय हैं, हमें इस बात पर गर्व है, क्योंकि यहाँ विभिन्न धर्मों एवं जातियों के लोग रहते हैं। इसलिए भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है, जिससे कि धर्म को राजनीति से हटाया जा सके किन्तु आज भी राजनीतिक एवं सामाजिक क्षेत्र में धर्म के आधार पर भेदभाव किए जाते हैं। साम्प्रदायिक झगड़े भले ही छिटपुट और स्थानीय हों, लेकिन उनसे देश की बदनामी होती है और उसका लोकतान्त्रिक धर्मनिरपेक्ष स्वरूप कलंकित होता है, क्योंकि साम्प्रदायिकता का उद्देश्य संकुचित हितों की रक्षा करना होता है ।

अतः राष्ट्रीय नेताओं का यह दायित्व है कि वे समुदाय के सीमित तथा राष्ट्र के बृहत्तर हितों के मध्य सन्तुलन स्थापित करें, समुदाय को राष्ट्र में बदलें । भविष्य में यह आशा व्यक्त की जा सकती है कि राजनीतिक एवं लोकतान्त्रिक आदर्शों में वृद्धि होने से साम्प्रदायिकता जैसी जटिल समस्या का निदान हो सकता है ।

देशप्रेम वह पुण्य क्षेत्र है अमर असीम त्याग से विलसित ।
आत्मा के प्रकाश से जिसमें मनुष्यता होती है विकसित ।।

सन्दर्भग्रन्थ

- चन्द्र बिपिन आधुनिक भारत में साम्प्रदायिकता'; दिल्ली वि0 वि0 प्रथम संस्करण : 1996
- अली असगर इंजीनियर (अनुवाद–सुभाषचन्द्र), 'भारत में साम्प्रदायिक इतिहास और अनुभव; साहित्य उपक्रम 2003, 04

- ग्रोवर बी0 एल0 यशपाल, अलका मेहता– 'आधुनिक भारत का इतिहास' (एक नवीन मूल्यांकन), एस0 चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, 2011
- दत्त आर0 पी0 – 'आज का भारत' (अनुवाद रामविलाश शर्मा) पुनः मुद्रण, 2012, दिल्ली ।
- पाण्डे डॉ0 राजबली; हिन्दू धर्मकोश, उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1988
- दैनिक जागरण 11 अप्रैल, 2016 ।

शिक्षा के क्षेत्र में महामना मदनमोहन मालवीय जी का योगदान

सानिया बेगम
एम0 ए0 उत्तरार्द्ध इतिहासविभाग

बड़े व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है जो उसे महान् बनाती है । उनकी कथनी, करनी और व्यवहार में अन्तर नहीं होता । वह जो अन्दर है वह बाहर भी है । उनका व्यवहार उनके आदर्श, चिन्तन मूल्य की प्रतिछाया होती है । मानवता उनके रोम–रोम में बसी होती है । वह अपने सिद्धान्तों से कभी नहीं हटते भले ही कितनी भी परेशानियाँ हों । यह अदम्य साहस, धैर्य, क्षमता और बुद्धिमानी का परिचय देते हैं । मदनमोहन मालवीय जी ऐसे ही गुणों के सागर थे ।

आज के आधुनिक युवा के मन में भले ही श्री अटल बिहारी वाजपेयी की स्मृतियाँ गुँजायमान हो परन्तु गुलामभारत में भारतीय सरकार को आधुनिकविश्व से पहचान कराने के लिए काशी हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना एवं सांस्कृतिक नवीनीकरण का जो दर्शन मालवीय जी ने अंग्रेजों के सामने दिया है वह अद्वितीय एवं अनुकरणीय है । पं0 मदनमोहन मालवीय जी का जन्म 25 दिसम्बर 1861 ई0 को उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद शहर में हुआ था । इनके पिता का नाम ब्रजनाथ और माता का नाम भूनादेवी था। चूँकि ये लोग मालवा के मूल निवासी थे अतः मालवीय कहलाए ।

महामना का सपना था कि हर क्षेत्र में आने वाला कल भारत के नौजवानों का हो इसके लिए बिना अंग्रेजों के हस्तक्षेप का एक अपना विश्वविद्यालय हो । वे चाहते थे कि देश में एक ऐसा संस्थान हो जिससे भारत के युवक–युवतियों को उच्च शिक्षा के लिए विदेश न जाना पड़े । महामना ने न सिर्फ सपना देखा बल्कि भविष्य के लिये उसे सजाया भी और संवारा भी । 1904 में काशी के मिंट हाउस में तत्कालीन काशी नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता में हुई ऐतिहासिक बैठक में महामना ने अपने सपने को एक प्रस्ताव के रूप में पेश किया । 31 दिसम्बर 1905 में नगर के टाउनहॉल में सभा का आयोजन हुआ । गोखले और बाल गंगाधर तिलक जैसी महान हस्तियों के साथ पूरी सभा ने महामना के प्रस्ताव को सराहा । 1906 में प्रयाग में हुई धर्म महासभा की सभा ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया । 1907 में विश्वविद्यालय के कच्चे खाके को एक सुस्पष्ट संशोधित प्रास्पेक्टस के रूप में प्रकाशित करवाया । जिससे महामना पूरे देश में चर्चा के विषय बन गये । महामना के विचारों से डॉ0 एनी बेसेंट इतनी प्रभावित हुईं कि बिना सोचे अपने सेंट्रल हिन्दू कॉलेज को हिन्दू यूनिवर्सिटी का रूप देने को तैयार हो गयीं।

अपने सपने को साकार करने के लिए मालवीय जी 1911 में देशव्यापी दौरे पर निकल पड़े । उन्होंने जनसाधारण से लेकर बड़े–बड़े राजा–महाराजाओं और सेठ साहूकारों तक से सहायता माँगी और इस तरह एक करोड़ रूपये जमा किये । इसी राशि के माध्यम से 4 फरवरी 1916 को काशी हिन्दू

विश्वविद्यालय की स्थापना की । लॉर्ड हार्डिन्ग ने इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया ।

परिसर स्थित श्री विश्वनाथ मंदिर के बायीं ओर केन्द्रीयग्रन्थालय से आरम्भ होकर उत्तर दिशा की ओर विभिन्न शिक्षा सम्बन्धी विभाग हैं, जो ज्ञान योग के प्रतीक हैं । दायीं ओर कृषिविज्ञान संस्थान से प्रारम्भ होकर दक्षिण दिशा में भारतीय प्रौद्योगिकीसंस्थान व कृषि प्रक्षेत्र हैं जो कर्म सम्बन्धी विभाग हैं, कर्म और ज्ञान योग के केन्द्र में मंदिर भक्तियोग है । मंदिर के ठीक सामने ही केन्द्रीय कार्यालय है यहीं विश्वविद्यालय के कुलपति भी बैठते हैं । वर्तमान में यहाँ 16 संकाय (आयुर्वेद, दंतविज्ञान, मेडिसिन, कृषिविज्ञान, प्रौद्योगिकी, कला, वाणिज्य, विधिशि़क्षा, दृश्यकला, धर्मविज्ञान, सामाजिकविज्ञान, मंचकला आदि) एवं लगभग 140 विभाग हैं इसके साथ ही कृषि, मेडिकल एवं प्रौद्योगिकी नामक तीन संस्थान के विश्वविद्यालय का दक्षिणी परिसर जो मिर्जापुर जिले के बरकच्छा नामक स्थान पर स्थापित है । यह विश्वविद्यायल तीन विद्यालयों सेन्ट्रल हिन्दू ब्वॉयज़ स्कूल, सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल एवं रणवीर संस्कृत विद्यालय के साथ अनूठा रूप लिये हुए है इसके अतिरिक्त डी0 ए0 वी0 कॉलेज, आर्य महिला पी0 जी0 कॉलेज, बसन्त कन्या महाविद्यालय, बसन्ता महिला महाविद्यालय राजघाट व अन्य शिक्षण संस्थान हैं जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं।

इसके अतिरिक्त इस विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय है जिसमें नौ लाख से अधिक पुस्तकें हैं । यहाँ विदेशी छात्र भी हैं, छात्रों के लिए छात्रावास की भी व्यवस्था है। लगभग 13 सौ एकड़ में विश्वविद्यालय का परिसर है यह सब महामना जी के प्रयासों का ही फल है । विश्वविद्यालय के कण–कण में मालवीय जी की आत्मा समायी हुई है । विश्वविद्यालय भारतीय स्वाधीनतासंग्राम में अपनी भूमिका निभा चुका है । विश्व में अपनी श्रेष्ठ पहचान लिये काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत का गौरव है । श्री सुन्दरलाल, पं0 मदनमोहन मालवीय, डॉ0 एस0 राधाकृष्णन्, डॉ0 अमरनाथ झा, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ0 रामस्वामी अय्यर, डॉ0 त्रिगुण सेन जैसे विद्वान यहाँ के कुलपति रह चुके हैं ।

आज वर्तमान समय में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की उपस्थिति वैश्विक स्तर पर देखने को मिलती है। दुनिया का शायद ही कोई कोना हो जहाँ बी0 एच0 यू0 से निकली पौध ने अपनी खुशबू न बिखेरी हो। उनमें काशी नरेश महाराज डॉ0 विभूति नारायण सिंह, उड़ीसा के पूर्व मुख्यमंत्री जे0 बी0 पटनायक, मध्य–प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्यामचरण शुक्ल, शरतचन्द्र सिन्हा पूर्व मुख्यमन्त्री आसाम, वर्तमान रेल राज्यमंत्री मनोज सिंह, उपराष्ट्रपति कृष्णकान्त, बी0 पी0 कोइराला पूर्व प्रधानमंत्री नेपाल, केएन गोविन्दाचार्य, भारत रत्न सी0 एन0 आर0 राव समेत अनगिनत रत्न, अनगिनत गणमान्य शामिल हैं ।

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक और मानसिक विकास करते हुए उसे सदाचारी बनाना है, इसके साथ ही उनके आध्यात्मिक उन्नति का भी ध्यान रखना है । सन् 1921 में स्नातकों को आशीर्वाद देते हुए महामना ने यह दोहे कहे थे –

दूध पियो विद्या पढ़ो, सदा जपो हरिनाम ।
सदाचार पालन करो, पूरे होवे सब काम ।।

मालवीय जी बाल्यकाल से ही 'मकरन्द' नाम से रचनाएँ लिखते थे जिनका प्रकाशन बाल कृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप में होता था । मालवीय जी ने विद्यार्थियों को यह उपदेश भी दिया है –

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।

देशभक्त्या आत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ।।

अर्थात सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के योग्य बनो ।

पूरे जीवन अथक परिश्रम करने वाले भारत के यह महान सपूत 1946 ई0 को इस संसार से विदा हो गये । भारत सरकार ने 24 दिसम्बर 2014 को मालवीय जी को देश के सबसे बड़े सम्मान 'भारत रत्न' से नवाज़ा है । लेकिन यह दुर्भाग्य है कि महामना के लम्बे राजनीतिक जीवन के हज़ारों भाषणों, लेखों और रचनाओं का आज प्रकाशन तक नहीं हो पाया है जिसका अनुवाद भी नहीं हुआ है । इस पर काम ज़रूर होना चाहिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का एक समग्र इतिहास लिखा जाना चाहिए ।

सन्दर्भग्रन्थ–

1. घनश्अजय चोपड़ा, पत्रकारिता के युग निर्माता मदन मोहन मालवीय, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2010.
2. पाण्डेय विश्वनाथ, व्यक्तित्व, कृतित्व एवं विचार महामना मदन मोहन मालवीय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
3. तिवारी उमेश दत्त, महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय (संक्षिप्त जीवन – परिचय), महामना फाउण्डेशन, वाराणसी ।

भारत में महिला–सशक्तीकरण की चुनौतियाँ एवं संघर्ष

सुमन प्रजापति
एम0 ए0 उत्तरार्द्ध, इतिहासविभाग

वास्तव में अगर देखा जाए तो महिला–सशक्तीकरण का सामान्य अर्थ है महिला को शक्तिसम्पन्न बनाना । लेकिन शक्तिसम्पन्न से तात्पर्य उसे बाहुबली बनाने से नहीं, बल्कि महिला को अपने अधिकारों के बारे में सजग, आत्मनिर्भर बनाने से है जिससे उसे अच्छी शिक्षा, अवसर की समानता और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो । दूसरे शब्दों में नारी को सामाजिक पक्षपात, बलात्कार, यौन–उत्पीड़न, अमानवीय व्यवहार व लिंगभेद से छुटकारा मिले, साथ ही साथ पुरुषवर्चस्व वाले समाज से भी ।

कहने को तो आज हम 21 वीं सदी में आ गये जहाँ विकास की रफ्तार बहुत तेज है लेकिन क्या स्त्री सुरक्षित है ? रोजाना हमारे सामने महिला से सम्बन्धित कोई न कोई घटना आती है इसका ताजा उदाहरण बुलंदशहर की घटना है । नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो (एन. सी. आर. वी.) के आकड़े के अनुसान महिला के खिलाफ होने वाले अपराधों में उत्तर प्रदेश देश भर में दूसरे नम्बर पर है। 10.51 फीसदी अपराध अकेले यूपी के हैं। पश्चिम बंगाल अपराध के मामले में तीसरे नम्बर पर है। समाज में अनैतिकता ज्यादा फैल चुकी है। कुछ व्यक्तियों में संस्कार नाम की कोई चीज ही नही है। वे महिलाओं को समाज में आगे बढ़ने ही नहीं दे रहे हैं। आखिर क्या उन्हें पता नहीं है कि समाज स्त्री व पुरुषों के सन्तुलन से ही आगे बढ़ता है? उससे भी बड़ी बात यह है कि जिस स्त्री के साथ यौनउत्पीड़न हो रहा है, वह किसी की माँ, बेटी व बहन है। जिस समाज को महापुरुषों ने बनाया था, क्या इसी के लिए कि आज सशक्तीकरण होते हुए भी अपराध दिनों–दिन बढ़ते जा रहे हैं ?

कुछ ग्रामीण समाज में यह भी देखने को मिल रहा कि महिलाएँ ही महिलाओं की दुश्मन बनी बैठी हैं वे स्वयं नहीं चाहती हैं कि दूसरी महिला आगे बढ़े। समानता का अधिकार होते हुए भी आज लड़के व लड़कियों में भेद–भाव हो रहे हैं। लड़कों को जहाँ हर कार्य के लिए छूट दी जाती है, वहीं लड़कियों को नहीं आखिर क्यों ? क्या वे नहीं चाहते हैं कि बेटियाँ आगे बढ़ें? क्यों समाज की सड़ी–गली खोखली मान्यताओं को जीवित रखना चाहते हैं ?

घरेलू अत्याचार में ज्यादा कुछ कमी नहीं आयी, बल्कि ये बढ़ते ही जा रहे हैं। स्त्रियाँ इसे चुपचाप सहन करना ही अपना कर्त्तव्य समझती हैं क्योकिं बचपन से उन्हें यही शिक्षा दी जाती है कि पति का घर ही उनका सब कुछ है। उन्हें यह भी डर होता है कि घर से निकाले जाने पर वे कहाँ जायेंगी ।

भारत में आज भी लड़कों की तुलना में लड़कियों की संख्या कम है । बहुत से ऐसे व्यक्ति भी है जो लड़कियाँ नहीं चाहते हैं। इसका सबसे बड़ा कारण शायद दहेजप्रथा है। प्राचीनकाल में दहेज एक पुरस्कार

के रूप में दिया जाता था लेकिन आज दहेजप्रथा एक सामाजिक फैशन बन गया है । दहेज दानव की तरह मुँह फैलाये खड़ा है जो चाहे तो सभी को निगल ले या सभी को छोड़ दे। ज्यादातर दहेज रूपी समस्या शिक्षित समाज में ही व्याप्त है । वर्तमान युग में लगभग 10 प्रतिशत ही ऐसे व्यक्ति हैं जो दहेज लेना अभिशाप समझते हैं। बचे 90% व्यक्ति दहेज लेने में गर्व महसूस करते हैं। दहेजहत्या में भी उत्तर प्रदेश दूसरे स्थान पर है। देशभर में होने वाली दहेजहत्याओं के 28.89% केस यू. पी. के हैं। लखनऊ पाँचवे नम्बर पर है । एन.सी.आर.बी. (नेशनल क्राइम रिकार्ड व्यूरो) के अनुसार 2013 में महिलाओं पर अपराध के कुल 3,09,546 मामले देशभर में आए, इनमें से 32,546 मामले सिर्फ यू.पी. के हैं। 2013 में महिलाओं पर हुए अपराध में 10.51 की भागीदारी यू.पी. की है। इसके बाद 10.60% आंध्रप्रदेश तथा 9.64 बंगाल आदि हैं।

इन अपराधों से निपटने के लिए सरकार व जनता को भागीदारी निभानी पड़ेगी । अपराधियों को इतनी शारीरिक यातना देनी चाहिए कि भविष्य में कोई दूसरा ऐसा दुःस्साहस ना करे । अपराध, दुष्कर्म, हिंसा रुके। इसके लिए जरूरी है कि हम ऐसे लोगों का सामाजिक बहिष्कार करें।

आज हमारे देश में संस्कार व शिष्टाचार की बहुत आवश्यकता है। जब तक लोगो में संस्कार व शिष्टाचार नहीं होंगे तब तक महिलाओं पर हो रहे अत्याचार कभी कम नहीं हो सकते हैं। इसीलिए जरूरी है कि हर परिवार व समाज के व्यक्ति अपने बच्चों को ऐसा संस्कार दें कि वो कभी अपराध की तरफ उन्मुख न हों। कानून व योजनाएँ कितनी ही क्यों न हो जब तक उनका सख्ती से पालन नहीं होगा तब तक महिलासशक्तीकरण के सामने चुनौतियाँ ही होंगी। इसके लिए हर छोटे–छोटे शहर व गाँवों को शिक्षित व आत्मनिर्भर बनाना होगा ।

किसी भी देश या समाज के विकास के लिए शिक्षा बहुत ही महत्त्वपूर्ण होती है । भारत में पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ बहुत कम शिक्षित हैं। इसका सबसे बड़ा कारण निर्धनता है। इसीलिए महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में शोषण का शिकार हुई हैं । गांधी जी ने महिला शिक्षा पर जो देते हुए कहा था कि एक लड़की की शिक्षा एक लड़के की शिक्षा की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि लड़के को शिक्षित करने पर वह अकेला शिक्षित होता है किन्तु लड़की की शिक्षा से पूरा परिवार शिक्षित हो जाता है । अंधिकाश लोग शिक्षा को नौकरी का साधनमात्र समझते हैं। अतः वे लड़की की शिक्षा को सामाजिक दृष्टि से हेय समझने लगते हैं । अधिक शिक्षित होने पर विवाह तथा दहेजसम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न होने के भय से भी कुछ लोग लड़कियों को इसीलिए नहीं पढ़ाते हैं।

भारत में अधिकांश जनंसख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करती है । पैसे के अभाव में माता–पिता लड़कियों को पढ़ाने की व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। यही कारण है कि निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होने पर भी वे साक्षर नहीं हो पातीं। अगर शिक्षा की बात होती भी है तो पहले लड़कों को दी जाती है, लड़कियाँ इच्छुक होते हुए भी इससे वंचित रह जाती हैं। दुनिया के प्रत्येक तीन निरक्षरों में से दो महिलाएँ हैं। 6 से 14 वर्ष की आयु के लगभग 50 मिलियन बच्चों ने अभी स्कूल में कदम भी नहीं रखा है जिसमें अंधिकांश लड़कियाँ हैं। सर्वेक्षण द्वारा पता चला है कि जो बच्चे स्कूल में जाते हैं, उनमें से लगभग 64% विद्यार्थी उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के पूर्व ही शिक्षा समाप्त कर देते हैं। अपव्यय व अवरोध के

कारण भी ऐसा होता है कि वे अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर पाते हैं। एक ओर जहाँ पुरुषों में शिक्षा की वृद्धि हुई, वहीं दूसरी ओर पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की साक्षरता दर में कमी आयी है 2011 की जनगणना के अनुसार पुरुषों की साक्षरता दर 82.14% जबकि महिलाओं की साक्षरता दर 65.46% है ।

आज भी महिला–सशक्तीकरण के मार्ग में अशिक्षा बाधा बनी हुई है। जब तक लोगों की सोच नहीं बदलेगी, तब तक महिलाओं में पूर्णरूप से शिक्षा का विकास नहीं हो पायेगा और न हीं महिलाएँ आगे बढ़ेंगी।

वक्त की रफ्तार को संस्कारों की ज़रूरत है,

जो लाये समाज में खुशियाँ, ऐसे कानून व इंसानियत की ज़रूरत है ।

सबसे पहले लड़के व लड़कियों में भेदभाव को समाप्त करना होगा तभी एक सशक्त भारत का निर्माण हो सकेगा।

बेटियाँ तो होती हैं सोने की चिड़ियाँ,
फिर भी गर्भ में क्यों मारी जाती हैं ?
जिस तन से मनुष्य ने जन्म लिया,
उसी का हत्यारा क्यों बन जाता है ?
सृष्टि की रचना स्त्री–पुरुष दोनों से हुई है
फिर भी बेटे की चाह क्यों होती है ?
क्या वंश के खातिर ही बेटे की ही ज़रूरत होती है ?
ऐसा ही रहा तो एक दिन
संसार में केवल बेटा ही रह जायेगा ।
फिर ज़रा सोचना कि समाज का क्या होगा ?
खत्म हो भेद–भाव अपराध व दहेज की रीतियाँ,
तभी बेटियाँ चैन की साँस ले पायेंगी ।
तब संसार में ख़ुशहाली ही ख़ुशहाली रह जायेगी ।

भ्रष्टाचार – एक अभिशाप

सरवत परवीन
एम0 ए0 उत्तरार्द्ध, इतिहासविभाग

वर्तमान समय में भारत में भ्रष्टाचार की समस्या जटिल रूप धारण कर चुकी है । देश में व्याप्त भ्रष्टाचार न केवल सामाजिक ताने–बाने में संशय को उत्पन्न किया है, बल्कि लोकतन्त्र में जनता का विश्वास राजनेताओं के ऊपर से उठ गया है । भ्रष्टाचार हमारे देश की एक ऐसी समस्या है जो अन्दर ही अन्दर हमारे देश को खोखला कर रही है। देश में समस्त व्याप्त बुराई गन्दी मानसिकता व घूसखोरी की प्रवृत्ति ही भ्रष्टाचार की जन्मदात्री है । भ्रष्टाचारी कोई एक व्यक्ति नहीं होता है बल्कि इसकी श्रेणी में वे समस्त लोग आते हैं जो कि इनका साथ देते हैं ।

ईमानदारी भ्रष्टाचार के ऊपर हमेशा भारी पड़ती है अर्थात् ईमानदार व्यक्ति में निडरता पूर्ण रूप से होती है साथ ही इनमें नैतिकता, निःस्वार्थता व हमेशा दूसरों के लिए तत्परता की भावना होती है । वे अपने प्रत्येक कार्य ईमानदारी पूर्वक करते हैं व भ्रष्टाचारियों से दूरी बना कर रहते हैं। अभी हाल में ही भ्रष्टाचार की समस्या को लेकर ही अन्नाहजारे द्वारा एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन चलाया गया और सरकार पर यह दबाव बनाया गया कि भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए कठोर कदम उठायें, इसी क्रम में अन्नाहजारे की टीम द्वारा जन लोकपाल बिल का प्रस्ताव भी तैयार किया गया ।

भारत को अनेकता में एकता का देश भी कहा जाता है। यहाँ अनेक जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय के व्यक्ति अपनी अनेक प्रवृत्तियों को लेकर किसी न किसी प्रकार से एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं, जैसे, मालिक–नौकर और नेता–उपनेता इत्यादि । व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ, विचार–धारा, उसका व्यवहार ही उसके व्यक्तित्व का निर्धारण करता है और व्यक्ति का व्यक्तित्व ही बताता है कि वह किस प्रवृत्ति का है।

घूसखोरी का सबसे नाकारात्मक प्रभाव आम जन–जीवन पर पड़ता है। व्यक्ति प्रतिभावान होते हुए भी घूस न देने के कारण किसी अच्छे पद पर जाने से वंचित रह जाता है । वहीं दूसरी ओर अमीर व्यक्ति जो कि पढ़ने में भले अच्छा न हो लेकिन उत्कोच देकर वह आगे चला जाता है। योग्य व्यक्ति नौकरी की तलाश में अनेक दफ्तरों, अनेक विभागों, प्रतियोगिताओं आदि पर ध्यान लगाता है, ताकि उसको नौकरी मिल जाये।

व्यक्ति को मनचाहा कार्य न मिलने पर उसकी जिज्ञासा, उसके सपने व उसकी मनोवृत्तियाँ सब धरी की धरी रह जाती है। आज देश में बुद्धिमत्ता व सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति की कमी नहीं है। कमी तो गलत प्रणाली की है, गलत मानसिकताओं की व गलत चयन प्रक्रिया की है, जिससे व्यक्ति को उसकी प्रतिभा के बल पर नहीं आँका जाता। उसे उसके पैसों से आँका जाता है।

गलत मानसिकता, रूढ़िवादी विचाराधारा तथा प्रणाली का दोष इत्यादि बदलना तो सम्भव नहीं है, पर यह तो सम्भव है कि अपने आप को बदला जाए। क्योंकि इस बढ़ती महँगाई में जहाँ घूसखोरी व भ्रष्टाचारियों की कमी नहीं है। निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले व्यक्ति की या ऐसे व्यक्तियों की कमी है, जो समाज के लिए पूर्ण रूप से सदैव तत्पर रहते हैं। जब मनुष्य रूप में जन्म हुआ तो ऐसा कुछ करें जिससे कि सभी हमें जानें मेरा ये मत है कि भीड़ से हटकर जो रहता है, वो सारे जहाँ में अपनी खुद की पहचान बनाता है । दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति दो कारणों से जाने जाते हैं – अच्छाई के कारण तथा बुराई के कारण ।

सच्चाई का रास्ता बड़ा कठिन होता है, बहुत से दुख, परेशानियाँ झेलनी पड़ती हैं। इस राह पर वह बाद में सुख भी उठाता है जो सच्चाई व ईमानदारी का मार्ग चुनता है, उसे सभी लोग उसकी अच्छाई व सच्चाई के लिए जानते, पहचानते व मानते भी हैं। वह व्यक्ति अपने हक की लड़ाई के साथ–साथ निर्बलों का भी हमेशा सहारा बनता है।

दूसरी तरफ वह व्यक्ति जो कि भ्रष्टाचार व घूसखोरी के बल पर आगे तो चला जाता है, लेकिन बाद में उसे उसका पछतावा होता है वह दूसरों के अविश्वास का पात्र होता है। बाद में पता चलता है कि उसने क्या किया है और उसे क्या करना था।

आज भ्रष्टाचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका है । इसलिए जैसा कि कहा गया है कि जब पाप का घड़ा भर जाता है तो उसका चटकना तय हो जाता है। आज हर तरफ एक ही बहस का मुद्दा है, सबके सामने एक ही लड़ाई है । आज चाहे इसके लिए तात्कालिक रूप से अन्ना हजारे के जनांदोलन ने एक उत्प्रेरक का कार्य किया है और अब सभी बनने वाले जन लोकपाल विधेयक को भ्रष्टाचार के विरूद्ध इस्तेमाल किए जाने वाले डंडे की तरह देख रहे हैं लेकिन इसके बावजूद भी अगर ये न होता तो कोई और कारण सामने आ जाता । बेशक इसमें कोई शक नहीं है कि भारत में भ्रष्टाचार ने वटवृक्ष का रूप धारण कर लिया है ।

आम आदमी भी अन्ना के जनांदोलन के बाद ये सोचने पर मजबूर हो गया है कि इस लड़ाई में कब तक निष्क्रिय की भूमिका में रहेगा। आम लोगों के सामने सबसे बड़ी दुविधा यही आ रही है कि आखिर वो ऐसा क्या करें कि भ्रष्टाचार उन्मूलन की इस लड़ाई में उनका योगदान तय हो सके। हालाँकि ये लड़ाई बहुत ही बड़ी और विस्तृत है। लेकिन फिर भी छोटे–छोटे प्रयासों से इस लड़ाई की धार को तेज किया जा सकता है । वैसे तो इस हथियार का उपयोग करके आजकल एक आम आदमी भी सरकार, तथा पुलिस प्रशासन से ऐसी–ऐसी जानकारियाँ सामने ला रहा है ।

इसके अलावा आम आदमी, पत्र द्वारा लेख द्वारा, संगठनों द्वारा और स्वयं सेवी संस्थाओं के सहारे इस लड़ाई को आगे बढ़ा सकता है। सबसे जरूरी बात है भष्टाचार को पूरी तरह उखाड़ फेंकने के लिए माहौल और मानसिकता को बरकरार रखना। भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए हमें कड़े प्रयास करना चाहिए, किसी और को कुछ कहने से अच्छा है कि हम स्वयं को बदलें, क्योंकि सरकार, नेता, कार्यकर्ता व मीडिया का ही देश पर, समाज पर हक नहीं है बल्कि हमारा भी हक है और मेरे इस लेख द्वारा प्रत्येक विद्यार्थी यह समझ जाएगा कि हमें अपना हक किस प्रकार प्राप्त करना है ।

सन्दर्भग्रन्थ

1. फाड़िया बी.एल, भारतीय शासन एवं राजनीतिक साहित्य, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2010.
2. एन. श्री. निवास डेमोक्रेटिक गवर्नमेन्ट इन इंडिया, 1954

जलोदर जैसे रोगों के प्रकार एवं उनकी चिकित्सा का विधान प्रस्तुत किया गया है । चरक तथा सुश्रुत ने आयुर्वेद के ज्ञान को सम्पूर्ण विश्व में आलोकित किया । उन्होंने अपने ज्ञान को **'चरक संहिता'** तथा **'सुश्रुत संहिता'** के रूप में संकलित किया । चरक कुषाण नरेश कनिष्क के समकालीन थे ।

विज्ञान के साथ–साथ प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। पाषाण काल के प्रमुख उपकरण कोर फ्लेक, ब्लेड, गड़ासा तथा खण्डक उपकरण हैन्ड एक्स, फ्लीवर, खुरचनी, बेधनी, तक्षणी तथा बेधक आदि हैं, जो आधुनिक काल में और विकसित स्वरूप में देखा जा सकता है । धातुओं में मनुष्य ने सर्वप्रथम ताँबे का प्रयोग किया तत्पश्चात् कांसा तथा अन्ततः लोहे का प्रयोग किया । मोहनजोदड़ो से प्राप्त कांस्य नर्तकी की मूर्ति धातु शिल्प का सर्वश्रेष्ठ नमूना है । पाषाण फलकों का उत्पादन, मनका, उद्योग, सेलखड़ी की आयताकार मुहरें बनाने का उद्योग, इष्टिकाउद्योग आदि के सुविकसित होने का प्रमाण मिलता है । अशोक के एकात्मक स्तम्भ पाषाण तराशने की कला की उत्कृष्टता के साक्षी हैं। सुल्तानगंज से प्राप्त महात्माबुद्ध की लगभग साढ़ेसातफुट ऊँची एक टन भार वाली कास्य प्रतिमा उल्लेखनीय है । जहाजरानी उद्योग की भी उन्नति हुयी । सुप्रसिद्ध कलाविद् आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार यह पोत निर्माण का महानतम युग था ।

आधुनिक काल में बंगाल में राबर्ट कीड ने कम्पनी की सैनिक एवं व्यापारिक जरूरतों के लिए ''पर्यानुकूलन वन'' नामक योजना प्रस्तुत की जिसके अन्तर्गत कपास, तम्बाकू, चाय, टीक के बागान, गोमट्टू नारियल इत्यादि वाणिज्यिक फसलें उगाने का प्रस्ताव था । जयसिंह ने मध्ययुग में पंचांग लिखवाए तथा ज्योतिष व खगोलीय ज्ञान हेतु जयपुर, वाराणसी, मथुरा, व दिल्ली में वेधशालाएँ बनवाईं। रोनाल्ड रास ने मलेरिया और मच्छर से सम्बन्धित विषय पर मौलिक कार्य किया।

1864 में, सैय्यद खाँ ने **''अलीगढ़ साइंटिफिक सोसाइटी''** की स्थापना की । सैय्यद इमदाद अली ने **''बिहार साइंटिफिक सोसाइटी''** की स्थापना की। 1876 में भारतीय वैज्ञानिक एम0 एल0 सरकार ने **''सोसाइटी फोर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस''** की स्थापना की। स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिए जमशेदजी टाटा ने मुम्बई में उच्चतर वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के लिए 1909 में **''इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस''** की स्थापना की । भारत में स्वयं औपनिवेशिक शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए 1904 में **'एसोसिएशन ऑफ द एडवांसमेंट ऑफ साइंटिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल एजुकेशन ऑफ इण्डियन्स'** की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख उद्देश्य योग्य छात्रों को विज्ञान पर आधारित उद्योगों का अध्ययन करने के लिए यूरोप अमरीका और जापान भेजना था। जगदीशचन्द्र बोस ने **'कुंचनमान'** नामक वैज्ञानिक उपकरण का आविष्कार कर वनस्पतिशास्त्र और भौतिक विज्ञान को एक नया स्वरूप प्रदान किया। इनका पुरातत्त्व में भी गहरा ज्ञान था। आधुनिक भारतीय रसायनशास्त्र के पिता कहे जाने वाले प्रफुल्लचन्द ने **'मर्क्यूरिस नाइट्राइट'** की खोज की । आजादी के आन्दोलन में राय जी ने रॉलेट एक्ट का विरोध किया। स्वदेशी तथा राष्ट्रीय स्तर को विश्व पटल पर लाने के लिए इन्होने 1907 में बंगाल में टेक्नीकल संस्था की स्थापना की जो कालान्तर में जाधवपुर इंस्टीट्यूट बना ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास – एक ऐतिहासिक अध्ययन

प्रीति पटेल
एम0 ए0 उत्तरार्द्ध, इतिहासविभाग

यद्यपि यह एक सुविदित तथ्य है कि हमारे प्राचीन भारतीयों ने धर्म और दर्शन के साथ ही व्यवहारिक विज्ञान को एक नया स्वरूप प्रदान किया। भारतीय सभ्यता के आदिकाल व पाषाणकाल से ही हमें विज्ञान के कुछ क्षेत्रों जैसे गणित, ज्योतिष, धातु विज्ञान आदि के क्षेत्रों में भारतीयों ने अनेक आविष्कार कर विश्व में ख्याति प्राप्त की। आदिमानव ने पशुओं का चित्र बनाकर खाद्य–अखाद्य पदार्थों की खोज कर अग्नि पर नियंन्त्रण स्थापित कर सुन्दर एवं सुडौल औजार तथा, हथियार बनाये । इस विषय पर **गार्डन चाइल्ड का मत है**– ''वन परम्परा में वनस्पति विज्ञान, ज्योति विज्ञान तथा जलवायु विज्ञान का मूल अन्तनिर्हित है । अग्नि पर नियन्त्रण तथा उपकरणों का आविष्कार उन परम्पराओं को प्रारम्भ करते हैं। जिनसे कालान्तर में भौतिकी एवं रसायन शास्त्र का उदय हुआ ।''1

वैज्ञानिक प्रगति का स्पष्ट ज्ञान हमें सैन्धव, सभ्यता में दिखाई देता है । सैन्धव नगरों का निर्माण एक सुनिश्चित योजना के आधार पर किया गया । विशाल पाषाणफलकों मनकों सेलखड़ी की आयताकार मुहरें, सोने, चाँदी, ताँबा, सीसा, कांसा आदि के आभूषण, मूर्तियाँ उपकरण आदि का उत्पादन और निर्माण विशिष्ट तकनीकी के आधार पर किया गया । कालीबंगन तथा लोथल से प्राप्त खोपड़ी शल्य चिकित्सा का स्पष्ट प्रमाण है । प्राचीन काल में गौतम, बोधायन, आपस्तम्भ, कात्यायन, मैत्रायण, वाराह, वसिष्ठ आदि प्राचीन सूत्रकार थे । सुप्रसिद्ध गणितज्ञ **'आर्यभट्ट'** ने **''आर्यभट्टीयम''** की रचना की। इसमें अंकगणित ज्यामिति, बीजगणित तथा त्रिकोणमिति के सिद्धान्त दिये गये हैं । आर्यभट्ट के पश्चात् ब्रह्मगुप्त ने प्रसिद्ध कृति **'ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त'** 628 ई में लिखी थी । इसमें तृतीय, चतुर्भज, वर्गों, आयतों, आदि की परिभाषा तथा अनेक सूत्र दिये गये हैं । न्यूटन ने पृथ्वी के **गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त** का पता लगाया।

गुप्तकाल में संस्कृति के अन्य पक्षों के साथ ज्योतिष तथा खगोल विद्या का सर्वांगीण विकास हुआ। कालिदास तथा वाराहमिहिर खगोलविद् थे । भारत में परमाणुवाद के संस्थापक तथा प्रवर्तक महर्षि कणाद थे । इन्होंने भारत में भौतिक शास्त्र का आरम्भ किया । इनका मानना था कि समस्त भौतिक वस्तुएँ परमाणुओं के संयोग से बनी हैं । कनिष्क के समकालीन बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन को रसायन का नियामक माना जाता है । इन्होंने पारा की खोज की । मेहरौली लौहस्तम्भ इस बात का जीता–जागता उदाहरण है कि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक धातु विज्ञान में अत्यन्त निपुण थे 1. श्रीवास्तव, कृष्णचन्द्र, श्रीवास्तव, एम0 : प्राचीन भारत का इतिहास, यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 2011 पृष्ठ – 884। भारत में चिकित्सा शास्त्र का इतिहास अत्यधिक प्राचीन है और यह वैदिक काल से जाना जाता है। अथर्ववेद में आयुर्वेद के सिद्धान्त तथा व्यवहार सम्बन्धी बातें मिलती हैं तथा विभिन्न प्रकार के ज्वरों, यक्ष्मा, अपचित (गण्डमाला) अतिसार,

भारत के वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रमन ने **'प्रकाश के प्रकीर्णन के सिद्धान्त'** की खोज की । रमन ने श्रोडिंगेर, हवेसी, गेल्डस्मिथ, मैक्स बोर्न आदि यूरोप के कई नामी वैज्ञानिकों को बैंगलोर आने का आमन्त्रण भेजा । महेन्द्रलाल सरकार ने देशी चिकित्सा पद्धति को प्रोत्साहन देने के लिए ऐलोपैथ छोड़कर होम्योपैथ चिकित्सा पद्धति का जबर्दस्त समर्थन किया । 1876 में इन्होंने ''**Indian Association for the Cultivation of Science**'' की स्थापना की। मेघनाथ साहा ने 1920 में सौरतत्वर्ण मंडल का आयनीकरण, सूर्य में विद्यमान तत्त्व की खोज तथा गैसों की विकिरण की समस्या पर इन्होंने शोध किया। महात्मा गाँधी ने स्वदेशी आन्दोलन को प्रोत्साहन देने के लिए कुटीर तथा लघु उद्योगों को प्रोत्साहन दिया । होमी जहाँगीर भाभा ने ब्रह्मांडीय किरणों पर अनुसंधान किया और **''टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फन्डामेन्टल रिसर्च''** की स्थापना की यह न केवल भारत की अपितु संसार की प्रमुख वैज्ञानिक संस्था बन गई है।

इस प्रकार इतिहास के विभिन्न कालों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई । कुछ क्षेत्रों में भारतीय ज्ञान–विज्ञान का विदेशियों ने भी ग्रहण किया तथा उसकी प्रशंसा की । विज्ञान तथा तकनीकि के फलस्वरूप भारत ने अनेक परमाणु परीक्षण किये । सितम्बर 2014 को अग्नि 1 का प्रक्षेपण किया । स्वदेश निर्मित मंगलयान ने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के तहत 24 सितम्बर 2014 को मंगल ग्रह की कक्षा में सफलता पूर्वक प्रवेश कर लिया । राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस दिवस के अवसर पर प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी जी ने भारत के प्रमुख उद्योगपतियों तथा वैज्ञानिकों को सम्बोधित करते हुए स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण पर बल देने के लिए कहा । प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप भारत में सिंचाई के लिए तालाब तथा बाँधों का निर्माण कुशल अभियन्त्रिकी की सहायता से किया गया, जैसे कावेरी नदी पर चोल राजाओं द्वारा श्रीरंगपट्टम टापू के नीचे बनवाया गया बांध । पाषाण तकनीक के समुन्नत होने का प्रमाण हमें पल्लव तथा चोलकालीन कलाकृतियों से मिलता है ।

पर्यावरण एवं विकास

सिम्मी बानो
एम0ए0 उत्तरार्ध, राजनीतिशास्त्रविभाग

जब हम पर्यावरण एवं विकास की बात करते हैं तो हमारा ध्यान सबसे पहले औद्योगिकीकरण तथा इससे उत्पन्न प्रदूषण की तरफ आकृष्ट हो जाता है। पर्यावरण जो हमसे अलग होते हुए भी हमें चारो तरफ से घेरे हुए होता है इसलिए विकास का इसपर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण एवं विकास के नाम पर हो रहे औद्योगिकीकरण, यन्त्रीकरण, प्रदूषण में वृद्धि तथा अनगिनत वनों एवं जंगलों की कटाई, इस बात का संकेत है कि आने वाले दिनों में प्रकृति का अस्तित्व संकटग्रस्त हो सकता है। इसलिए मनुष्य को अपने विवेक से काम लेना चाहिए तथा अपने जीवन को पर्यावरणसंरक्षण में लगाना चाहिए।

पर्यावरण एवं विकास के लिए यह जरूरी है कि प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा उपभोग न किया जाए तथा विकास को पर्यावरण के अनुकूल बनाए रखा जाए। वर्तमान समय में विकास के नाम पर प्राकृतिक संसाधनों का जरूरत से ज्यादा दोहन तथा पृथ्वी का अनियन्त्रित सीमा तक उपभोग हो रहा है जिसके कारण हम आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल उजड़ी धरती, जहरीली नदियाँ और प्रदूषित हवा ही छोड़कर जाएगें।

मनुष्य की खुशी संतोष में निहित है। वह मनुष्य जिसके पास अपार सम्पदा है, संतोष नहीं है तो वह अपनी इच्छाओं का दास बन जाता है। गाँधी जी के अन्तर्निहित दर्शन का मुख्य बिन्दु है – आवश्यकता, न कि लालच, कुछ आराम, न कि विलासिता। इसलिए गांधी जी ने वर्तमान सन्दर्भ में कहा था कि– **''पृथ्वी हर आदमी की जरूरत को पूरा कर सकती है, परन्तु एक आदमी के लालच की पूर्ति के लिए इसके पास पर्याप्त संसाधन नहीं है।''**

अतः मनुष्य को अपनी आवश्यकताओं से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन नहीं करना चाहिए। मानव सभ्यता के आरम्भ में जब जनसंख्या कम थी उन दिनों प्राकृतिक संसाधनों का भण्डार इतना विशाल था और उनकी खपत इतनी मामूली थी कि कोई सोच भी नहीं सकता था कि आने वाले दिनों में ये संसाधन मानव उपभोग के लिए कम पड़ जाऐंगे, परन्तु समय के साथ जनसंख्या में वृद्धि तथा सभ्यता एवं औद्योगिकीकरण के विकास के साथ मनुष्य के उपभोग का स्तर भी ऊँचा होता गया तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इतना बढ़ गया कि धीरे–धीरे उनके भण्डार में कमी की समस्या पैदा हो गई, जिसके कारण मनुष्य न केवल प्रकृति से दूर हो गया, बल्कि यह प्रकृति को दूषित भी करने लगा। पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग ने सतत विकास का सामान्य सिद्धान्त अपनाया है, जिसके अन्तर्गत– **''वर्तमान पीढ़ी को भविष्य की पीढ़ी की योग्यता से कोई समझौता किए बिना अपनी आवश्यकता पूरी**

करनी चाहिए जिससे भविष्य की पीढ़ी भी अपनी आवश्यकता पूरी कर सके।''

वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण एवं विकास एक विश्वव्यापी मुद्दा बना हुआ है जिसका प्रमुख कारण ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि है। ग्लोबल वार्मिंग में वृद्धि के लिए विकसित देश विकासशील देश को दोषी ठहराते हैं। उनका मानना है कि विकासशील देशों में वनों की कटाई एवं जनसंख्या में वृद्धि के कारण कार्बन डाई ऑक्साइड तथा मिथेन गैस उत्पादन में वृद्धि हुई है जबकि वास्तविकता यह है कि विकसित देश विकासशील देशों की तुलना में ज्यादा जीवाश्म ईधन चालित गाड़ियों का प्रयोग करते हैं, जिसके कारण वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड गैस की मात्रा में वृद्धि भी उसी अनुपात में हुई है। इसके अतिरिक्त रेफ्रिजरेटर तथा एअर कंडिश्नर जिससे क्लोरो–फ्लूरो कार्बन जैसी जहरीली गैस का प्रयोग भी विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में ज्यादा होता है। गांधी जी विकास की ऐसी किसी भी अवधारणा के विरुद्ध थे, जिसका लक्ष्य भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना एवं उनकी पूर्ति के उपाय ढूढ़ना हो। उनका मानना था कि मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उतना ही उपभोग करना चाहिए जितना उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य हो। इससे दो उद्देश्यों की प्राप्ति होगी –

1. इससे सामाजिक न्याय को बल मिलेगा तथा
2. इससे मनुष्य का अपना नैतिक चरित्र उन्नत होगा।

वर्तमान समय में यदि देखा जाए तो भौतिक समृद्धि एवं भौतिकवाद ने मानवता को ऐसे कगार पर ला खड़ा कर दिया है जहाँ मानव का अस्तित्व संकट में है। इसलिए हम सब को अपने विवेक से काम लेना चाहिए तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन आने वाली पीढ़ी को ध्यान में रखकर करना चाहिए। इसके साथ ही हमें विकास को पर्यावरण के अनुकूल बनाए रखना चाहिए।

पप्पी की स्मृति में

प्रियंका रत्नानी
बी.कॉम. द्वितीय वर्ष

जब छोटी सी आयी थी तुम,
सबके दिल को लुभायी थी तुम,
हमारे बचपन की अनोखी यादें बनाने,
हँसते–हँसते चली आयी थी तुम;
लालच था बस प्यार का तुम्हें
सिर्फ प्यार पाने के लिए, पलकें बिछाए
देखते–देखते ना जाने कब बड़ी हो गयी,
फिर दिया जन्म अपनी सन्तानों को तुमने,
जिनसे अलग कर दी गयी थी तुम
सदा वफादार रहती थी तुम
हमारी रातें सुख–भरी बीतें,
इसीलिए अपना सुख–चैन मिटाती थी
ना जाने क्यों
इतना त्याग किया करती थी तुम
बच्चों जैसे मुँह फुलाये, रूठ कर बैठी रहती थी तुम।
ना दिया दुःख कभी हमको,
ना बनी कोई दुःख का कारण हमारे
सदा सुरक्षा करती थी, सारा दुःख हर लेती थी तुम।
फिर इन्सानों की तरह वृद्धावस्था धारण कर
खाना–पीना, घूमना–फिरना त्यागा तुमने,
बूढ़ी कहलाने लगी थी तुम,
हुए बीमार जब पापा तुम्हारे (चाचा मेरे)
उनका गम जान गयी थी तुम
उनके सारे दुःख को हर के खुद बीमार हो गयी थी तुम
हमारे सारे संकटों को अपना कर तुम,
दुनिया छोड़ चली थी तुम
''तुम थी एक अजूबा या फिर कोई फरिश्ता थी तुम,
देखो आकर चली गयी
पर अपनी यादें छोड़ गयी हो तुम

सितार का कुलगीत की धुन

राग भैरवी पर आधारित रूपकतालबद्ध

स्थायी से पूर्व वाद्य यंत्रों पर बजाई जाने वाली तालबद्ध स्वरावलियाँ

1	2	3	4	5	6	7	
सां	–	रें	सां	–	ध	नी	
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा	
0			2		3		
सां	–	रें	सां	–	–	–	2 बार
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ	
0			2		3		
प	–	ध	प	–	ग	म	
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा	
0			2		3		
प	–	ध	प	–	–	–	2 बार
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ	
0			2		3		
सां	–	नी	सां	नी	ध	प	
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा	
0			2		3		
नी	–	ध	नी	ध	प	म	
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रां	
0			2		3		
ध	–	प	ध	प	म	ग	3 बार
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा	
0			2		3		
प	–	म	प	म	ग	रे	
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा	
0			2		3		
म	–	ग	म	ग	रे	सा	
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा	
0			2		3		

नी़	–	सा	ग	–	म	–	} 3 बार
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ	
0			2		3		
प	–	ध	प	–	–	–	
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ	

स्थायी

1	2	3	4	5	6	7
ध	–	ध	ध	–	पम	ग
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दारा	दा
0			2		3	
ध	–	ध	ध	–	ध	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
प	–	ध	प	–	प	ध
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
नी	–	ध	प	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
सां	नी	सां	ध	–	प	प
दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
पध नी	–	ध	प	–	प	–
दा –	–	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
ग	–	ग	म	म	प	म
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा
0			2		3	
गम	–	रे	सा	–	–	–
दाऽ	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	

अंतरा न0 1

1	2	3	4	5	6	7
ग	ग	म	ध	–	नी	–
दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
सां	–	नी	सां	–	सां	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी	–	नी	सां	–	सां	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी सां	नी	सां	ध	–	प	–
दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
गं	–	रें	गं	–	गं	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
गं	–	मं	रें	–	सां	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी	–	नी	सां	–	रें	सां
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
नी सां	–	ध	प	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
ध	–	ध	ध	–	ग	म
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
ध	–	ध	ध	–	ध	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी	–	नी	नी	–	नी	ध
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
सां	–	नी	सां	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	

सां	नी	सां	ध	–	प	प
दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
पध नी	–	ध	प	–	प	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	–
0			2		3	
ग	–	ग	म	म	प	म
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा
0			2		3	
गम	–	रे	सा	–	–	–
दाऽ	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
सां	–	नी	ध	प	म	–
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ
0			2		3	
ग	–	म	ध	नी	सां	ऽ
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ
0			2		3	

3 बार

अंतरा न0 2

1	2	3	4	5	6	7
ग	ग	म	ध	–	नी	–
दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
सां	–	नी	सां	–	सां	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी	–	नी	सां	–	सां	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	
नी सां	नी	सां	ध	–	प	–
दा	रा	दा	दा	ऽ	रा	ऽ
0			2		3	

गं	–	रें	गं	–	गं	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ		
0			2		3			
गं	–	मं	रें	–	सां	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ		
0			2		3			
नी	–	नी	सां	–	रें	सां		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा		
0			2		3			
नी सां	–	ध	प	–	–	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ		
0			2		3			
ध	–	ध	ध	–	ग	म		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा		
0			2		3			
ध	–	ध	ध	–	ध	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	ऽ		
0			2		3			
नी	–	नी	नी	–	नी	ध		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा		
0			2		3			
सां	–	नी	सां	–	–	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ		
0			2		3			
सां	नी	सां	ध	–	प	प		
दा	रा	दा	दा	ऽ	दा	रा		
0			2		3			
पध नी	–	ध	प	–	प	–		
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	रा	–		
0			2		3			
ग	–	ग	म	म	प	म		
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	रा		
0			2		3			

गम	–	रे	सा	–	–	–
दाऽ	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
सां	–	नी	ध	प	म	–
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ
0			2		3	
ग	–	म	ध	नी	सां	ऽ
दा	ऽ	रा	दा	रा	दा	ऽ
0			2		3	

} 3 बार

1	2	3	4	5	6	7
ध	–	ध	ध	–	पमग	म
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दाऽऽ	रा
0			2		3	
ध	–	ध	ध	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
नी	–	नी	नी	–	नी	ध
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
सां	–	नी	सां	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	
सां	–	सां	सां	–	सां	रें
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	दा	रा
0			2		3	
गं	–	रें	सां	–	–	–
दा	ऽ	रा	दा	ऽ	ऽ	ऽ
0			2		3	

वाद्य–स्वरलिपिरचना – डॉ. गीता सिंह
कुलगीतरचना – डॉ0 कपिलदेवपाण्डेय
संगीतसंकल्पना – डॉ. ममता सान्याल, डॉ0 शारदावेलंकर
टंकण सहयोग – आशीष कुमार सिंह

ইচ্ছা করে

ঝুমুর সেনগুপ্ত
অধ্যাপিকা, বাংলা বিভাগ

মনটা নিছক সন্ধিক্ষণে এসে পৌঁছিয়েছে
বয়সের সন্ধিক্ষণ ?
আঁকড়ে ধরার মাধ্যম পাল্টেছে
বাস্তবতা সরে যায় দূরে
আত্মিক সম্পর্ক ?
সবই 'ফয়েলের' মোড়কে ঢাকা
পাতায় পাতায় শুধুই হিসাব
হিসাব কর্তব্যের ?
আজ সেই ফেলে আসা সত্তার কাছে
সেই ছোট্ট মনের কাছে
নতজানু হয়ে প্রার্থনা করছি
ফিরিয়ে দাও ধূসর ছবি
সেখানে ছিল না বাস্তবতার
নির্মম চাবুকাঘাত
উড়ে বেড়ানো রঙ-বেরঙের প্রজাপতির মত
শিশিরভেজা ঘাসে আলতা পায়ে
নির্ভীক চলা
সেই চলায় ছিল দৃঢ় সংকল্প
চিন্তনের মধ্য দিয়ে কিছু পাওয়া
সেই পাওয়ার কাছেই তো
ফিরে যেতে চাই
একাগ্রতায় অবগাহন করে
অনন্ত জ্যোতির বিচ্ছুরণে
শুধুই ধ্যান-যোগ।

ভাবনা

জীবনের কোন কোন ক্ষণ
এমন ভাবেই এলোমেলো হয়ে
নিঃশব্দে এসে হারিয়ে যায়।
একেই কি বলে পুনর্জন্ম ?
কোন চিত্রপট স্মৃতির পাতায়
সততই উজ্জ্বল
চুপি চুপি এসে মনটাতে
কিছু নকশা কেটে যায়
হয়ত বা ছোট্ট পাল ছেঁড়া নৌকা
ছুটতে থাকে গণ্ডীহীন মেঘরঞ্জনীর
আবর্তিত লহরায়
অনন্ত নীলাভ আকাশের মাঝে
বিস্তীর্ণ মেঘের ঢেউ এ
ছিন্ন ঘটনাও দুলতে দুলতে
হারিয়ে যায় বহুদুরে
নিতান্তই একলা
এই ভাবেই মানুষের মাঝেও
লবটুলীয়া বৈহারের জঙ্গলে
ফিরে যাওয়া যায়
তবেই তো হৃদয় তন্ত্রীতে বাজে
অনুভবের অনুরণন।

***

শিশুসাহিত্যে নজরুল

স্বপ্না বন্দ্যোপাধ্যায়
অধ্যাপিকা, বাংলা বিভাগ

বিংশ শতাব্দীর সবচেয়ে নির্ভীক ও বলিষ্ঠ সাহিত্যিক ছিলেন কবি নজরুল। তাঁর জীবন যেমন বিচিত্র তেমনি তাঁর প্রতিভাও ছিল বহুমুখী। গীতিকার ও সুরকার হিসাবে তিনি এক মহৎ আসনের অধিকারী। এমনকি গায়ক হিসাবে তাঁর খ্যাতি এবং অভিনেতা হিসাবে তাঁর পরিচিতি কারো অজানা নয়। এছাড়াও নজরুল প্রতিভার বিকাশ ঘটেছে উপন্যাসে, ছোটগল্পে, নাটকে, শিশুসাহিত্যে, প্রবন্ধে বিদেশী কাব্যের অনুবাদে ও সাংবাদিকতায়। নজরুলের শিশু বিষয়ক রচনা এবং তাঁর উৎকর্ষ বিচার এই প্রবন্ধের আলোচ্য বিষয়।

মূলত শিশুসাহিত্য বলতে বোঝায় ৫ বছরের অধিক ও ১১ বছরের অনধিক বালক বালিকাদের জন্য রচিত যে কোন সাহিত্য পদবাচ্য রচনাকে। তবে অনেকে কিশোর কিশোরীদের জন্য রচিত রচনাকেও শিশুসাহিত্যের অন্তর্ভুক্ত করতে সম্মত। বাংলা সাহিত্যের শিশুসাহিত্য বিভাগ নজরুলের পূর্বে যাঁদের অসাধারণ দানে ধন্য হয়েছে, তাঁদের মধ্যে উল্লেখযোগ্য হলেন অক্ষয় কুমার দত্ত, ঈশ্বরচন্দ্র বিদ্যাসাগর, মদনমোহন তর্কালঙ্কার, রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর, অবনীন্দ্রনাথ ঠাকুর, যগীন্দ্রনাথ সরকার, সুকুমার রায়, সত্যেন্দ্রনাথ দত্ত প্রমুখ। বাংলা সাহিত্যে শিশুবিষয়ক রচনাগুলিতে ভাবের দিক থেকে দুটি উদ্দেশ্য লক্ষিত হয়। প্রথম, শিশুদের সাহস, উদারতা, ত্যাগ প্রভৃতি মহৎগুণ সম্পর্কে প্রেরণা ও শিক্ষা দেবার উদ্দেশ্য। দ্বিতীয়ত, শিশুদের আনন্দ দানের উদ্দেশ্যে রচিত কল্পনাপ্রধান রচনা। প্রথম শ্রেণির রচনাগুলি লক্ষিত হয় ঊনবিংশ শতাব্দীতে, আর দ্বিতীয় শ্রেণির রচনাগুলি লক্ষ্য করা যায় রবীন্দ্রযুগে।

শিশুমন অধিক খেয়ালী, স্বপ্নময় ও কল্পনাপ্রবণ। তাই রূপকথার রাজ্যে তাদের মনের অবাধ ভ্রমণ। প্রকৃতির রহস্যময়তায় অসীম আগ্রহ, সেইজন্য যেসব রচনায় তাদের আনন্দের পরিমাণ বেশী তাতেই শিশুরা বেশী আকৃষ্ট হয়। সুকুমার রায়, দক্ষিনারঞ্জন মজুমদার, সত্যেন্দ্রনাথ দত্ত প্রমুখ সাহিত্যিকেরা এই ধরণের রচনায় বাংলা শিশুসাহিত্যকে সমৃদ্ধ করেছেন। নজরুলের শিশুবিষয়ক রচনায় এই শিশুসাহিত্যিকদের প্রভাব অনুভূত হয়।

শিশুসাহিত্য সৃষ্টির পরিমাণ নজরুল ইসলামের অল্প। ছোটদের কবিতার বই ঝিঙেফুল (১৯২৬), সঞ্চয়ন (১৯৫৯), পিলেপটকা (১৯৬৩), ঘুম জাগানো পাখি (১৯৬৪), সাত ভাই চম্পা (আনুমানিক পুতুলের বিয়ের পর), ঘুমপাড়ানি মাসী-পিসী (১৯৬৫)। দুখানি নাটিকা ঝিলিমিলি নাটকের (ভূতের

ভয়) এবং পুতুলের বিয়ে। শিশুসাহিত্য রচনায় নজরুলের অসামান্য সাফল্যের কারণগুলি হল নজরুলের কবিমানসের মধ্যে একটি শৈশবলোকের উপস্থিতি লক্ষ্য করা যায়। তাঁর শিশুসুলভ খামখেয়ালীপনা, ভাবুকতা, বন্ধনহীনতা, পরিহাসপ্রিয়তা প্রকৃত শিশুমনেরই প্রকাশ।

শিশুশিক্ষামূলক কবিতায় কখনও শিশুকে তিনি তার কর্তব্যবোধ মনে করিয়ে দিয়েছেন। আবার কখনো তাকে আত্মচেতনায় জাগরিত হতে বলেছেন। আবার কখনো তাকে বৃহৎ কর্মে ও জ্ঞানের পথে আমন্ত্রণ জানিয়েছেন।

ঝিঙেফুল কাব্যগ্রন্থের প্রভাতী কবিতায় প্রভাতের সুন্দর সাবলীল বর্ণনা যা ছোটদের মনকে সহজেই স্পর্শ করে।

''ভোর হোলো
দোর খোলো
খুকুমণি ওঠরে!
ঐ ডাকে
জুঁই শাখে
ফুল-খুকী ছোটরে!
খুকুমণি ওঠরে!

খুকু জেগে উঠলে কবি তাকে প্রভাতের কর্তব্যকর্ম স্মরণ করিয়ে দিয়েছেন –

''নাই রাত,
মুখ হাত ধোও, খুকু জাগো রে।
জয়গানে
ভগবানে
তুষি, বর মাগো রে!

এখানে কবির ভাষা যেন ভোরবেলার মতই সজীব হয়ে উঠেছে। ছোটদের মধ্যে কে আগে ঘুম থেকে উঠেছে এই নিয়ে প্রায়ই নিজেদের মধ্যে কথা কাটাকাটি চলে সে কথাও কবি বিস্মৃত হননি।

উঠল ছুটল
ঐ খোকাখুকি সব
''উঠেছে আগে কে''
ঐ শোনো কলরব।

'খুকু ও কাঠবেড়ালি' কবিতায় কাঠবেড়ালীর উদ্দেশ্যে খুকুর যে উক্তি তার মধ্যে শিশুহৃদয়ের কল্পনাবিলাস ও জীবজন্তুর জীবন সম্পর্কে তার কৌতূহল ও হৃদ্যতা প্রকাশিত হয়েছে। এই কবিতায় ভাষা ও ছন্দ যেন শিশুসুলভ চপলতায় ভরা।

কাঠবেড়ালি! কাঠবেড়ালি! পেয়ারা তুমি খাও?

গুড়মুড়ি খাও? দুধ-ভাত খাও? বাতাবি নেবু? লাউ?
বেড়াল-বাচ্ছা? কুকুরছানা? তাও?

কাঠবেড়ালীর কাছ থেকে একটা পেয়ারা পাওয়ার জন্য খুকীর সে কি অপরিসীম আগ্রহ, ব্যাকুলতা আর অনুনয়। জামা, ফ্রক, সে সব কিছুই কাঠবেড়ালীকে দিতে চেয়েছে। কিন্তু কাঠবেড়ালী যখন তাকে পেয়ারা দেয় না তখন খুকুমণির অভিমান, আক্রোশ, সে তখন কান্নায় ভেঙে পড়েছে। শিশুমনের এই বিচিত্র চিত্র যেন 'খুকু ও কাঠবেড়ালী' কবিতায় কবি ছায়াছবির মতো শিশু পাঠকের সামনে তুলে ধরেছেন।

'খোকার খুশী' কবিতায় দেখা যায় মামার বিয়েতে খোকার আনন্দের সীমা নেই। বিয়ের মজাতে শিশু মন স্বাভাবিক ভাবেই উল্লাসিত হয়ে উঠে। তাই শিশু চায় রোজ বিয়ে করে এই মজা উপভোগ করতে।

কি যে ধানাই পানাই –
সারাদিন বাজছে শানাই,
আজি না মামার বিয়ে।
বিবাহ। বাস, কি মজা!
সারাদিন মণ্ডা গজা
গপাগপ খাও না সোজা
দেয়ালে ঠেসান দিয়ে।।
.....
মামীমা আসলে এ ঘর
মোদেরও করবে আদর?
বাস, কি মজার খবর
আমি রোজ করব বিয়ে।

'নামতাপাঠ' ও 'চিঠি' কবিতায় কবিমনের সঙ্গে শিশুমনের লেনদেনের পরিচয় স্পষ্ট হয়ে উঠেছে। ছোটবেলায় নামতাপাঠে (পড়াশুনা) ভুল হলে বড়রা যখন ছোটদের বকাবকি করেন তখন শিশুর মনে কি প্রতিক্রিয়া সৃষ্টি হয় তা সুন্দর ভাষায় ব্যক্ত করেছেন এখানে শিশুর পাঠবিমুখ মনোভাবকেও চিত্রিত করেছেন।

আমি যদি বাবা হতাম বাবা হত খোকা!
না হলে তোর নামতা পড়া মারতাম মাথায় টোকা।
রোজ যদি হত রবিবার
কি মজাটাই হত না আমার
থাকত না আর নামতা পড়া লেখা আঁকা জোকা

আমি যদি বাবা হতাম, বাবা হত খোকা।

চিঠি কবিতাটিতেও কবির শিশুসুলভ মনোবৃত্তির সুন্দর প্রকাশ ঘটেছে। এখানে কবি নিজেকে দাদা বলে উল্লেখ করেছেন।

"মা মাসিমা'য় পেন্নাম
এখান হতেই করলাম,
স্নেহাশিস এক বস্তা,
পাঠাই, তোরা লস তা
সঙ্গে পদ্য সবিটা,
ইতি তোদের কবিদা।"

খোকার বুদ্ধি কবিতায় নজরুল শিশুমনের সঙ্গে আত্মীয়তা স্থাপন করে হাস্য কৌতুকের মাধ্যমে তাঁর আনন্দদানের আয়োজন করেছেন।

'চুন করে মুখ প্রাচীর' পরে বসে শ্রীযুত খোকা,
কেননা তার মা বলেছেন যে এক নীরেট বোকা
ডান-পিটে সে খোকা এখন মস্ত একটা বীর,
হুংকারে তাঁর হাঁস-মুর্গীর ছানার চক্ষুস্থির।"

'খোকার গল্প বলা' কবিতায় কবি যেন শিশুমনের বিচিত্র কল্পনার রূপকথা প্রকাশিত করে হাস্যরসের সৃষ্টি করেছেন। খোকা তার মাকে যে গল্প বলেছে তা বিশেষ চিত্তাকর্ষক – একদিন এক রাজা ফড়িং শিকার করতে গেলেন রাজার ভাগ্যে জুটল পাঁপড় ভাজা রাণী সানন্দে কলমী শাক তোলার ব্রত নিল, অবশেষে রাজা হাতীর মতন একটি বেড়াল বাচ্ছা শিকার করে নিয়ে এলেন।

"একদিন না রাজা –
ফড়িং শিকার করতে গেলেন খেয়ে পাঁপড় ভাজা
.....
রাজা মশাই ফিরে এলেন ঘুরে।
হাতীর মত একটা বেড়াল বাচ্চা শিকার ক'রে।"

'খোকার বুদ্ধি' কবিতায় এক পালোয়ান খুকুর ছবি এঁকেছেন যার একটি ফড়িং মারতে সাতটি লাঠির প্রয়োজন। এখানে কবি হাস্যরস সৃষ্টি করে শিশুমনের আনন্দের আয়োজন করেছেন।

'সাত লাঠিতে ফড়িং মারেন এমনি পালোয়ান;
দাঁত দিয়ে সে ছিঁড়লে সেদিন মস্ত আলোয়ান!'

'ফ্যাসাদ' কবিতাটিতে ছোট ছেলে পেসাদের ফ্যাসাদের কথা বিশেষ উপভোগ করার মত।

"শয্যা ছেড়ে নিত্য ভাবে গোমরা-মুখো পেসাদ,
এই দুনিয়ায় বেঁচে থাকা মস্ত একটা ফ্যাসাদ!

.....

সবার দেখি অনিদ্রা রোগ, রাত থাকতে ওঠে,
ব্যস্তবাগীশ ফুলগুলো সব ভোর না হতেই ফোটে।''

এই ধরণের নানা ফ্যাসাদের শেষ পেসাদের যা ইচ্ছা হয়েছে তা খুবই হাস্যকর।

''বেঁচে থাকার ফ্যাসাদ দেখে পেসাদ ভাবে মনে, আজ বাদে কাল চলে যাব অনেক সে দূর বলে। কিম্বা হবে তালগাছে সে দানো একানোড়ে, রাত্রি হলে বসবে এসে সবার ঘাড়ে চড়ে। কিলিয়ে তাদের ভূত ভাগাবে বলবে একি ফ্যাসাদ; নাকি সুরে বলবে তখন, ফ্যাঁসাঁদ নঁয়, এঁ-পেঁসাদ।''

'বগ দেখেছে?' কবিতাটিও শিশুসুলভ পরিহাস প্রিয়তার সুন্দর উদাহরণ –

'পণ্ডিতমশাই সুঁটকো-মুখো, হাতে নিয়ে থেলো হুঁকো,
দেখছ তাকে, যখন ঘুমান ঘাড়টি গুঁজে?
বগ দেখাব তেমন করে বসো চক্ষু বুঁজে।
হুঁকো হল বগের গলা, তুমি হলে বগ,
তোমার মাথায় আঁদা, খাঁদা ঠোকরায় ঠকঠক।'

'হোঁদল-কুঁৎকুঁতের বিজ্ঞাপন', 'ঠ্যাংফুলী' ও 'পিলেপটকা' কবিতা তিনটিতেও শিশুমনের উদ্ভট কল্পনার চিত্র পাই যা খুবই কৌতুককর।

'হোঁদল-কুঁৎকুঁতের বিজ্ঞাপন' কবিতাটি রঙ্গরসের জন্য আকর্ষণ। এছাড়া এই কবিতার অন্ত্যমিলগুলিও খুব সুন্দর।

''মিচকে-মারা বায়না মনটি বড় খুঁতখুঁতে।
ছিঁচকাঁদুনে ভাবিয়ে ওঠেন একটু ছুতেই না ছুঁতে।।''

'ঠ্যাংফুলী' কবিতাটিতে ঠ্যাংফুলীর বর্ণনাটি ভারী মজার।

''এক ঠ্যাং তালপাতা তার
যেন বাঁট হালকা ছাতার!
আর-পা'টা তার
ভিটবে ডাগর!
যেন বাপ! গোবদা গো-সাপ
পেট-ফুলো হুম এক অজগর!''

'পিলে পটকা' কবিতায় শিশুমনের পরিহাসপ্রিয়তার ছবি সুস্পষ্টভাবে লক্ষ্য করা যায়।

''উটমুখো সুঁটকো হাসিম
পেট যেন ঠিক ভুটকো কাছিম!
চুলগুলো সব বাবুই দড়ি –

দাদুর সঙ্গে খোকাখুকুর সম্পর্ক যেমন মধুর তেমনি সহজ ও গভীর। কেননা 'বার্ধক্যই দ্বিতীয় শৈশব'। 'খাঁদু-দাদু' কবিতায় দাদুর নাক সম্পর্কে শিশুর গবেষণা অত্যন্ত হাস্যকর।

''অ-মা! তোমার বাবার নাকে কে মেরেছে ল্যাং
খাঁদা নাকে নাচছে ন্যাদা – নাক ডেঙা ড্যাং-ড্যাং

.....

দাদু বুঝি চীনাম্যান, নাম বুঝি চাংচু?
তাই বুঝি ওর মুখটা অমন চ্যাপ্টা সুধাংশু।
জাপান দেশের নোটিশ উনি নাকে এঁটেছেন।
অ-মা! আমি হেসেই মরি নাক ডেঙা ড্যাং-ড্যাং।''

শিশুদের নিয়ে কবিতার মধ্যে কবি যেমন শিশুদের হাসিয়েছেন, খেলিয়েছেন তেমনি খেলার ছলে উপদেশও দিয়েছেন। 'লিচুচোর' কবিতায় এমন এক অপূর্ব দক্ষতার পরিচয় পাওয়া যায়। 'বাবুদের তালপুকুরে' লিচু চুরি করতে গিয়ে হাবুদের ডাল কুত্তার তাড়া খেয়ে মালীর পিটুনি উপভোগ করে পাঁচিলের ফোঁকর গলে কোনভাবে অর্ধমৃত অবস্থায় যে শিশু বেরিয়ে আসে সে নিশ্চয় আর চুরি করতে যাবে না। একটি বাস্তব ঘটনাকে কেন্দ্র করে কবি শিশুর চুরি করার মনোবৃত্তিকে সমূলে ধ্বংস করেছেন। তাই কবিতার শেষে যখন শিশুকে প্রশ্ন করা হয়েছে – 'কি বলিস ফের হপ্তা?' তখন সে নিজের অভিজ্ঞতা স্মরণ করে বলেছে 'তৌবা-নাক খপতা।'

''কান মলি ভাই,
চুরিতে আর যদি যাই!
তবে মোর নামই মিছা
কুকুরের চামড়া খিঁচা
সেকি ভাই যায়রে ভুলা –
মালীর ঐ পিটনী গুলা।
কি বলিস ফের হপ্তা।
তৌবা-নাক খপটা।''

এই কবিতার মধ্য দিয়ে কবি শিশুকে নিজের অভিজ্ঞতা দিয়ে উপদেশ গ্রহণ করিয়েছেন।

শিশু হল ভগবানের সুন্দর সৃষ্টি। মানুষের দৈনন্দিন জীবন শিশুর আগমনে হয়ে ওঠে মুখরিত ও আনন্দিত। তাই সংসারে নতুন শিশুর আবির্ভাব চিরকালই বহন করে নতুনতর আনন্দ। ''শিশুর জাদুকর'' কবিতায় শিশুকে কেন্দ্র করে অনন্তলোকের অরূপ রহস্য উন্মোচন করেছেন কবি।

''কোন রূপলোকে ছিলি রূপকথা তুই,
রূপ ধরে এলি এই মমতার ভুঁই।

.....

ছোট তোর মুঠি ভরি আনিলি মণি,
সোনার জিয়নকাঠি, মায়ার ননী,
তোর সাথে ঘরে ভরে এল ফাল্গুণ
সব হেসে খুন হোল কি জানিস গুন।''

মায়ের সঙ্গে শিশুর সম্পর্ক কত ঘনিষ্ঠ ও মধুর তার চিত্র বার বার লক্ষিত হয়েছে নজরুলের শিশু কবিতায়। মায়ের স্নেহের চেয়ে বড় শিশুর কাছে আর কি হতে পারে ? সুতরাং মায়ের প্রতি ভালোবাসা ও কৃতজ্ঞতাবোধ প্রকাশ করা শিশুর স্বাভাবিক প্রবণতা 'মা' কবিতায় মাকে ঘিরে শিশুমনের নিবিড়তম প্রকাশ ঘটেছে।

''যেখানে দেখি যাহা।
মা-এর মতন আহা।
একটি কোথায় এত সুধামেশা নাই,
মায়ের মতন এত
আদর সোহাগ যে তো
আর কোনখানে কেই পাইবে না ভাই
.....
মা'র বড় কেউ নাই –
কেউ নাই, কেউ নাই।
নতি করি' বল সবে ''মা আমার! মা আমার''

'কোথায় ছিলাম আমি' কবিতায় খোকা মাকে তার জন্মের যে কথা জিজ্ঞাসা করেছে তার মধ্যে শিশুর রঙিন কল্পনা ও মাতৃকেন্দ্রিক ভাবস্বপ্নের অপূর্ব চিত্র লক্ষিত হয় – প্রথমে খোকার প্রশ্ন –

''মাগো আমায় বলতে পারিস কোথায় ছিলাম আমি
কোন না জানা দেশ থেকে তোর কোলে এলাম নামি?

শেষ পংক্তিতে শিশুর অনুভূতি, -

''নীড়ের পাখী যেমন মাগো আকাশ পানে ধায়,
আকাশ পেয়ে খানিক পরে নীড়কে আবার চায়
তেমনি যেন স্বপ্নে আমি ভুবন ঘুরে আমি,
মাগো, তবু সবার চেয়ে তোমায় ভালোবাসি
তুমিই তো মা ছড়িয়ে আছ বিশ্বময়ী হয়ে
তুমিই নাচাও, তুমি খেল আমায় কোলে লয়ে।''

'সাত ভাই চম্পা' কবিতাটিতে কবি শিশুমনের বিচিত্র আশা আকাঙ্ক্ষাকে প্রতিটি স্তবকে ফুটিয়ে তুলেছেন। এই কবিতায় শিশুর কল্পনাকে তিনি সুদূর প্রসারিত করে দিয়েছেন। সাত ভাই চম্পা

কবিতাটি বাংলার শিশুসাহিত্যের এক অমূল্য সম্পদ কারণ এখানে শিশুদের বিচিত্র কল্পনার সঙ্গে আছে বাস্তববোধ, নিজেকে সংকল্পিত করার বাসনা ও পৃথিবীকে নতুন করে আবিষ্কার করার স্পৃহা সাত ভাইয়ের মধ্যে। প্রথম ভাই হতে চেয়েছে সকাল বেলার পাখি। পাখি হয়ে সে সূর্য ওঠার আগেই নিজে জেগে পাহাড় চুড়ায় উঠে বিশ্বচরাচর জাগাতে চেয়েছে। এইভাবে কবি যেন শিশুদের মনে জাগরণ মন্ত্র দিয়ে কর্তব্য কর্মকে স্মরণ করিয়ে দিয়েছেন। দ্বিতীয় ভাই বলেছে একটি গাঁয়ের রাখাল ছেলে হবে। তৃতীয় ভাই বলেছে সওদাগর হয়ে সাগর পাড়ি দেবে। চতুর্থ ভাই বলেছে হবে দিনের সহচর। এইভাবে কবিতাটির মাধ্যমে কবি শিশুমনে বাস্তববোধ ও বিপুল অ্যাডভেঞ্চারের ভাব জাগিয়ে তুলেছেন। জীবনকে বিচিত্রভাবে আস্বাদন করার ইচ্ছা থেকেই এই কবিতাটির সৃষ্টি। এখানে কবি নজরুল নিপুণ শিল্পীর মতো শিশু-হৃদয়ের রহস্যময় অন্দরমহলে প্রবেশ করতে সমর্থ হয়েছেন।

'পুতুলের বিয়ে' ছোটদের জন্য লিখিত একটি কৌতুক রসের নাটিকা। এই নাটিকায় কমলির সুন্দর পুতুল ডালিমকুমার ও কুৎসিত চিনের পুতুল ফুচুং-এর সঙ্গে যথাক্রমে টুলির মেম পুতুল পুঁটুরানী ও বেগম জাপানী পুতুল গেঁইসা-র বিয়েকে কেন্দ্র করে নজরুল হাস্যরস পরিবেশন করতে চেষ্টা করেছেন। কমলি, টুলি, পঞ্চি, খেঁদি ও বেগম এই পাঁচটি মেয়ের মধ্যে পঞ্চি ময়মনসিংহের অধিবাসী ও খেঁদি বাঁকুড়া জেলার অধিবাসী। এদের ভাষা পরিবেশনে নজরুল হাস্যরস সৃষ্টির প্রয়াস করেছেন। এই নাটিকার মধ্যে হিন্দু মুসলমান মিলন সম্পর্কেও সুন্দর মনোভাবটি ব্যক্ত করেছেন কবি নজরুল। খেঁদি যখন কমলিকে বলে যে তোর পুতুলের সঙ্গে মুসলমান বেগমের বিয়ে কেমন করে হবে তখন কমলির মুখ দিয়ে নজরুল বলিয়েছেন – 'না ভাই, ও কথা বলিস নে, বাবা বলেছেন হিন্দু মুসলমান সব সমান। অন্য ধর্মের কাউকে ঘৃণা করলে ভগবান অসন্তুষ্ট হন, ওদের আল্লা যা আমাদের ভগবানও তা।' এই ভাবে তিনি শিশুমনের ভাবনাচিন্তা ও ধ্যানধারণাকে শব্দাঙ্কিত করেছেন ছোট নাটিকাটিতে।

শিশুসাহিত্য নজরুলের সর্বাপেক্ষা দান। সাহিত্যের এই শাখাতেও তিনি তাঁর যৌবনধর্মের বলিষ্ঠ কণ্ঠকে তুলে ধরেছেন। শিশুসাহিত্য কেবলমাত্র কল্পনারঙ্গিন হবে ; বাস্তবসত্তার ছাপ থাকবে না – একথা তিনি মনে করেননি। শিশুসাহিত্যে উদ্ভট অবুঝ কল্পনাকে যেমন স্থান দিয়েছেন তেমনি কঠোর বাস্তবতাকে স্বীকার করেছেন। শিশুর ভিতরেই তিনি দেখেছেন অনাগত ভবিষ্যতের বিপুল সম্ভাবনা। তাই তাঁর সাহিত্যে দেখতে পাই পক্ষীরাজের ঘোড়া চড়ে সাত সমুদ্র পার হবার কল্পনার কথা তিনি বলেননি, সাত সমুদ্র পার হতে গেলে যে আগামী বিপদ আছে সেগুলি তিনি শিশুদের জানিয়েছেন – 'অগ্রপথিক' কবিতায়।

''আমরা চলিব পশ্চাতে ফেলি পচা অতীত
গিরিগুহা ছাড়ি খোলা প্রান্তরে গাহিব গীত।
রে নবযুগের স্রষ্টাদল। জোর কদম চল রে চল।''

তাই ভালো ছেলে হয়ে বদ্ধ ঘরে থাকার কথা নজরুল বলেননি। তিনি প্রাণশক্তিতে উদ্দীপ্ত হয়ে 'দেখব এবার জগৎটাকে' কবিতায় বলেছেন –

''থাকব নাক বদ্ধ ঘরে দেখব এবার জগৎটাকে
কেমন করে ঘরছে মানুষ যুগান্তরের ঘূর্ণিপাকে।
.....
কিসের নেশায় কেমন করে মরছে রে বীর লাখে লাখে

কিসের আশায় করছে তারা বরণ-মরণ যন্ত্রণাকে।''

এই মরণ যন্ত্রণাকে বরণ করে নিয়ে সামনে এগিয়ে যাবার মন্ত্রই হল কবির মন্ত্র। কবি শিশুদের আত্মসচেতন হতে বলেছেন। তিনি বলেছেন ছোট বলে প্রথম থেকে চুপচাপ বসে না থাকতে। তাদেরকে জীবনে বড় হতে হবে। কবি 'মায়া মুকুর' কবিতায় বলেছেন – বিরাটের জয় হোক, মুছে যাক সকল বিভেদ, নিঃশেষ হয়ে যাক ছোট ভাবার সকল চিন্তা –

''তোমরা ভাবিছ, আমরা বালক অথবা বালিকা কেহ,
আমি বলি – কেহ দেখনি আজিও তোমরা নিজের দেহ।

.....

তুমি ছোট নহ, ঐ যে ক্ষুদ্র দেহখানি তুমি নও,
নিজেরে দেখিলে – দেখিবে – তুমিই বিপুল বিরাট হও।

.....

বল ভগবানে, তুমি হতে চাও সর্বশক্তিমান,
তুমি অনন্ত যশঃ খ্যাতি চাহ, চাহ অনন্ত প্রাণ।''

কবি শিশুদের বলেছেন তোমরাই এই বাংলার ভবিষ্যৎ। তাই তাদের উদ্বুদ্ধ করেছেন মহৎ, মুক্ত, উদার জীবনের সাধনায়। তাদের ললাটে পরিয়ে দিয়েছেন গৌরবের জয়টিকা –

''ভাঙো ভাঙো এই ক্ষুদ্র গণ্ডী, এই আজান ভালো।
তোমাতে জাগেন যে মহামানব, তাঁহারে জাগায়ে তোলো,
তুমি নহ শিশু দুর্বল, তুমি মহতো মহীয়ান
জাগো দুর্বার, বিপুল, বিরাট অমৃতের সন্তান।

নজরুল সাহিত্যের বিদ্রোহী বলিষ্ঠ মনোভঙ্গি তাঁর শিশুসাহিত্যের মধ্যেও লক্ষিত হয়েছে। বাংলা শিশুসাহিত্যে এই নতুন দিক প্রবর্তনায় তাঁর আসন প্রথম সারিতে রচিত হয়েছে।

সহায়কপঞ্জীঃ

1. নজরুল রচনাসম্ভার – আব্দুল কাদির সম্পাদিত (১৩৭৬)
2. নজরুল সাহিত্যের একদিক – আব্দুল কাদির (১৯৬০)
3. কাজী নজরুল ইসলামঃ জীবন ও কবিতা – রফিকুল ইসলাম (১৯৮২)
4. বাংলা সাহিত্যে নজরুল – আজাহারুদ্দীন খান (১৩৬১)
5. সাহিত্য-সঙ্গ – আব্দুল আজীজ আল-আমান (১৩৬৫)
6. নজরুল চরিতমানস – সুশীল কুমার গুপ্ত (১৩৬৭)

আফসার আমেদের উপন্যাস : বিষয় বৈচিত্র্যের অভিনবত্ব

রাহুল সাহানা
অতিথি অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ

কথা সাহিত্যের সফলতম রূপ হল উপন্যাস। সার্থক উপন্যাসের সূচনা হয়েছে বঙ্কিমচন্দ্র চট্টোপাধ্যায়ের 'দুর্গেশনন্দিনী' র মধ্য দিয়ে। আর এটা বলার অপেক্ষা রাখে না যে, পরবর্তী ঔপন্যাসিকরা বঙ্কিমকে কেন্দ্র করে তাঁদের উপন্যাসের ভিত্তি স্থাপন করেছেন, যেমন রবীন্দ্রনাথ, শরৎচন্দ্র প্রমুখ ঔপন্যাসিকগণ। তাঁদের রচনার মধ্যে বঙ্কিমের উপন্যাসের প্রসঙ্গ নানাভাবে চলে এসেছে। ঊনবিংশ শতাব্দী পার হয়ে বিংশ শতাব্দীতে উপন্যাসের ধারার পরিবর্তন দেখি তিন বন্দ্যোপাধ্যায়ের উপন্যাসে। একটা আলাদা ছাঁচে আমরা নতুন করে পাই সমাজকে। একবিংশ শতাব্দীতে পদার্পণ করেছি আমরা, সাহিত্য ও সমাজেও এসেছে পরিবর্তন সময়ের তালে তালে নিজের ছন্দে।

বর্তমান যুগের লেখকেরা বর্তমান সামাজিক-রাজনৈতিক-অর্থনৈতিক পরিস্থিতির সাথে সামঞ্জস্য রেখে তাঁরা তাঁদের রচনা সৃষ্টি করছেন। সমাজের নিত্য নতুন রূপ আমরা পাচ্ছি এবং আরও ভাবতে শিখছি। তাঁদের মধ্যে কয়েকজন ঔপন্যাসিক হলেন অমিয়ভূষণ মজুমদার, দেবেশ রায়, অমর মিত্র, স্বপ্নময় চক্রবর্তী, আব্দুল জাব্বার, আবুল বাশার, সৈয়দ মুস্তফা সিরাজ, হাসান আজিজুল হক্, আফসার আমেদ প্রমুখ।

সমাজ আজ বিভিন্ন ভাবে বিভক্ত। আমরা সাহিত্যেও বিভাজন টেনেছি। উক্ত প্রসঙ্গে সুহৃদয় অধ্যাপক তপোধীর ভট্টাচার্যের উক্তিটি মনে পড়ে – "... বাঙ্গালির সমাজে হিন্দু ও মুসলমান যে সমান গুরুত্বপূর্ণ, এই সহজ সত্যটি আমাদের চেতনায় অনুপস্থিত থাকে। সৈয়দ মুস্তফা সিরাজ, আবুল বাশার ও আনসার উদ্দিন ছাড়া পশ্চিমবঙ্গীয় কোন লেখকই সমাজ ও তার বাস্তবের প্রতি মনোযোগ দেননি। আমরা নিজেদের মধ্যে দুরতিক্রম্য বিভাজনকে মান্যতা দিয়েছি...।"(ভট্টাচার্য, ২০০৯: ২০৫)

এই পরিস্থিতিতে আফসার আমেদ (১৯৫৯) তাঁর নিজস্ব পরিচিত পরিমণ্ডল থেকে কিস্‌সার উপকরণ সংগ্রহ করেছেন। তাঁর এই প্রয়াসকে আমরা সাধুবাদ জানাই। এর ফলে বাংলা কথা সাহিত্যই সমৃদ্ধতর হয়েছে। আফসার আমেদ দেবেশ রায় দ্বারা অনুপ্রাণিত হয়েছেন, তাঁর রচনার প্রভাবও আছে। আফসার আমেদের কিস্‌সা সিরিজ পাঠকদের বিশেষ আকর্ষণের বিষয়। তিনি তাঁর

সাহিত্যিক জীবনের শুরু থেকেই বারে বারে পাঠককে চমকে দিয়েছেন। এক অন্য ঘরানার লেখক আফসার আমেদ। তাঁর সম্পর্কে কথাসাহিত্যিক অমলেন্দু চক্রবর্তী যে মূল্যায়ন করেছেন তা স্মরণযোগ্য :

''আফসার সর্বাংশে গ্রামের ছেলে। বর্ষার কাদায় শীতগ্রীষ্মের ধুলোয় পা ডুবিয়ে হাঁটা তার আজন্ম অভ্যাস। বরং কর্মোপলক্ষ্যে কলকাতার আস্তানাই তার মানসিক প্রবাসভূমি। আমাদের সাম্প্রতিক সাহিত্যে এমন লেখকের প্রয়োজন বড়ো বেশি। মানিক-তারাশংকর-বিভূতিভূষণের পরবর্তী...গত দুই তিন দশক ধরেই গ্রাম বাংলা নির্বাসিত। অথচ বিগত ত্রিশ বছরে সেখানে কৃষি উৎপাদন ব্যবস্থারই বিস্তর পরিবর্তন ঘটে গেছে। পারিবারিক সম্পর্ক থেকে পঞ্চায়েতি শাসন সর্বত্রই ব্যাপক রূপান্তর। শৈশবস্মৃতির নষ্টালজিয়া থেকে এই নবতর পল্লিজীবনধারাকে ধরতে চাওয়া অবাস্তব। সুদূর আদিবাসী পর্যন্ত এগোন কেউ কেউ। সেক্ষেত্রে তাঁদের হাতের দূরবিনগুলোও বড়ো বেশি স্পষ্ট হয়ে ওঠে। অন্যদের যেখানে গিয়ে পৌঁছাতে হয়, আফসার আমেদ সেখানে আজন্মবর্ধিত হয়ে উঠেছেন উদ্ভিদ বা বৃক্ষের আদলে। যে মানুষগুলি তাঁর রচনার চরিত্র, ব্যক্তিগত জীবনাচরণে তাদের অনেকেই হয়তো স্বজন প্রতিবেশী। গ্রাম তাঁর কাহিনির প্রেক্ষিতে। কিন্তু শিল্পরূপে সেই গ্রাম্যতাকেই পরিহার বা ঝাড়াই করে তাঁর গদ্যভাষা বিস্ময়করভাবে পরিশীলিত এবং ঋজু।'' আফসারের রচনার পরিমণ্ডল বেশীর ভাগ মুসলিম সমাজকে কেন্দ্র করে হলেও, তিনি আসলে মানুষকে খুঁজেছেন, সাহিত্যকার মানেই মানুষ তৈরীর কারিগর, আফাসার তার ব্যতিক্রম নয়, জাতির উর্দ্ধে গিয়ে তিনি সত্যকে খোঁজার চেষ্টা করেছেন।

'ঘর গেরস্থি' উপন্যাসে পাঠকের দরবারে প্রথম পৌঁছেছিলেন আফসার আমেদ, তারপর ধীরে ধীরে সমাজের বিভিন্ন দিক উন্মোচন করলেন এক একটি উপন্যাসের মধ্যদিয়ে। 'আত্মপরিচয়' (১৯৯০) উপন্যাসের মালেকা চরিত্রের মধ্যে দিয়ে ফুটে উঠেছে মুসলিম ব্যক্তিগত আইনে বিবাহ বিচ্ছেদের জটিলতা। আফসার আমেদ গ্রাম জীবনের সাধারন মুসলিম অন্তঃপুরের মনস্তাত্ত্বিক ব্যাখ্যা দিয়েছেন তাঁর 'অন্ত:পুর'(১৯৯৩) উপন্যাসে। মুসলিম গ্রাম জীবনের বিবাহ বিচ্ছেদ সমস্যার আর এক চিত্রকে তুলে ধরেছেন 'ধ্যানজ্যোৎস্না'(১৯৯৩) উপন্যাসে। স্বামী-স্ত্রী না চাইলেও বিবাহ বিচ্ছেদ হয়! পাত্রপক্ষ পাত্রীপক্ষকে শাস্তি দিতে চাইলে বিচ্ছেদ অস্ত্র কত নির্মম ভাবে প্রয়োগ করতে পারে তার নজির টেনেছেন লেখক। তালাক নিয়ে গ্রাম জীবনের সাময়িক চটুলতাও ভয়ঙ্কর খড়্গ রূপে দাম্পত্য সম্পর্কের মাঝখানে এসে কীভাবে আছড়ে পড়তে পারে তারই চিত্র ফুটে উঠেছে। 'বিবির মিথ্যা তালাক ও তালাকের বিবি এবং হলুদ পাখির কিস্‌সা'(১৯৯৫) উপন্যাসে। লিখেছেন 'কালো বোরখার বিবি' ও 'কুসুমের গন্ধ', 'চল্লিশজন লোক'(১৯৯৩) এবং 'আশ্চর্য বশীকরণ কিস্‌সা' (১৯৯৮)। আরেকটি অন্য স্রোতের কিস্‌সা- হল 'মেটিয়াবরুজে কিস্‌সা'(২০০৩)। 'হিরে ও ভিখারিনি সুন্দরী রমণী কিস্‌সা'(২০০৯) উপন্যাসে এক আশ্চর্য রূপকথার নায়িকার সন্ধান পাই। 'এক ঘোড়সওয়ার কিস্‌সা' (২০১০) রচনাও বিষয়ের দিক থেকে অভিনব। সমাজ সচেতন

বাস্তববাদী ঔপন্যাসিক আফসার আমেদ তাঁর কিস্‌সা জাতীয় রচনাগুলির মধ্যে মূলত মুসলিম সমাজের ধর্মান্ধতাকে তুলে ধরেছেন এবং পুরুষতান্ত্রিক সমাজের বিরুদ্ধে প্রতিবাদ করেছন। তাঁর শেষের দিকের উপন্যাসগুলিতে বিষয়ের ভিন্নতা এসেছে। দেশভাগের পর মানুষের আবেগের কাহিনী, বেকার সমস্যা 'একটি মেয়ে'(২০১৪) উপন্যাসের আখ্যান বস্তু। সামাজের বিকারগ্রস্থ মানুষগুলিকে প্রেমের ও বন্ধুত্বের মোড়কে আলোকিত করেছেন –'ভূমিকম্পের আগে ও পরে' উপন্যাসে। প্রেমের আধুনিকতা ও বৈচিত্র্যের পরিচয় পাই তাঁর 'প্রেমপত্র', 'প্রেমিকা নেই', 'সঙ্গ নিসঙ্গ' ইত্যাদি উপন্যাসে।

আফসার আমেদ তাঁর প্রথম দিকের উপন্যাসে মুসলিম সমাজের অন্ধকারময় ছাপগুলির দিকে আলোকপাত করেছেন। 'আত্মপরিচয়'(১৯৯০) উপন্যাস কোনো ব্যক্তির আত্মজৈবনিক রচনা নয়। বাঙ্গালি মুসলমান সমাজের আত্মজীবনের বেদনা হাহাকার প্রেম-অপ্রেম ও নিজস্ব ধরনের পরিচয় এই উপন্যাসে। লেখক সমাজের আত্মপরিচয় দেবার জন্যেই উপন্যাসটি লেখেন নি,। মানুষ, পরিবার ও সমাজের বাতাবরণ ইত্যাদি উপন্যাসের রক্তবীজ থেকেই এই মৌল অনু উঠে এসেছে। আসলে সমস্ত মানুষ এক, একই রক্তমন নিয়েই ভেতরের মানুষটি থাকে। উপন্যাসের শুরু, এক গ্রামের জোতদার বিত্তবান ব্যবসাদার কাসেম হাজির রক্ষনশীল পরিবারের বধূহত্যার ভয়ঙ্কর নিষ্ঠুরতার দৃশ্য দিয়ে। নিষ্ঠুরতা ছড়িয়ে পড়ে চাক্ষুষ হত্যা করতে দেখেও কেউ কেউ প্রতিবাদহীন থাকে। আবার আত্ম-আবিষ্কারের সন্ধান পেয়ে যায় ঐ বাড়ির পুত্রবধূ মালেকা ও মজুর। হত্যার প্রতিক্রিয়ায় এই দুই চরিত্রের সাথে ধর্মান্ধতা ও অমানবিকতার সংঘর্স চলতে থাকে। শাহাবানু মামলার রায়,পার্লামেন্টে মুসলিম মহিলাবিল পাশ, এই উপন্যাসের প্রত্নসময়। তারই পাশে আছে দরিদ্র মানুষের বেঁচে থাকার সমগ্রতা। একটা গোটা বাঙ্গালি মুসলমান সমাজজীবনের পরিচয়, নানা বৈপরীত্য বৈচিত্র, স্ববিরোধ সমর্পণ এবং লোকজীবনের নিজস্বতার সংঘর্ষ এই উপন্যাসের যাত্রাপথ।

'ধানজ্যোৎস্না' উপন্যাসেও নারী জীবনের বেদনার কথা বলেছেন আফসার। নারী মনের খুঁটি-নাটি বিষয়গুলি বর্তমান এই রচনাতে। মুসলিম সমাজে বিবাহবিচ্ছেদ হয়–পুনঃবিবাহও ঘটে। সেই নারীকে এক জীবন থেকে অন্য জীবনে যেতে হয়। তার মতামত নেওয়ার প্রয়োজনও হয় না। গুরুজনদের কোন্দলের কারণে তালাক হয়। সখিনার জীবনেও তাই ঘটে। পূর্ব স্বামী নুর আলি ও বর্তমান স্বামী মেহের আলি, সখিনার মনের মধ্যে অস্থিরতা সৃষ্টি করে। নারী যেন হস্তান্তর যোগ্য পণ্য। সখিনা বলেছে -

''বহু পুরুষের স্পর্শের প্রতি এক বিরক্তি। একাধিক পুরুষের মন নিয়ে বেঁচে থাকা খুব কঠিন'' (পৃ- ১৫) আলোচ্য উপন্যাসের এই কাহিনী নিয়ে প্রখ্যাত চিত্র পরিচালক মৃণাল সেন 'আমার ভুবন' কাহিনীচিত্র নির্মাণ করেছেন।

'ব্যথা খুঁজে আনা' উপন্যাসে সময়কে আবিষ্কার করেছেন লেখক ব্যক্তির জীবনের টানাপোড়নে। ১৯৯২ সালের ৬ ডিসেম্বর বাবরি মসজিদ ধ্বংসের পর সারা দেশ জুড়ে সাম্প্রদায়িক দাঙ্গার

পরিস্থিথিতে আমাদের জাতীয় আত্মপরিচয় এক দ্বিধার সংকটে পড়ে। লেখক ছোট ছোট জীবন-পরিবার – ঘটনার মধ্য দিয়ে কলকাতার জনজীবনকে তুলে ধরেছেন। সাম্প্রদায়িক দাঙ্গা, ধর্মে রক্তের রাজনীতি, উস্কানি বার্তালাপ, মানবিক মূল্যবোধের অবক্ষয় আমাদের চোখ এড়ায় না, তার সাথে সাথে সাম্প্রদায়িক সম্প্রিতী, জাতি- বর্ণ – ধর্ম নির্বিশেষে বহু সহৃদয় মানুষের সন্ধান পাই। এই উপন্যাসে লেখক প্রশ্ন করেছেন –

''একটা মসজিদ বা মন্দির তো কতগুলো ইটবালি সুরকির উপাদান মাত্র, তাকে ঘিরে এমন পরিস্থিতি তৈরি হবে কেন ? ধর্মগ্রন্থগুলিতে কাগজ-কালি ও অক্ষর বিন্যাসের উপাদান থাকে। ধর্মের শুভ চৈতন্য সেই উপাদান থেকে বেরিয়ে আসতে পারছে না কেন।'' (পৃ- ১১৩)

আফসার আমেদ রচনার মাঝের সময়ের দিকে কিস্‌সা জাতীয় উপন্যাসগুলির রূপদান করেছেন যা লেখকের প্রতিষ্ঠার পথকে সুগম করে। কিস্‌সাগুলির মধ্যে মুসলিম সমাজের খুঁটি-নাটি বিষয়কে দেখিয়েছেন। সামাজের তথাকথিত উঁচুতলার মানুষরা ধর্মের বেড়া জালকে হাতিয়ার করে নারীদের নিয়ে খেলা করেছে। প্রায় সব কিস্‌সাতেই এই বিষয়টি মুখ্য। তার মধ্যেও লেখক বৈচিত্র্যের সৃষ্টি করেছেন।

'এক আশ্চর্য বশীকরণ কিস্‌সা'(১৯৯৮) রচনাতে মুসলিম সমাজের বিবাহপ্রথার প্রতি কুঠারাঘাত করেছেন তার সাথে বশীকরণ নামক কুসংস্কারকে নিপুণ ভাবে চিত্রায়ন করেছেন। কিস্‌সার আশ্চর্য ও আকর্ষণীয় চরিত্র মৌলবি মালু খাঁ, বলা বাহুল্য, সমগ্র বাংলা সাহিত্যে মালু খাঁ চরিত্রটি বিরল। প্রসঙ্গক্রমে বলা যায়, বিভূতিভূষণ বন্দ্যোপাধ্যায়ের 'ইছামতী' উপন্যাসের নীলমণি সমাদ্দারের সাথে কিছু অংশ মিল পাওয়া যায়। সমাজসংস্কারক লেখক আফসার আমেদ উচ্চস্বরে বলেছেন-

''পৃথিবীতে এটাই একটা সবচেয়ে দুঃজনক ঘটনা। সে যাকে ভালবাসছে, অথচ তাকে সে ভালোবাসছে না? এটা একটা কঠিন সমস্যা। এর জন্যই তো বশীকরণের আবিষ্কার হয়েছে।'' (পৃ- ৪৭)

'মেটিয়া বুরুজের কিস্‌সা' নামক উপন্যাসে নায়ক শফিউল্লা ধর্মের দোহাই দিয়ে ৪০ বছরের বিধবা শাহানাজকে বিয়ে করে আবার সহবাসের পূর্বেই তালাক দেয় কারণ সে তার (শাহানাজ) কন্যার রূপে মুগ্ধ হয়, এবং কন্যা শাবানাকে বিয়ের জন্য তৎপর হয়ে ওঠে। কিস্‌সার অবশেষে তাকে হাসিলও করে। এই উপন্যাসের মধ্য দিয়ে লেখক এক আশ্চর্য নায়কের সৃষ্টি করেছেন।

'বিবির মিথ্যা তালাক ও তালাকের বিবি এবং হলুদ পাখির কিস্‌সা' উপন্যাসে বিষয়ভঙ্গির এক সম্পূর্ণ নতুন রূপান্তর ঘটিয়েছেন। কাহিনীর এমন এক ভঙ্গি বের করেছেন যেখানে কাহিনী কোথাও শেষ হয় না, শুধুই আর – এক কাহিনীর জন্ম দেয়।

'এক ঘোড়সওয়ার কিস্‌সা' ভিন্ন আখ্যান, রূপকথার জ্যোৎস্না লেগে আছে তার গায়ে, বাস্তবের ধুলোমাটি সারা শরীরে। তিনমাস ডিভোর্স পাওয়া জীবন কাটানোর পর সহসা অতি সকালে ঘোড়া নিয়ে বিগত-স্ত্রীর কাছে যাত্রা করে নিজাম। সে ফিজিক্সের টিচার। স্ত্রীকে পুনর্লাভের অভিযানে গিয়ে

বিচিত্র কিস্‌সার চরিত্র হয়ে ওঠে সে নিজেও। বিগত-স্ত্রী বিশাল সম্পত্তি লাভ করে সেখানে সে মহারাণীর মতো জীবন কাটাচ্ছে। সেখানে তার নানা অনুশাসন। এই কিসসায় লেখক ডিভোর্সি নারীর গরিমাকে বৃহৎ করে দেখিয়েছেন যা উপন্যাসের বিষয়ের বৈচিত্র্যের অভিনবত্বের স্বাক্ষর বহন করে। আফসার আমেদ 'হিরে ও ভিখারিনি সুন্দরী রমণী কিস্‌সা' নামক রচনায় সমাজের এক বাস্তব চরিত্রকে রূপকথার আধুনিক নায়িকা করে তুলেছেন আনবদ্য ভাবে। উপন্যাসের শেষ পাতায় লেখক বলেছেন – ''তারও কিছু খায়েস আছে। কেন না সে তো রূপকথার নায়িকা''। (আমেদ, পৃ. ১২৮)

আলোচ্য উপন্যাসটি আধুনিক এক রূপকথা, যাতে ইতিহাস মিশে আছে। মিশে আছে জীবনযাত্রার অপরূপতা। উপন্যাসের প্রধান চরিত্রগুলি বাস্তবতায় দাঁড়িয়ে কল্পনার মধ্য দিয়ে রূপকথায় প্রবেশ করেছে। আমরাও জীবনের বহুল ব্যস্ততার মধ্যে নিজেকে হারিয়ে দিতে চাই, কিছু পাওয়া বা না পাওয়ার মাঝখানে। এর মধ্যে থাকতে বেশ ভালোলাগে। এই রূপকথার নায়িকার দ্বারা প্রেমের স্বরূপ জানতে পারি। কিছু নীতিকথা–ব্যঞ্জনা পাঠক সমাজকে জাগ্রত করে।

আফসার আমেদ প্রথম দিকের উপন্যাসগুলিতে মুসলিম সমাজের বিভিন্ন দিক গুলি দেখিয়েছেন। কিন্তু পরের দিকের রচনাগুলিতে বর্তমান সমস্যার ক্ষেত্রকে অন্য রূপ দিয়েছেন। তাঁর এখনও পর্যন্ত শেষ উপন্যাস 'একটি মেয়ে' (২০১৪)। নামহীন একটি মেয়ে কলকাতা শহরের পথে পথে একা একা পরিভ্রমণ করে। তার চলাফেরার চলন, বেঁচে থাকার নানা স্বর সে রেখে যায়। সে কিছু প্রশ্ন। বয়স তাঁর বছর তেইশ। নবীন বয়সের চোখে অভিজ্ঞতার আতঙ্কও তাঁর নতুন। নতুন করে চিনতে থাকে সে কলকাতাকে। তার সঙ্গে দেখা হতে থাকে তাঁর সময়ের বন্ধুদের। দেখা হয় দেশভাগের স্মৃতিতাড়িত মানুষদের। দেখা পথশিশুদের। কদর্যতার চারপাশ দেখে দেখে নিজেই রচনা করে সে । খুঁজে ফেরে আত্মপ্রতিষ্ঠার লড়াইকে। এই উপন্যাসে সেই নৈকট্যের গন্ধ। 'ভূমিকম্পের আগে ও পরে'(২০১৪) উপন্যাসের মধ্য দিয়ে সমাজের অবৈধ বিষয়গুলিকে প্রেমের ও বন্ধুত্বের মোড়কে আলোকিত করেছেন। আফসারের নবলিখিত উপন্যাসগুলির মধ্যে আন্যতম 'খাঁচা' উপন্যাসটি সংসার নামক খাঁচাতে পাখি হল প্রধান চরিত্র মালিনী, বয়স বাহান্ন। এক নারীর পূর্ব জীবনের প্রেমিক না পাওয়ার গ্লানি ও বর্তমান স্বামীর অসুস্থতার বেদনার কাহিনী বর্ণিত হয়েছে আলোচ্য উপন্যাসে। আফসারের উপন্যাসের বিষয়ের বৈচিত্র্যের আভিনবত্বের এক অন্য দলিল হল 'ছায়ারূপ টকিজ'। নদীতীরে ভগ্নপ্রায় জমিদার বাড়ির লাগোয়া সোনাপুরগঞ্জ। তারই গায়ে ছায়ারূপ টকিজ। এক সময়ে রমরমিয়ে চলত। এখন গঞ্জটা গেছে মরে কিন্তু সিনেমা হলকে ঘিরে পরিবারের নরনারীদের আশা – স্বপ্ন মরে যায়নি। তাদের স্বপ্নখিন্নতার নানা স্পর্শ খুঁজেছে এই উপন্যাস। এ উপন্যাস মানববাসনার এক স্পর্শের আনুভূতি। তারাশঙ্কর বন্দ্যোপাধ্যায়ের রচনার ক্ষয়িষ্ণু জমিদারতন্ত্রের ছায়াপাত ঘটেছে এই ছায়ারূপ টকিজে।

'সেই নিখোঁজ মানুষটা' উপন্যাসটি কল্পনা ও বাস্তবতার সংমিশ্রণে নতুন আঙ্গিকে রচিত।

বিয়ের দুদিন আগে নিখোঁজ হয় আবিদ। প্রেমিকা জুলেখা আহত হয় এবং অন্যত্র তার বিয়েও হয়ে যায়। যে গ্রামে থাকত আবিদ সন্নিহিত আত দশটি গ্রামের জীবনপ্রবাহ তেমনই গতানুগতিক। সাধ ও সাধ্যের অনেক কিছুতেই অমিল। কয়েক বছর পরে সেই নিখোঁজ মানুষটা ফিরে আসে সেই এলাকায়। আবিদকে নিয়ে গ্রামের মানুষদের আশা জাগ্রত হয়। রূপকথার কাহিনীর মতো সে আনেকের সাথে দেখা করে, সেই পরিবারের সাথে কাটায়। জুলেখাও অপেক্ষা করে তার সঙ্গে সেই নিখোঁজ মানুষটার দেখা হোক। শেষ পর্যন্ত দেখা হয় কি জুলেখা আর আবিদের ? এই প্রশ্ন পাঠকের নিকট রেখেছেন লেখক।

সাহিত্যে প্রেমের স্থান সর্বত্র। প্রেম যে কাহিনীর উপজীব্য বিষয় হবে তা বলার অপেক্ষা রাখে না। কিন্তু আফসারের প্রেমের সাথে পরিচয় হয় পাঠকের, নতুন ভাবে। 'প্রেমপত্র' উপন্যাসটি তারই একটি উদাহরণ। পরকীয়া প্রেম সাহিত্যে বিশেষভাবে স্থান অধিকার করেছে। সমাজের কাছে অবৈধ হলেও আনারকলি নিজেকে পালটে প্রকৃত প্রেমে ডুব দিয়েছে। আনারকলির সাহসিকতা এবং ভয় থেকে মুক্তি পাঠকের কাছে অন্যতম পাওনা। নায়িকার মনে দ্বন্দ্বও ফুটে উঠেছে-

''কলঙ্ক হয় জেনেও কলঙ্কিত হয়ে উঠতে চায়। পাপ হয় জেনেও পাপী হতে চায়। কেন কেন?''। (পৃ- ৯৮)

প্রেমের এক নতুন অবয়বের স্বরূপ খুঁজে পাই 'প্রেমিকা নেই' উপন্যাসে। অসুস্থ, নেশাগ্রস্ত, কুপুত্র মেধাবী গবেষক অর্ণব ভট্টাচার্য মরণের নিকট এসেও জীবনের সন্ধানে অগ্রসর হয়েছে এবং সার্থকও হয়েছে। এই উপন্যাস ব্যর্থ প্রেমের কাহিনী হলেও লেখক ইতিবাচক দিকের সঙ্কেত দিয়েছেন। প্রেম বিষয়ে বিশ্ববার্তার ধ্বনি শুনিয়েছেন-

''ওই প্রেমকে গুহার অন্ধকারে রেখে দেওয়ার মানে হয় না আলোকিত করতে হবে।'' (পৃ- ৯৬)

''প্রেমে কোনো নিন্দে থাকতে নেই। প্রেম একটা সত্য জিনিস। প্রেমকে অস্বীকার করলে ইতিহাসকে অস্বীকার করা হয়''। (পৃ- ৯৬)

সমাজের ছোট ছোট আশা নিয়ে বেঁচে থাকা মানুষের জটিলতাকে লেখক আপন মনের মাধুরী মিশিয়ে 'অশ্রুমঙ্গল' উপন্যাসটি রচনা করেছেন। বিভিন্ন পরিবারের ভিন্ন ভিন্ন সমস্যা যেন এক হয়ে উঠেছে। আর সব সমস্যার মূলে রয়েছে প্রেম। কুসুমগ্রামে প্রথম টেলিফোন এসেছে একমাত্র মতিন মাস্টারের বাড়ীতে। লেখক বারবার বলেছেন এটা 'কান্নাগৃহ'। ওই গ্রামের অনেকের স্বামী- পুত্র দেশের বাইরে থাকে, বহুদিন ফেরে না তাই ফোনে কথা বলে মনের শান্তি পায় এবং কান্নায় ভেঙ্গে পড়ে।

'সঙ্গ নিসঙ্গ' উপন্যাসেও বিষয়ের ভিন্নতাকে অটুট রেখেছন লেখক আফসার আমেদ। কাহিনীর নায়ক নিজাম ও নায়িকা দীপা, শুনে আশ্চর্য হয় পাঠক সমাজ। সত্যি তাই ; দীপা হিন্দু আর মুসলিম নিজাম। সমাজে এই দৃশ্য নতুন নয়। কিন্তু তাদের যে গভীর সমস্যা সেটা দৃশ্যের অগোচরেই থেকে যায় সমাজের কাছে। আফসার, দীপা-নিজামের দাম্পত্য সম্পর্ক নিয়ে কাঁটা ছেঁড়া

বিশ্লেষণ করেছেন এবং তার সমাধানও করেছেন যা বর্তমান সমাজে খুবই প্রাসঙ্গিক।

ঔপন্যাসিক আফসার আমেদের উপন্যাসের আখ্যান বিশ্ব নান রঙে রঞ্জিত। তাঁর রচনার বিষয়, সাহিত্যে তাঁকে অন্য পরিচয় দান করেছে। তিনি ভিন্ন ঘরানার লেখক, উপন্যাসের বিষয়ের গতানুগতিক ধারা থেকে তিনি বেরিয়ে এসেছেন এবং পাঠক সমাজকে ভিন্ন স্বাদের আস্বাদন করিয়েছেন। বলা বাহুল্য আফসার আমেদ শুধু তাঁর রচনার বিষয়ের বৈচিত্র্যের অভিনবত্ব দেখাননি – বাংলা সাহিত্যের বিষয়ের বৈচিত্র্যের নবদিক উন্মোচন করেছেন।

সহায়কপঞ্জী

1. ভট্টাচার্য, তপোধীর।উপন্যাসের সময়। কলকাতা : এবং মুশায়রা , ২০০৯
2. হোসেন, সোহরাব। বাংলা ছোটগল্প : তত্ত্ব ও গতিপ্রকৃতি। ২ খণ্ড। কলকাতা : করুণা প্রকাশনী, ২০০৯
3. খাতুন, আফরোজ। বাংলা কথাসাহিত্যে মুসলিম অন্তঃপুর। কলকাতা : দে'জ পাবলিশিং, ২০১০

মেকলের উত্তরাধিকার ও অন্যান্য প্রসঙ্গ

নিত্যানন্দ খাঁ
অতিথি অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ

English was the primary language for barely 2.3 lakh Indians at the time of the census, more than 86 million listed it as their second language and another 39 million as their third language. *This puts the number of English speakers in India at the time to more than 125 million……The rise of English puts Bengali, once India's second largest language in terms of primary speakers, in distant third place*. Those who spoke Bengali as their first, second or third language add up to 91.1 million, far behind English. (TNN, 2010)

যে কোনও দেশের আর্থসামাজিক পরিকাঠামোর ভিত্তি এবং ভবিষ্যৎ অনেকাংশে সে দেশের শিক্ষা এবং শিক্ষিতশ্রেণির ওপর নির্ভরশীল। স্বাধীনতা পরবর্তীকালের ভারতবর্ষে মানবসম্পদ উন্নয়নে শিক্ষাব্যবস্থার গুরুত্ব অনস্বীকার্য। শুধু ভারতবর্ষ নয়, উন্নত এবং উন্নয়নশীল প্রতিটি রাষ্ট্রের ক্ষেত্রেই এ কথা প্রযোজ্য। ভারতবর্ষে আধুনিক শিক্ষাব্যবস্থার প্রবর্তন ঘটেছিল ঔপনিবেশিক শাসনের যুগে। ভারতীয়দের যোগ্যতা নিয়ে ব্রিটিশদের সন্দেহের অবকাশ সত্ত্বেও মূলত শাসনব্যবস্থার উন্নতিকল্পে যোগ্য-অনুগত-শিক্ষিত ভারতবাসী নির্বাচনে ব্রিটিশরা ছিল উৎসাহী। সেই সময় এক শ্রেণির মানুষ এই নির্বাচনকে সাধুবাদ জানিয়ে যথাযথভাবে এর মর্যাদা রক্ষা করেছে। ভারতের আপসমুখী জাতীয়তাবাদী আন্দোলনের কিছু নেতৃস্থানীয় এই শ্রেণিরই অন্তর্ভুক্ত। আধুনিক, নামান্তরে ইংরেজি শিক্ষাব্যবস্থা সেই সময় ভারতীয় জনজীবনে সীমিত হলেও গভীর প্রভাব বিস্তার করেছিল। এই প্রভাবপরবশ হয়েই স্বাধীনতা পরবর্তী শিক্ষাব্যবস্থা পরিচালিত হয়েছে। বলা বাহুল্য তা আজও অব্যাহত। উপরোক্ত সংবাদপত্রের উদ্ধৃতিটি তারই বার্তাবাহী।

উনিশ শতকের তিনের দশকে আধুনিক শিক্ষাব্যবস্থাকে কেন্দ্র করে অ্যাংলিসিস্ট (পাশ্চাত্যবাদী) এবং ওরিয়েন্টালিস্টদের (পূর্ব তথা দক্ষিন-পূর্ব এশিয়ার ভাষাসমূহ এবং সংস্কৃতির চর্চা করেন যিনি) মধ্যে যে বাকবিতণ্ডা হয়েছিল, লর্ড মেকলে তার মীমাংসা করলেন নিজের বিখ্যাত প্রস্তাবের মধ্যে দিয়ে – We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern ; a class of persons, Indian in blood and colour, but English in taste, in opinion, in moral and in intellect. (Woodrow, 1835:115)

শুধুমাত্র বাঙালি নয়, ব্রিটিশ আমলের ইংরেজিশিক্ষিত শহুরে ভারতীয় বুদ্ধিজীবীশ্রেণির ঐতিহাসিক চরিত্র মেকলের এই উক্তির মধ্যে স্পষ্ট হয়ে ফুটে উঠেছে, কারণ আধুনিক কালোপযোগী বিদ্যাবুদ্ধি অর্জনের পথে সোৎসাহে যাত্রা করার সুযোগ তারাই পেয়েছিল সর্বাগ্রে। এই দোভাষী বুদ্ধিজীবীদেরই ঐতিহাসিক টয়েনবি বলেছেন 'লিয়াঁজো অফিসারশ্রেণি'। কিন্তু মেকলের এই উদ্দেশ্য সর্বতোভাবে সফল হয়নি। শাসক এবং শাসিতের

মধ্যে একটি দোভাষীশ্রেণি তৈরি হলেও পরিণতিতে ইংরেজি শিক্ষাব্যবস্থার প্রসার কেবলমাত্র ডিগ্রিকেন্দ্রিক হয়েই রয়ে গেছে। সেই সময় তো বটেই অধুনাকাল পর্যন্ত তার প্রভাব লক্ষণীয়। একই সঙ্গে শিক্ষা এবং অর্থনীতির যুগলবন্দী এই নব্য শিক্ষাব্যবস্থার উপরি পাওনা হিসাবে দেখা দিয়েছে। শিক্ষা এবং শিক্ষা প্রতিষ্ঠানের বাণিজ্যকরণ যার প্রতিফল।

স্বাধীনতা পরবর্তী সাতের দশকে ভারতে মোট শ্রমনিযুক্ত লোকসংখ্যার শতকরা মোট চারজন ম্যাট্রিকুলেশন থেকে গ্র্যাজুয়েট। কিন্তু শতকরা এই মাত্র চারজন, বিশাল পিরামিডের চুড়োয় যাদের অবস্থান, তাদের মধ্যেও বেকারসমস্যা তখন এত প্রকট হয়ে উঠেছে যা উন্নত দেশেও ব্যাপক অর্থনৈতিক মন্দার সময় থেকে এই সময় পর্যন্ত কখনো হয়নি। তাই গবেষকরা অবাক হয়ে গেছেন এই কথা ভেবে, যে-দেশে (ভারতে) বাৎসরিক অর্থনৈতিক উন্নয়নের হার, বিগত পনেরো বছর ধরে (১৯৭১-এর পূর্বের) ৩.৫ শতাংশ করে দাবি করা হয়, সেই দেশ তার পনেরো জন উচ্চশিক্ষিতদের মধ্যে গড়ে একজনকেও ঠিকমতো কাজ দিতে পারেনি। ১৯৭০ সালে ভারতের মোট বৈজ্ঞানিক ও টেকনিক্যাল manpower ছিল – এঞ্জিনিয়ার এবং ডাক্তারদের নিয়ে মোট ১১ লক্ষ ৯০ হাজার। তার মধ্যে সাইন্স গ্রাজুয়েটের সংখ্যা ৪ লক্ষ ৮০ হাজার এবং সায়েন্স পোস্ট গ্রাজুয়েটের সংখ্যা ১ লক্ষ ৫০ হাজার। ১৯৫০ সালে পোস্ট-গ্র্যাজুয়েট বিজ্ঞানীর সংখ্যা ছিল ১৭,০০০, পরবর্তী কুড়ি বছরে (১৯৫০-১৯৭০) এই সংখ্যা নয়গুণ বৃদ্ধি পেয়েছে। এই বিপুলসংখ্যক ডিগ্রিধারী বিজ্ঞানীর মধ্যে শতকরা ৩ জনের মতো বিভিন্ন ইন্ডাস্ট্রির সঙ্গে রিসার্চের কাজে নিযুক্ত। বাকি সকলে বিদ্যালয়ে, বিশ্ববিদ্যালয়ে বিজ্ঞান সম্বন্ধে জ্ঞানদান করেছেন, অথবা এমন সমস্ত বিষয়ে গবেষণা করেছেন যার সঙ্গে দেশের প্রকৃত অর্থনৈতিক, সামাজিক উন্নতির কোনও সম্পর্ক নেই। আমাদের সোশ্যালিস্ট প্যাটার্নের অর্থনৈতিক পরিকল্পনার ফলে দেশে যে কী পরিমাণ বিজ্ঞান ও বিজ্ঞানীর অপচয় হয়েছে তা এই শোচনীয় অবস্থা থেকে বোঝা যায়। (P.N. Chaudhury, 1971:64) তা সত্ত্বেও ডিগ্রির প্রতি এত মোহই বা কেন, আর কোথায় তার আকর্ষণ? এই হল প্রশ্ন। এই প্রশ্নের উত্তরে উনিশ শতকের লোককবি রূপচাঁদ পক্ষী (১৮১৫-১৮৯০) তাঁর 'উনবিংশ শতাব্দীর বিবাহবর্ণন' কাব্যে যা বলেছিলেন যে, বিদ্যার বাজারদর চাকরি এবং বিবাহ উভয় বাজারেই রয়েছে। 'একপেশে' (এন্ট্রান্স), 'দোপেশে' (এল.এ), 'তেপেশে' (বি.এ), 'চারপেশে' (এম.এ.) – যার যে-রকম বিদ্যা এবং যে যে-রকম বিদ্বান, সেই অনুপাতে তার বাজারদর। একই কথা সমাজবিজ্ঞানী মার্তিনও বলেছেন –

Priest and feudal noble were displaced from their hegemony by the new economic power of money, the independent intellect. (Martin, 1945:37)

সামন্ততান্ত্রিক উপনিবেশের পরিসরে ব্রিটিশ রাজত্বকালে 'কম্প্রাডোর বুর্জোয়াশ্রেণির'(Know) সঙ্গে নব্যবিদ্বানশ্রেণিও অর্থনৈতিকভাবে প্রতিষ্ঠালাভ করেছিল। ইংরেজরা যখন বিশ্ববিদ্যালয়ের পরীক্ষাপাশ এবং ডিগ্রিকে বিদ্যার মাপকাঠি বলে ঘোষণা করলেন এবং তার দ্বারা চাকরির বাজারদরও নির্ধারিত হতে থাকল, তখন আমাদের পণপ্রথাবদ্ধ ফিউডাল সমাজে বিয়ের বাজারেও বিদ্বানপাত্রের দর উর্ধ্বমুখী হয়ে গেল। এর ফলাফল আমরা আজও পাত্রপাত্রীর বিজ্ঞাপনে দেখতে পাই। একথা ঠিক যে ব্যাচেলার অফ আর্টস ডিগ্রির চেয়ে ব্যাচেলার অফ এঞ্জিনিয়ারিং ডিগ্রির চাকরিমূল্য বেশি, কিন্তু তাহলেও ভারতীয় অবস্থায় দেখা যায় যে বি.এ. ডিগ্রিরও চাকরিমূল্য আছে, অন্তত ম্যাট্রিকুলেটের চেয়ে বেশি – his degree dose increase his chances of finding

employment – তাই মোহ ও আকর্ষণ। (Mark Blaug, 1969:4) অবশেষে উক্ত গবেষকেরা বলেছেন – To be sure, there is more education than economic growth – এবং এই প্রসঙ্গে একথাও স্বীকার করেছেন – that too much of the educational budget has gone to the higher levels and too little to the lower levels of the educational system – আর এই উচ্চশিক্ষার অবস্থা হয়েছে কি? The quality of Indian higher education is now among the lowest in the world. (Ibid, 1969:241-44)

একথা সেদিনের মতো আজও সমানভাবে প্রযোজ্য। প্রমাণস্বরূপ - No wonder there's been a disturbing decline in interest in science among students. Between 1970 and 1990, student enrolment in natural sciences fell from 32 per cent to 20 per cent. Even more alarming, the quality of scientists has steadily deteriorated: proof is that India produces one of the largest number of trivial or junk papers, as judged by how often they are cited in international journals. Despite a large scientific fleet and our much-flaunted success in computer software, India ranks a sorry 15 in terms of innovation, according to The Economist. N. Vittal, former chairman of the Telecom Mission, makes a withering comment: "We're producing an army of techno-coolies."(Kailashan, 2000) ভারতের বিভাজনের মতোই ভারতের শিক্ষাক্ষেত্রে মেকলে সাহেবের এই অবদান ভারতের ভাগ্যাকাশে দুর্যোগের বাতাবরণ তৈরি করেছে এবং করে ছলেছে।

১৯৬৯-১৯৭১ সাল পর্যন্ত স্বাধীন ভারতবর্ষের শিক্ষাবিস্তারের প্যাটার্ন ও ডিজাইন দেখলেই সে কথা স্পষ্ট হয়ে যায়। ডিজাইনটা হল – প্রাথমিক শিক্ষাস্তরের বিস্তার তিনগুণ, মাধ্যমিক স্তরের চারগুণ, উচ্চমাধ্যমিক স্তরের ছয়গুণ, বিশ্ববিদ্যালয় স্তরের পাঁচগুণ, টেকনিক্যাল ডিগ্রি স্তরের চারগুণ, ডিপ্লোমা স্তরের আটগুণ। অর্থাৎ প্রাথমিক শিক্ষাস্তরের বিস্তার সবচেয়ে কম। তার পর থেকে উচ্চস্তরের শিক্ষাবিস্তার আনুপাতিক হারে অনেক বেশি। যে-কারণে দরিদ্র লোকের মতো নিরক্ষর লোকের সংখ্যা ভারতে সবচেয়ে বেশি। স্বাধীনতা পরবর্তী পাঁচ দশকে ভারতে এবং পশ্চিমবঙ্গে বিদ্যায়তন, শিক্ষক ও শিক্ষার্থীর সংখ্যার নিরিখে, সাধারণভাবে শিক্ষার যে প্রভূত বিস্তার ঘটেছে সে বিষয়ে বিতর্কের অবকাশ নেই। যদিও সাংবিধানিক নির্দেশ অনুযায়ী সর্বজনীন বাধ্যতামূলক প্রাথমিক শিক্ষার লক্ষ্যপূরণ এখনও অনিশ্চিত ভবিষ্যতের গর্ভে। এ প্রসঙ্গে উল্লেখ করা প্রয়োজন যে এই পঞ্চাশ বছরে মাধ্যমিক ও উচ্চশিক্ষা যে হারে বৃদ্ধি পেয়েছে প্রাথমিক শিক্ষা কিন্তু সে হারে বৃদ্ধি পায়নি। অন্যদিকে প্রাথমিক স্তরে স্কুলছুটের সংখ্যা মাধ্যমিক ও উচ্চশিক্ষার চেয়ে অনেক বেশী। এই প্রসঙ্গে যদি অসফল শিক্ষার্থীর সংখ্যা ধরা হয়, তাহলে প্রাথমিক স্তরে শিক্ষার নিদারুণ দুরবস্থা আমাদের নির্বাক করে দেয়। তা ছাড়া সর্বস্তরের শিক্ষায়, অসম মানের বিদ্যায়তন, শিক্ষায় অসাম্য এবং শ্রেণিভেদকে প্রকট করে তুলেছে। এ বিষয়ে বুঝি সন্দেহের অবকাশ নেই যে কোঠারি কমিশনের 'কমন স্কুল'-এর সুপারিশ সত্ত্বেও দেশের শিক্ষাব্যবস্থায় বিভিন্ন সামাজিক শ্রেণির জন্য ভিন্ন মানের ও ধাঁচের আলাদা শিক্ষায়তনের সংখ্যা বেড়েই চলেছে। যদিও শিক্ষায় শ্রেণিভেদ বিগত কুড়ি বছরে চরমে পৌঁছেছে। একথা অবশ্য ঠিক যে সম্ভবত সুইডেনের মতো দুএকটি দেশ ছাড়া পৃথিবীর আর কোনও দেশেই 'কমন স্কুল' ব্যবস্থা সফল হয়নি। আমাদের দেশে বর্তমানে শিক্ষায় শ্রেণিভেদ, প্রধানত ইংরজি

মাধ্যম বেসরকারি স্কুলের মধ্যেও পুরো সরকারী স্কুল আর সরকারী অর্থ সাহায্যে পরিচালিত স্কুলে পার্থক্য রয়েছে। আসলে শ্রেণি বিভক্ত সমাজে শিক্ষা সর্বজনীন হলেও সকলের সমান শিক্ষা কখনই সম্ভব নয়।

এইসব নিহিত সমাবদ্ধতা সত্ত্বেও, ১৯৫০-৫১ থেকে ১৯৯২-৯৩ পর্যন্ত ৪২ বছরে শিক্ষার বিভিন্ন স্তরে সংখ্যাবৃদ্ধি ও ব্যয় বরাদ্দের একটা তুলনামূলক খতিয়ানের দিকে এবার একটু নজর দেওয়া যেতে পারে। এই হিসাব একটু তলিয়ে বিচার করলে দেখা যাবে শিক্ষাখাতে ব্যয়ের সিংহভাগ দ্বারা লাভবান হয় সমাজের উচ্চস্তরের লোকেরাই। শিক্ষাখাতে ব্যয় যত বৃদ্ধি পায় উচ্চ শ্রেণির লাভ সেই হারে বৃদ্ধি পায়।

১. বিদ্যায়তনের সংখ্যাবৃদ্ধি

শিক্ষাপ্রতিষ্ঠান	১৯৫০-৫১	১৯৯২-৯৩	বৃদ্ধির গুণিতক হার
প্রাথমিক স্কুল	২০৯৬৭১	৫৭২৫৪১	২.৭৩
উচ্চ প্রাথমিক স্কুল	১৩৫৯৬	১৫৩৯২১	১১.৩২
মাধ্যমিক/ উচমাধ্যমিক	৭৪১৬	৮৪০৮৬	১১.৩৩
কলেজ (কলা, বিজ্ঞান, বাণিজ্য)	৩৭০	৫৩৩৪	১৪.৪২
কলেজ (ডাক্তারি, ইঞ্জিনিয়ারিং শিক্ষক শিক্ষণ)	২০৮	৯৮৯	৪.৭৫
বিশ্ববিদ্যালয়/বিবেচিত বিশ্ববিদ্যালয়/জাতীয় গুরুত্বের প্রতিষ্ঠান	২৭	২০৭	৭.৬৬

২. ছাত্রছাত্রীর সংখ্যাবৃদ্ধি (বন্ধনীর মধ্যে ছাত্রীসংখ্যার শতকরা হার)

শিক্ষাপ্রতিষ্ঠান	১৯৫০-৫১	১৯৯২-৯৩	বৃদ্ধির গুণিতক হার
প্রাথমিক স্কুল	১৯২০০০০০ (২৮.১২)	১০৫৪০০০০০ (৪২.৩০)	৫.৪৯ (৮.৩১)
উচ্চ প্রাথমিক স্কুল	৩১০০০০০ (১৬.১২)	৩৮৭০০০০০ (৩৮.৭৫)	১২.৪৮ (৩০.০০)
মাধ্যমিক/ উচচমাধ্যমিক	১৫০০০০০ (১৩.৩৩)	২২৭০০০০০ (৩৩.৯২)	১৫.১৩ (৩৮.৫০)
কলেজ (কলা, বিজ্ঞান, বাণিজ্য)	১৯১০০০ (১১.৫২)	৩৫৯৩৮৪০ (৩৪.৪২)	১৮.৮১ (৫৬.২২)
কলেজ (ডাক্তারি, ইঞ্জিনিয়ারিং শিক্ষক শিক্ষণ)	৫০০০০ (৮.০০)	৪৪২৬৬১ (২২.৩৯)	৮.৮৫ (২৭.৭৭)
বিশ্ববিদ্যালয় স্তর	১৮০০০ (১১.১১)	৩৮১৫৩৪ (৩৩.৩৮)	২১.২০ (৫৩.৬৮)

ব্রিটিশদের শাসকদের উত্তরাধিকার ভারতীয় শাসকরা কীভাবে শিক্ষাক্ষেত্রে বহন করেছে তা পূর্বোক্ত শিক্ষাক্ষেত্রের প্যাটার্ন দেখলেই বোঝা যাবে। অথচ বিচক্ষণ শিক্ষাবিদ ও সমাজতত্ত্ববিদরা বলেন যে উন্নয়নপন্থী দেশে প্রাধান্যটা ঠিক বিপরীতমুখী হওয়া উচিত, অর্থাৎ প্রাথমিক শিক্ষাস্তরের সর্বাধিক গুরুত্ব ক্রমে উচ্চ থেকে উচ্চতর স্তরে কমা উচিত। কিন্তু আমাদের দেশে তা হয়নি। হয়নি তার কারণ, আমরা প্রধানত সেই শ্রেণির

শিক্ষাতত্ত্ববিদদের সদুপদেশ শিরোধার্য করেছি যাঁরা ফরেন এড-ছদ্মবেশী নয়াসাম্রাজ্যবাদী দেশের শিক্ষানীতির স্বপক্ষে রায় দিয়েছেন। এরকম একজন বিদেশী শিক্ষাবিদ বলেন যে উন্নয়নমুখী দেশে (যেমন ভারতে) প্রাথমিক শিক্ষার জন্য অর্থব্যয় করার ফল হল it almost inevitably takes money from other more crucial forms of educational growth (সম্প্রতি growth ১৪ concept হিসাবে বেশি প্রয়োগ করা হয়েছে, development ও progress কথার বদলে)। শিক্ষার এই more crucial forms কি, এই শিক্ষাবিদের মতে? তিনি বলেন –

Most authorities are agreed that the best way of reconciling economic expediency with the technical requirements of a country is a sound growth of secondary education, providing the army of trained….persons who are so greatly needed as technicians, clerks, nurses, agricultural assistants, supervisors, foremen and businessmen, who also in all these capacities from the basis of solid citizenry. (Curl, 1963:86)

প্রাথমিক শিক্ষার বদলে উচ্চশিক্ষার প্রয়োজন অর্থনৈতিক অগ্রগতির কাজকর্মের দিক থেকে অনেক বেশি, কারণ এই শিক্ষা দিলে তবে টেকনিশিয়ান কেরানি, নার্স, কৃষিসহকারী, সুপারভাইজার, ফোরম্যান ব্যবসায়ী ইত্যাদির সাপ্লাই পাওয়া যাবে এবং এই শ্রেণির শিক্ষিতরা solid citizenry-র পাকা ভিত হিসাবে গড়ে উঠবে, অর্থাৎ রাষ্ট্রীয় শক্তির সুসংহত সমর্থকশ্রেণি হবে। ভারতসরকার শিক্ষাপ্রসারের ক্ষেত্রে এই নীতি প্রায় বর্ণে বর্ণে পালন করে মেকলের পদাঙ্কই অনুসরণ করেছে, কারণ এই শিক্ষানীতি, মিরডালের ভাষায় –

Conforms rather closely to the old colonial pattern of building up a highly educated elite with an attached lower rank of technical personnel functioning as subalterns while leaving the population at large in a state of ignorance. (Myrdal, 1968:1669)

মাধ্যমিক থেকে বিশ্ববিদ্যালয়স্তর পর্যন্ত বিদ্যার্থীদের বিপুল সংখ্যাবৃদ্ধি থেকে পরিস্কার বোঝা যায় যে আমাদের দেশে শিক্ষার সামাজিক চাহিদা যথেষ্ট বেড়েছে। এই চাহিদা কেবল আমাদের দেশে নয়, পৃথিবীব্যাপী বেড়েছে। দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধোত্তরকালে বিশেষ উল্লেখ্য ঐতিহাসিক ঘটনা। এর কারণ জনসংখ্যাস্ফীতি নয় শুধু, অন্যান্য কারণও আছে। যেমন ১৯০০ থেকে ১৯৬৯-৭০ আমেরিকার জনসংখ্যা বেড়েছে মোট আড়াইগুণ, কিন্তু মাধ্যমিক বিদ্যালয়ের ছাত্রসংখ্যা বৃদ্ধি পেয়েছে ১৯০০ সালের ১২ শতাংশ থেকে ১৯৬৭ সালে ৯০ শতাংশ পর্যন্ত, প্রায় আটগুণ এবং উচ্চশিক্ষার হার বৃদ্ধি পেয়েছে ৪ শতাংশ থেকে ৪৪ শতাংশ, প্রায় এগারোগুণ। এরকম অন্যান্য দেশেও বৃদ্ধি পেয়েছে। শিক্ষাসমাজতাত্ত্বিকরা বলেন যে এই চাহিদাবৃদ্ধির কারণ তিনটি। প্রথম কারণ, আধুনিক পিতামাতার ও সন্তানদের আকাঙ্ক্ষা বৃদ্ধি; দ্বিতীয় কারণ, জাতীয় উন্নয়ন প্রকল্পের সঙ্গে সরকারী শিক্ষাপ্রসারনীতির প্রত্যক্ষ সম্পর্ক; তৃতীয় কারণ, লোকসংখ্যাবৃদ্ধি। শিক্ষা-চাহিদার উপর যার প্রতিক্রিয়া quantitative multiplier-এর মতো।

আমাদের শিক্ষানীতি এর ব্যতিক্রমী নয়। নিরক্ষরতা দূরীকরণ ও প্রাথমিক শিক্ষা উপেক্ষিত হয়েছে এবং উচ্চশিক্ষার প্রসার যেটুকু হয়েছে তা অর্থনৈতিক উন্নয়নের গতি ও চাহিদার দিকে লক্ষ্য রেখে হয়নি। অর্থাৎ 'manpower'-এর জাতীয় চাহিদা অনুপাতে উচ্চশিক্ষারও প্রসার হয়নি। দেখা গেছে, অর্থনৈতিক চাহিদা থেকে

বেশি পরিমাণে 'বিদ্বান' নামক সামগ্রীর সাপ্লাই হয়েছে উচ্চবিদ্যার উতপাদনসংস্থা থেকে। তার কারণ অর্থনৈতিক চাহিদা – growth ও planning – নিয়ন্ত্রিত হয়েছে বৈদেশিক সাহায্যদাতাদের উপদেশ ও আদর্শ অনুযায়ী, তাই বিদ্বান-সরবরাহ অতিরিক্ত হয়ে গেছে। তার অবশ্যম্ভাবী ফলস্বরূপ দেশে আজ বিদ্বানদের বেকারসমস্যা ভয়াবহ আকার ধারণ করেছে। বিদ্যাগবেষকরা বলেছেন –

After all, employed manpower with matriculate and graduate qualifications amounts to less than 4 percent of the entire labour force of India: it is only the small apex of a vast pyramid and yet even at this apex the unemployment rate exceeds anything experienced in advanced countries since the Great Depression. (Mark Blaug, The Causes of Graduate Unemployment in India, 1969:2)

প্রসাশনিক, বৈজ্ঞানিক, টেকনিক্যাল এলিটশ্রেণি গড়ে তোলার জন্য যে উচ্চশিক্ষার ক্ষেত্রে ভারতসরকার বেশি মনোযোগ দিয়েছেন, সেখানেও দেখা যায় যে বাইরের জনসমাজের মতো এই শিক্ষিতসমাজের মধ্যে শ্রেণিবৈষম্য ক্রমে দৃঢ়তর হয়েছে। অর্থাৎ ভারতের এই নতুন এলিটশ্রেণি নতুন ধনিকশ্রেণির পরিবারের ভেতর থেকেই প্রধানত গড়ে উঠেছে। সুতরাং একথা স্পষ্ট যে ইংরেজ প্রবর্তিত আধুনিক শিক্ষাব্যবস্থা শুধুমাত্র শিক্ষার নৈতিক অবমূল্যায়ন ঘটিয়ে বিরত থাকেনি, একই সঙ্গে সামাজিক এবং আর্থিক বৈষম্য ঘটিয়ে বর্তমান সমাজব্যবস্থায় এক অকল্পনীয় বিভেদ তৈরি করেছে। দুঃখের বিষয় আগামী প্রজন্ম এরই উত্তরাধিকার বহন করবে।

সহায়কপঞ্জী

1. Curl, Adam. *Educational Strategy for Developing Societies*. Africa : Tavistok Publication , 1963.
2. Kailashan, rakesh. "The Devil's Laboratory ." *Outlook* 23 October 2000: Society .
3. Know, Love to. "'comprador-bourgeoisie'." n.d. *Your Dictionary* . 22 July 2017.
4. Mark Blaug, Richard Layard, Maureen Woodhall. *The Causes of Graduate Unemployment in India*. London : The Penguin Press , 1969.
5. Ibid. *The Causes of Graduate Unemployment in India*. London: The Penguin Press, 1969.
6. Ibid. *The Causes of Graduate Unemployment in India*. London: The Penguin Press, 1969.
7. Martin, H. Alfred Von. *Sociology of Renaissance* . London : London Reprint , 1945 .
8. Myrdal, Gunner. *Asian Drama, Vol. III*. London : Penguin Press , 1968.
9. P.N. Chaudhury, R.K. Nandy. "Towards Better Utilization of Scientist Manpower ." *Economic and Political Weekly* 19 June 1971 : 64.
10. TNN. "Indiaspeak: English is our 2nd language." 14 March 2010. *The Times of India* . 22 July 2017 .
11. Woodrow, H. *Macaulay's Minutes on Education in India* . Minute. Kolkata : Victoria Institution , 1835 .

स्वतंत्रता–दिवस के अवसर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम "बेटियाँ" के माध्यम से महिला सुरक्षा एवं सशक्तीकरण पर प्रकाश डालतीं महाविद्यालयीय छात्राएँ

संस्कृतदिवससमारोह (28 अगस्त, 2015) में वरिष्ठ वर्ग–संस्कृतगीत प्रतियोगिता में पुरस्कृता संस्कृतछात्राएँ नन्दा शर्मा तथा स्नेहलता उपाध्याय

'वाल्मीकिजयन्ती' (27 अक्टूबर, 2015) के अवसर पर महर्षि वाल्मीकि की कृतियों पर परिचर्चा, श्लोकपाठ एवं भाषण–आयोजन में संस्कृतविभागीय प्राध्यापिकाएँ

महापरिषद् के स्थापनादिवससमारोह (14 दिसम्बर, 2015) में 'सर्जना' 2014–15 का लोकार्पण करते अतिथिगण तथा महापरिषद्–पदाधिकारियों के साथ सम्पादकवर्ग

कर्तव्यबोधपखवाड़ा के अन्तर्गत महाविद्यालय में 'जलसंरक्षण के प्रति कर्तव्यबोध' विषय पर व्याख्यान द्वारा डॉ0 वन्दनाश्री राय (14 जनवरी, 2016)

गणतन्त्रदिवस के अवसर पर संस्कृत राष्ट्रगीत–प्रस्तुति
संस्कृतविभाग की छात्राओं द्वारा

नेधा सांस्कृतिक संकुल–सांस्कृतिक कार्यक्रम में उद्घाटन समारोह
में सितारवादन संगीतविभाग की छात्राओं के द्वारा (10 फरवरी, 2016)

"वैश्विक पर्यावरण में वेद का योगदान" विषय पर संस्कृतविभाग में विशिष्ट व्याख्यान देते हुए
प्रो. राममूर्ति चतुर्वेदी, संस्कृतविभागाध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ (25 फरवरी, 2016)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय युवा महोत्सव 'स्पन्दन–2016 में सितारवादन (शास्त्रीय) कर सुरभि मिश्रा, बी.ए. ऑनर्स, तृतीय वर्ष ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य महासंस्थान, श्री शारदापीठ, शृंगेरीमठ, वाराणसी में चतुर्वेदनारायण के अवसर पर उपस्थित संस्कृतछात्राएँ तथा प्राध्यापिकाएं (03 मार्च, 2016)

शैक्षणिक भ्रमण के अन्तर्गत "ज्ञान प्रवाह" संस्था में वैदिक यज्ञ 'मित्रविन्दा इष्टि' के अनुष्ठान का अवलोकन करतीं संस्कृतछात्राएँ तथा प्राध्यापिकाएँ (07 मार्च, 2016)

राजकीय वृद्ध एवम अशक्त गृह, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी में आवासी महिलाओं के साथ संस्कृतविभागीय प्राध्यापक–छात्रवृन्द (18 मार्च, 2016)

किरण सोसायटी नाथोपुर, वाराणसी के परिसर का अवलोकन एवं विचारविनिमय करतीं संस्कृतविभागीय प्राध्यापिकाएँ तथा छात्राएँ (31 मार्च, 2016)

महाविद्यालय में आयोजित वार्षिक संस्कृतछात्रसभाओं (06 अप्रैल, 2016) में उपस्थित विभागीय प्राध्यापिकाएँ एवं प्रतिभागिनी छात्राएँ

वि0सं0 2073 (सौम्य) की पूर्वसन्ध्या पर 'लोकमान्य सार्वजनिक श्री गणेशोत्सव' द्वारा आयोजित अभिसिञ्चनसमारोह में सम्मानित डॉ0 चन्द्रकान्ता राय (बाएँ से द्वितीय) (07 अप्रैल, 2016)

श्रीविद्याधिसंस्थानान्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रीजगदल्यानहिलानन्दल की ओर से अयोध्या में सम्मानित डॉ0 पुष्पा त्रिपाठी (16 अप्रैल, 2016)

पूर्वच्छात्रसमागमसमारोह में महाविद्यालय में कार्यरत पूर्वछात्राओं का अभिनन्दन
करते हुए महाविद्यालय–प्रबन्धक डॉ० शशिकान्त दीक्षित

पूर्वच्छात्रसमागमसमारोह (28 अप्रैल, 2016) में सांस्कृतिक कार्यक्रम
प्रस्तुत करतीं महाविद्यालय की छात्राएँ

आर्य महिला पी०जी० कॉलेज, वाराणसी
नेट/जे.आर.एफ. उत्तीर्ण छात्राएँ

संस्कृतविभाग

अनुपमा गुप्ता–नेट
जून, 2014

नीरा यादव–नेट
जून, 2015

संध्या पटेल–नेट
जून, 2015

वर्तिका प्रजापति–नेट
National Fellowship for
Student of OBC, Feb. 2016

संगीतवादनविभाग

निधि खरे–नेट
जून, 2015

श्रीमती विद्या देवी
(आविर्भाव 08.10.1900, तिरोभाव 04.11.1988)
संस्थापिका, श्री आर्य महिला हितकारिणी महापरिषद्–शिक्षण संस्थाएँ

विश्वविद्यालय प्रकाशन
पो०बॉ० 1149, विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : (0542) 2413741, 2413082
e-mail : sales@vvpbooks.com

₹ 150.00
ISBN : 978-93-5148-134-0
www.vvpbooks.com